आपका पाठ्यक्रम

हिन्दी गद्य

इकाई-1 **आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य की पृष्ठभूमि एवं उदय के कारण :**

1. आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य की सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि
2. हिन्दी गद्य के उद्‌भव के कारण
3. हिन्दी उपन्यास का स्वरूप और विकास, प्रमुख प्रवृत्तियाँ एवं रचनाकार
4. रामगढ़ की रानी – व्याख्या एवं समीक्षा।

इकाई-2 **हिन्दी कहानी : स्वरूप और विकास**

1. स्वरूप और विकास 2. प्रमुख हिन्दी कहानियाँ– व्याख्या और समीक्षा
3. **कहानियाँ**–'उसने कहा था' – चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, पंच परमेश्वर – प्रेमचंद, पुरस्कार – जयशंकर प्रसाद, वापसी – उषा प्रियंवदा।

इकाई-3 **हिन्दी नाट्य साहित्य : स्वरूप और विकास**

1. हिन्दी नाटक : स्वरूप और विकास
2. हिन्दी एकांकी : स्वरूप और विकास
3. नाटक : लहरों के राजहंस – मोहन राकेश (व्याख्या एवं समीक्षा)
4. एकांकी – (व्याख्या एवं समीक्षा) (i) दीपदान – डॉ. रामकुमार वर्मा (ii) टूटते हुए – सुरेश चन्द्र शुक्ल (चन्द्र)।

इकाई-4 **हिन्दी निबन्ध : स्वरूप और विकास**

1. हिन्दी निबन्ध : स्वरूप,
2. हिन्दी निबन्ध का उद्‌भव एवं विकास, प्रमुख निबंधकारों का परिचय व प्रवृत्तियाँ,
3. प्रमुख निबध – (व्याख्या एवं समीक्षा) (i) मित्रता – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, (ii) अशोक के फूल – आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, (iii) मेरे राम का मुकुट भीग रहा है – आचार्य विद्यानिवास मिश्र।

इकाई-5 **हिन्दी की अन्य गद्य विधाएँ : स्वरूप और विकास**

1. संस्मरण : सुभद्राकुमारी चौहान – महादेवी वर्मा (पथ के साथी संग्रह से), 2. यात्रा वृत्तांत – सौन्दर्य की नदी नर्मदा (अंश–ओंकारेश्वर से खलघाट)– अमृतलाल वेगड़, 3. व्यंग्य – भोलाराम का जीव – हरिशंकर परसाई, 4. जीवनी – उत्तर योगी श्री अरविन्द (अंश – मनुष्य प्रकृति की सर्वोच्च प्रयोगशाला) शिवप्रसाद सिंह, 5. आत्मकथा – क्या भूलूँ क्या याद करूँ – (अंश– श्यामा प्रसंग पृ.169 से 174 तक) हरिवंशराय बच्चन, 6. डायरी– कठिन समय में – रमेशचन्द्र शाह (अंश – दि. 25.04.2010)।

❑

1 आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य की पृष्ठभूमि एवं उदय के कारण

प्रश्न 1. आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य की पृष्ठभूमि एवं उदय के कारण लिखिए।

अथवा

हिन्दी-गद्य के उद्भव एवं विकास पर संक्षेप में प्रकाश डालिये।

अथवा

आधुनिक साहित्य की प्रमुख गद्य प्रवृत्तियों के सन्दर्भ में हिन्दी गद्य के विकास का संक्षिप्त परिचय दीजिये।

उत्तर-

हिन्दी गद्य का उद्भव एवं विकास

हिन्दी गद्य का आर्विभाव उन्नीसवीं शताब्दी के नव-जागरण में हुआ, जब हमारा देश मध्यकालीन रुढ़ियों से मुक्त होता हुआ पश्चिम से आती हुई नवीन सांस्कृतिक चेतना को आत्मसात् कर रहा था। नये आधुनिक विचारों, नवीन शिक्षा पद्धति और नये वैज्ञानिक आविष्कारों के प्रभाव हमारे सामाजिक जीवन पर पड़ रहे थे। अत: साहित्य में उनकी प्रतिध्वनि स्वाभाविक थी। इन नवीन परिस्थितियों के साथ ही शासन सम्बन्धी आवश्यकताएँ भी गद्य के नवीन माध्यम की माँग कर रही थीं। इस प्रकार उन्नीसवीं शताब्दी में आधुनिकता का संवाहक होकर हिन्दी गद्य अवतरित हुआ।

हिन्दी गद्य के प्राचीनतम प्रयोग राजस्थानी और ब्रज-भाषा में मिलते हैं। राजस्थानी गद्य हमें दसवीं शताब्दी के दान-पत्रों, पट्टों परवानों, टीकाओं व अनुवाद ग्रन्थों में देखने को मिलता है। ब्रजभाषा में गद्य का सूत्रपात सम्वत् 1400 के आसपास हुआ। कृष्ण-भक्ति धारा के कवि-भक्तों ने उसके विकास और संवर्धन में विशेष योग दिया। उनकी सत्रहवीं शताब्दी तक की लिखी हुई रचनाएँ उपलब्ध हैं। उनमें गोस्वामी विट्ठलनाथ का श्रृंगार रस-मंडन, गोकुलनाथजी के चौरासी वैष्णवन की वार्ता और दो सौ बावन वैष्णवन नाभादासजी का अष्टयाम, बैकुण्ठमणि शुक्ल का अगहन महात्म्य और वैशाख महात्म्य तथा लल्लूलाल कृत माधव विलास विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन्हीं के साथ टीकाओं की परम्परा भी चलती रही।

खड़ी बोली गद्य के प्रथम दर्शन अकबर के दरबारी कवि गंग द्वारा लिखित चन्द-छन्द वरनन की महिमा नामक ग्रन्थ और फिर कुतबशतक और स्वामी प्राणनाथ के ग्रन्थों में होते हैं। पर उसका वास्तविक प्रादुर्भाव कई सौ वर्षों बाद उन्नीसवीं शताब्दी से ही मानना चाहिए जब उसकी क्रमबद्ध परम्परा स्थापित हुई। उन्नीसवीं शताब्दी के कुछ पूर्व ही उस धारा के आगमन के संकेत हमें मिलने लगते हैं। ये आरम्भिक प्रयोग अठाहरवीं शताब्दी के मध्य और उत्तरार्द्ध में रामप्रसाद निरंजनी कृत योग वशिष्ट दौलतराय कृत पद्मपुराण के भाषानुवाद, मथुरानाथ शुक्ल के पंचांग दर्शन, मुंशी सदासुखलाल के सुखसागर, इंशाअल्ला खां की रानी केतकी की कहानी, लल्लूलाल के प्रेम सागर व सदल मिश्र के नासिकेतोपाख्यान आदि ग्रन्थों में मिलते हैं। खड़ी बोली गद्य को एक साथ बढ़ाने के महत्वपूर्ण कार्य के लिए अन्तिम चार लेखकों-सदासुखलाल, इंशाअल्ला खाँ, लल्लूलाल और सदल मिश्र को विशेष श्रेय दिया जाता है। इन चारों लेखकों का समय सन् 1803 के आसपास ही ठहरता है।

मुंशी सदसुखलाल का गद्य पुराने कथा-वाचकों जैसा पंडिताऊपन लिए हुए था। लल्लूलाल की भाषा पर ब्रज का प्रभाव था। सदल मिश्र का गद्य अपेक्षाकृत अधिक स्वस्थ संयत था, पर पूरबी प्रयोगों की अधिकता का दोष उनकी भाषा में भी था। इंशाअल्ला खाँ की भाषा में ठेठ खड़ी बोली के दर्शन होते हैं। उसमें न तो विदेशी शब्दों का प्रयोग हुआ है और न संस्कृत और ब्रजभाषा आदि शब्दों का। उसमें गम्भीरता की कमी और पद्यात्मकता की गंध मिलती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इंशा की भाषा को रंगीन और चुलबुली कहा है।

खड़ी बोली गद्य के प्रसार में ईसाई पादरियों का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा। उन्होंने बाइबिल का खड़ी बोली में अनुवाद कराया और उसे उत्तर भारत के विभिन्न स्थानों में वितरित कर अपने धर्म के साथ हिन्दी का भी प्रसार किया। इसके अतिरिक्त ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा प्रचलित शिक्षा-योजना के अन्तर्गत निर्मित पाठ्य-पुस्तकों और समाचार-पत्रकला द्वारा भी खड़ी बोली-गद्य को विकास प्राप्त हुआ। आगे चलकर आर्य-समाज आन्दोलन से भी हिन्दी के प्रसार में अपूर्व शक्ति मिली। स्वामी दयानन्द ने अपने सत्यार्थ प्रकाश की रचना हिन्दी में ही की थी।

भारतेन्दु युग

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में दो और लेखक सामने आये। राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' (सन् 1823-1895) ने हिन्दी गद्य का अरबी-फारसी मिश्रित रूप प्रतिष्ठित करना चाहा और इसके विरुद्ध राजा लक्ष्मणसिंह (सन् 1826-1896) ने विशुद्ध संस्कृतगर्भित हिन्दी गद्य का प्रश्रय दिया। उन्होंने उर्दू, अंग्रेजी के दैनिक व्यवहार में प्रचलित शब्दों तक को अपनी भाषा से दूर रखा। इसके अतिरिक्त आगरे की बोली का प्रभाव भी उसकी भाषा पर कम नहीं था। इसी समय देश के क्षितिज पर भारतेन्दु (1850-1885) का उदय हुआ। भारतेन्दु ने अपनी अनोखी प्रतिभा और महान व्यक्तित्व के तत्कालीन समाज को अद्‌भुत रूप से प्रभावित किया। उन्होंने स्वच्छ, सन्तुलित और शिष्ट रूप सामने रखा। उन्होंने संस्कृत से सरल शब्दों को लेने के साथ-साथ सर्व-साधारण में प्रचलित विदेशी शब्दों को भी ग्रहण किया, तद्‌भव और देशज तो थे ही। इसके अतिरिक्त कहावतों और मुहावरों के प्रयोग से उन्होंने भाषा को सजीवता प्रदान की। उनके नेतृत्व में हिन्दी साहित्य को नये क्षितिज प्राप्त हुए। वे वस्तुत: आधुनिकता के जनक थे। ललित साहित्य की अनेक विधाओं के अतिरिक्त उपयोगी साहित्य के अन्तर्गत आने वाले विभिन्न विषयों की ओर भी उनकी दृष्टि गयी। यही उन्हीं की प्रेरणा थी कि खड़ी बोली की बाल्यावस्था में ही इतिहास, भूगोल, विज्ञान, धर्मपुराण, उपन्यास, नाटक, निबन्ध, पुरातत्व आदि न जाने कितने विषयों की ओर हिन्दी के लेखक प्रवृत्त हुए। भारतेन्दु एक व्यक्ति नहीं, वरन् संस्था थे। उन्होंने कितने ही लेखकों को जन्म दिया, जिनमें प्रमुख हैं—श्रीनिवास दास (1851-1887), बालकृष्ण भट्ट (1844-1914), प्रतापनारायण मिश्र (1856-1894), राधाकृष्णदास (1865-1907), कार्तिक प्रसाद खत्री (1851-1904), राधाचरण गोस्वामी (1850-1925), बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमधन' (1855-1923) आदि।

भारतेन्दु-युग का गद्य नितान्त सजीव है। इस युग के लेखकों में अपनी भाषा, अपना जाति और अपने राष्ट्र के उत्थान के लिए बड़ी अकुलाहट थी और उन्होंने नवयुग की इस नयी लहर को घर-घर पहुँचाने का अथक प्रयास किया था।

द्विवेदी युग

भारतेन्दु-युग के बाद बीसवीं शताब्दी में जिस एक व्यक्ति ने हिन्दी गद्य के निर्माण व प्रसार के लिए सर्वाधिक स्तुत्य कार्य किया, उसका नाम महावीर प्रसाद द्विवेदी है। इण्डियन

प्रेस, प्रयाग से 'सरस्वती' मासिक पत्रिका का प्रकाशन हिन्दी साहित्य के इतिहास की महत्वपूर्ण घटना है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी इसके यशस्वी सम्पादक थे। इस पत्रिका के माध्यम से द्विवेदीजी ने भाषा के परिमार्जन का अभूतपूर्व कार्य सम्पन्न किया। उसकी प्रेरणा और निर्देशन से ललित और उपयोगी दोनों प्रकार का साहित्य विपुल परिमाण में लिखा गया। 'सरस्वती' ने हिन्दी भाषा का एक स्तर प्रतिष्ठित किया। भाषा के शब्द-भंडार की वृद्धि के साथ-साथ उसकी अभिव्यंजना शक्ति की अभिवृद्धि भी हुई। विविध प्रकार की भाषा-शैलियों के जन्म के साथ-साथ गद्य के विविध रूपों का विकास हुआ। प्रेमचन्द, प्रसाद, बाल-मुकुन्द गुप्त पद्मसिंह शर्मा, श्यामसुन्दर दास और रामचन्द्र शुक्ल जैसे लेखक द्विवेदी-युग की ही देन हैं। निबन्धों में विषय-विस्तार के साथ विविध शैलियों का आकर्षण सौन्दर्य भी दिखायी पड़ा। इस दृष्टि से स्वयं द्विवेदीजी के अतिरिक्त बालमुकुन्द गुप्त, पूर्णसिंह, यशोदानन्दन अखौरी, चतुर्भुज औदीच्य, पद्मसिंह शर्मा, श्यामसुन्दरदास व रामचन्द्र का कार्य अधिक महत्वपूर्ण है। अन्तिम तीन लेखकों ने समालोचना और इतिहास लेखन के क्षेत्र में भी अभूतपूर्व कार्य किया। इस क्षेत्र में मिश्रबन्धुओं का कार्य भी उल्लेखनीय है।

उपन्यास-साहित्य में देवकीनन्दन खत्री के चमत्कार-प्रधान तिलिस्मी उपन्यासों की परम्परा से हटकर मानव चरित्र के चित्रण की ओर इस युग के रचनाकार सचेष्ट हुए। वैसे तिलिस्मी, जासूसी, सामाजिक, ऐतिहासिक, पौराणिक, चरित्र-प्रधान, भाव-प्रधान सभी प्रकार के उपन्यास इस युग में लिखे गये। द्विवेदी-युग के उपन्यासकारों में प्रेमचन्द के अतिरिक्त किशोरीलाल गोस्वामी, गोपालराम गहमरी, वृन्दावन लाल वर्मा, विश्वम्भरनाथ, कौशिक और चतुरसेन शास्त्री उल्लेखनीय हैं।

कहानी का तो जन्म ही 'सरस्वती' से हुआ। पहले अंग्रेजी और संस्कृत-साहित्य की प्रसिद्ध कृतियों के कहानी-रूपान्तर 'सरस्वती' में प्रकाशित हुए। इसके बाद हिन्दी की मौलिक कहानी ने जन्म लिया और धीरे-धीरे घटना-प्रधान, चरित्र-प्रधान, वातावरण-प्रधान, भावना-प्रधान कहानियाँ प्रकाश में आयीं। प्रेमचन्द 'प्रसाद', 'कोशिक', चन्द्रधर शर्मा और सुदर्शन इस युग के प्रतिनिधि कहानीकार हैं। उपन्यास और कहानी के क्षेत्र में प्रेमचन्द का उत्तराधिकारी जिन लेखकों ने सफलतापूर्वक वहन किया, उनमें जैनेन्द्रकुमार 'उग्र', कौशिक, 'अज्ञेय', 'चतुरसेन शास्त्री', भगवतीप्रसाद बाजपेयी, भगवतीचरण वर्मा, प्रतापनारायण श्रीवास्तव, राहुल सांकृत्यायन, यशपाल, इलाचन्द्र जोशि, अमृतलाल नागर आदि के नाम स्मरणीय हैं।

पत्र-पत्रिकाओं में 'सरस्वती' के अतिरिक्त 'नगरी प्रचारिणी पत्रिका', 'इन्दु', 'माधुरी', 'मर्यादा', 'सुधा', 'जागरण', 'हंस', 'प्रभा', 'कर्मवीर', 'विशाल भारत' आदि ने हिन्दी साहित्य के सर्वतोन्मुखी विकास में एक बहुत बड़ी भूमिका प्रस्तुत की।

भारतेन्दु के बाद नाटक के क्षेत्र में सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान जयशंकर 'प्रसाद' के ऐतिहासिक नाटकों का है। उनके नाटकों में देश के प्राचीन गौरव के चित्र हैं और उनमें संस्कृति और राष्ट्र-प्रेम की भावनाओं के रंग पर्याप्त गहरे हैं। चरित्र-चित्रण, कथोपकथन व उद्देश्य की दृष्टि से प्रसाद के नाटकों की महत्ता असंदिग्ध है।

'प्रसाद' के परवर्ती नाटककारों में लक्ष्मीनारायण मिश्र, हरिकृष्ण प्रेमी, रामकुमार वर्मा, सेठ गोविन्ददास, उदयशंकर भट्ट, गोरिन्दवल्लभ व उपेन्द्रनाथ 'अश्क' के नाम उल्लेखनीय हैं।

छायावादी युग

द्विवेदी-युग के बाद हृदय की निगूढ़तम वृत्तियों को व्यक्त करने की क्षमता छायावादी युग के गद्य में दिखायी पड़ी। छायावादी कवियों ने अपनी अनोखी प्रतिभा और सृजन-शक्ति

से उसके लाक्षणिक, अलंकृत, प्रतीकात्मक और वक्रतापूर्ण स्वरूपों को उद्घाटित किया। 'प्रसाद', निराला, पन्त महादेवी वर्मा, 'दिनकर' आदि ने अपने काव्य-ग्रन्थों की भूमिकाओं व स्वतन्त्र लेखों में एक नये आकर्षक गद्य का स्वरूप सामने रखा। इसी युग में वियोगी हरि, राय कृष्णदास और माखनलाल चतुर्वेदी के भावुकता-प्रधान गद्य के दर्शन हुए।

समालोचना और इतिहास-लेखन के क्षेत्र में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के विराट योगदान के पश्चात् जिन व्यक्तियों ने सराहनीय कार्य किया, उनमें नन्ददुलारे बाजपेयी, हजारीप्रसाद द्विवेदी, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र और डॉ. नगेन्द्र के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। परवर्ती इतिहास लेखकों में डॉ. रामकुमार वर्मा, डॉ. लक्ष्मीनगर वार्ष्णेय, डॉ. मोहन अवस्थी तथा डॉ. गणपति चन्द्रगुप्त के नाम उल्लेखनीय हैं।

प्रगतिवादी युग

प्रगतिवादी युग में सहज व्यावहारिक और अलंकारविहीन गद्य की प्रतिष्ठा हुई। उसमें भावुकतापूर्ण अभिव्यक्ति का स्थान संतज और चुटीली उक्तियाँ ने लिया। डॉ. रामविलास वर्मा, शिवनन्दन सिंह चौहान, प्रकाशचन्द्र गुप्त इस युग के लेखक हैं।

रेखाचित्र और संस्मरण लेखकों में पद्मसिंह शर्मा, बनारसीदास चतुर्वेदी, महादेवी वर्मा, रामवृक्ष बेनीपुरी और कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

हिन्दी में इधर कुछ उत्कृष्ट साहित्यिक जीवन चरित्र और आत्म-कथाएँ प्रकाशित हुए हैं। इनमें अमृतराय का 'कमल का सिपाही' और डॉ. रामविलास शर्मा की निराला की साहित्य-साधना, उत्कृष्ट कृतियाँ हैं। आत्मकथाओं में डॉ. राजेन्द्र प्रसाद की आत्मकथा के बाद पांड्ये बेचन शर्मा 'उग्र' की 'अपनी खबर' और बच्चन की 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ।' व 'नीड़ का निर्माण' आदि कृतियाँ विशेष लोकप्रिय हुई है।

आधुनिक समय में निबन्ध, नाटक कहानी, उपन्यास आदि के अतिरिक्त डायरी, रिपोर्ताज फैन्टेसी, रेडियो रूपक आदि कितनी ही नयी विधाओं के अन्तर्गत उत्तोत्तम साहित्य की रचना हो रही है। इसके अतिरिक्त विभिन्न विश्वविद्यालयों में प्रतिवर्ष जो शोध प्रबन्ध निकल रहे हैं। उनके द्वारा वैज्ञानिक विवेचन, विश्लेषण तथा मूल्यांकन के लिए पूर्ण सक्षम हिन्दी गद्य का स्वरूप विकसित हो रहा है।

❑

2 हिन्दी उपन्यास का स्वरूप और विकास

प्रश्न 2. हिन्दी उपन्यास के उद्भव और विकास पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।

अथवा

हिन्दी उपन्यास के उद्भव व विकास पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।

उत्तर- **हिन्दी उपन्यास का उद्भव और विकास**

उपन्यास आधुनिक युग की महत्वपूर्ण कथा-विधा है। इसका प्राचीन युग रूपकथा और आख्यायिका में देखा जा सकता है। प्राचीन युग में कादम्बरी, हर्ष चरित, बैताल पचीसी, सिंहासन बत्तीसी आदि के अनुवाद मिलते हैं। उन्नीसवीं सदी में जिस समय हमारे देश में पाश्चात्य साहित्य और संस्कृति के सम्पर्क के कारण राष्ट्रीय जागरण की एक देशव्यापी लहर उत्पन्न हो गई थी और राष्ट्रीय जागरण में अनेक उत्तरदायित्व की महत्ती-भूमिका को अदा करने के लिए हिन्दी पद्य और उसकी विभिन्न विधाओं का जन्म हो रहा था। उसी समय हिन्दी गद्य की अन्य विधाओं के साथ-साथ ही हिन्दी उपन्यासों का सूत्रपात हुआ। राष्ट्रीय जागरण में अपने सहयोग के उत्तरदायित्व की भूमिका निभाने के उद्देश्य से आरम्भ में हिन्दी उपन्यासों में राष्ट्रीय चेतना तथा राष्ट्रीय जागरण का तत्व स्पष्ट रूप से मिलता है। हिन्दी साहित्य में उपन्यासों के विकास का भी अध्ययन सुविधा की दृष्टि से निम्न चरण में कर सकते हैं—

1. प्रथम चरण—प्रेमचन्द पूर्व युग। 2. द्वितीय चरण—प्रेमचन्द युग।
3. तृतीय चरण—प्रेमचन्द उत्तर युग। 4. उपन्यास शैली में नवीन प्रयोग।

1. प्रथम चरण—प्रेमचन्द से पूर्व का युग सन् 1870 से 1916 तक माना जाता है। इस युग में हिन्दी उपन्यासों का आरम्भ बंगला और मराठी भाषा के उपन्यासों के अनुवाद से होता है। यद्यपि बंगला और मराठी भाषा का साहित्य भी हिन्दी साहित्य की ही भाँति आरम्भ में पद्यमय ही था, किन्तु उन भाषाओं में हिन्दी भाषा की अपेक्षा गद्य-साहित्य का आरम्भ अपेक्षाकृत पहले शुरू हुआ। यही कारण है कि बंगला और मराठी भाषा में उपन्यास पहले शुरू हुए। यद्यपि उन भाषाओं में भी उपन्यास का आरम्भ पाश्चात्य साहित्य के सम्पर्क से ही आरम्भ हुआ था और हिन्दी की अपेक्षा बंगला और मराठी भाषाएँ पाश्चात्य साहित्य के सम्पर्क में पहले आई। अत: उनमें गद्य की विधाओं का सूत्रपात पहले हुआ। हिन्दी में वह प्रभाव अधिकांशत: बंगला और मराठी साहित्य के माध्यम से हुआ हिन्दी उपन्यास का आरम्भ बंगला और मराठी उपन्यासों के अनुवाद से होता है।

भारतेन्दु तथा उनके समकालीन लेखकों ने बंगला और मराठी भाषा से अनुवाद करने प्रारम्भ किये। भारतेन्दु एक जागरूक कलाकार थे। राष्ट्रीय जागरण में नाटकों की ही भाँति उपन्यासों की महत्ता को भी उन्होंने समझा था और उसके विकास की ओर भी उनका ध्यान गया था, किन्तु साहित्य के अंग का समर्थन करने का सौभाग्य उन्हें प्राप्त नहीं हो सका। यद्यपि उन्होंनें अनुवाद के अतिरिक्त एक मौलिक उपन्यास 'कुछ आप बीती कुछ जग बीती'

भी लिखना प्रारम्भ किया था जो असमय में ही उनकी मृत्यु हो जाने के कारण आरम्भ होकर ही रह गया।

हिन्दी के सर्वप्रथम मौलिक उपन्यासकार होने का श्रेय श्री निवासदास को प्राप्त होता है। आपका पहला मौलिक उपन्यास 'परीक्षा गुरु' सन् 1832 में प्रकाशित हुआ था। श्रीनिवासदास के बाद हिन्दी के अनेक लेखकों ने उपन्यास लिखने आरम्भ किए। बालकृष्ण भट्ट का 'नूतन ब्रह्मचारी', किशोरीलाल गोस्वामी का 'हृदय हारिणी', लज्जाराम मेहता का 'परतन्त्र लक्ष्मी', कार्तिप्रसाद का 'दीनानाथ', हनुमतसिंह का 'चंद्रकला', राधाकृष्णदास का 'निःसहाय हिन्दू' अच्छे सामाजिक उपन्यासों में से थे। इन सभी उपन्यासों में समाज-सुधार की भावना निहित है। विधवाओं की दयनीय दशा, सामाजिक कुरीतियों के परिणाम आदि इनके सामान्य विषय हैं। इस युग में ऐतिहासिक इतिवृत को लेकर भी उपन्यास लिखे गये, जिनमें इतिहास के पृष्ठों से कथा ग्रहण कर लेखकों ने तत्कालीन जीवन पर सुधारवादी प्रभाव डालने के उद्देश्य से उनका सृजन किया है।'

इस युग में लिखे गए उपन्यासों की एक दूसरी है—तिलस्मी और अय्यारी के उपन्यासों की जो सर्वाधिक प्रसिद्ध हुए। देवकीनन्दन खत्री, दुर्गाप्रसाद खत्री और गोपालराम गहमरी का नाम इस क्षेत्र में उल्लेखनीय है। सन् 1891 में देवकीनन्दन खत्री ने 'चंद्रकान्ता' और 'चन्द्रकांता संतति' नामक दो प्रसिद्ध उपन्यास लिखे।

प्रथम वर्ग के उपन्यासों में तत्कालीन समाज की बदलती हुई परिस्थितियों में नए आदर्शों का चित्रण मिलता है, तो दूसरे वर्ग के उपन्यासों में कल्पित राजवर्ग और उससे सम्बन्धित चरित्रों को लेकर षड़यन्त्र तिलिस्म और अय्यारी का मनोरंजन और रोमांचकारी वर्णन मिलता है।

2. द्वितीय चरण—हिन्दी उपन्यास साहित्य के विकास में द्वितीय चरण का आरम्भ उपन्यास क्षेत्र में प्रेमचन्द के आगमन से माना जाता है। यद्यपि प्रेमचन्द पूर्व से ही हिन्दी उपन्यासों के कथागठन शैली और उद्देश्य आदि की दृष्टि से अन्तर आने लगा था, लेकिन वह अन्तर इतना स्पष्ट नहीं हो पाता था कि स्पष्ट रूप से उसे विकास के दूसरे चरण का द्योतक मान लिया जाये। उपन्यास क्षेत्र में प्रेमचन्द के आगमन से यह अन्तर बिल्कुल स्पष्ट हो गया। यही कारण है कि प्रेमचन्द से ही हिन्दी उपन्यास साहित्य के विकास का दूसरा चरण माना जाता है और विकास के द्वितीय चरण को प्रस्तुत करने का श्रेय प्राप्त है। प्रेमचन्द का उपन्यास 'सेवासदन' हिन्दी का पहला उपन्यास है, जिसमें सामाजिक संघर्ष को अपने यथार्थ रूप में कथावस्तु का आधार बनाया गया है। इसे हम हिन्दी उपन्यास साहित्य के विकास का मूल स्तम्भ कह सकते हैं।

प्रेमचन्द ने एक नवीन राष्ट्रीय चेतना को लेकर उपन्यास लिखने आरम्भ किए थे। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन और राष्ट्रीय चेतना ने एक संगठित शक्ति का रूप ग्रहण कर लिया था। भारतेन्दु काल में जो राष्ट्रीय जागरण केवल सांस्कृतिक सुधार तथा भारतीय गौरव के पुनरुत्थान के रूप में आरम्भ हुआ था, वह स्वराज्य स्थापना का रूप ग्रहण कर चला था। परिणामतः साहित्य में भी हमें वही परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में निम्न वर्ग, मध्यम वर्ग, किसान वर्ग और मजदूर वर्ग के जीवन की आर्थिक, राजनैतिक एवं सामाजिक समस्याओं के साथ-साथ उनके सम्बन्धों से उत्पन्न पारिवारिक एवं व्यक्तिगत जीवन की समस्याओं का चित्रण किया है। हमारे समाज का पूरा जीवन उनके उपन्यासों में चित्रित हुआ है। उन्होंने हमारी आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक समस्याओं के अतिरिक्त नैतिक, सांस्कृतिक तथा अन्य अनेक व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्ध रखने वाली समस्याओं का सफल

समाधान अपने उपन्यासों में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। उनके आरम्भिक उपन्यासों में आदर्श की स्थापना का आग्रह है, ऐसा आदर्श जिसे वह पहले सोचकर और उसे अपनी कथा के विकास के द्वारा स्थापित करने का निश्चय करके चले। लेकिन 'प्रेमा' से लेकर 'गोदान' तक वह क्रमशः आदर्श से यथार्थवाद की ओर अग्रसर होते हुए जान पड़ते हैं।

प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों के द्वारा उपन्यास साहित्य के विकास का जो दूसरा चरण प्रस्तुत किया है, उसके प्रभाव को लेकर अनेक नये उपन्यासकार उपन्यास क्षेत्र में आगे आये।

3. तृतीय चरण—प्रेमचन्द की सजग, सामाजिक जीवन के चित्रण की परम्परा को अधिक यथार्थरूप में लेकर लिखे जाने वाले प्रगतिवादी उपन्यासों से हिन्दी उपन्यासों के विकास के तीसरे चरण का आरम्भ माना जाता है। प्रगतिवादी उपन्यासों में मजदूर, किसान और मध्यम वर्ग के आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक संघर्षों का चित्रण है। इसमें निम्न वर्ग में उभरती शक्ति और चेतना को मुखरित किया गया है। इस नयी प्रगतिवादी चेतना को लेकर उपन्यास लिखने वालों में प्रमुख हैं—यशपाल कृष्णचन्द, उपेन्द्रनाथ 'अश्क', नागार्जुन, रागेयराधव, श्रीकृष्णदास, अमृतराय आदि।

हिन्दी के समस्त उपन्यास साहित्य को देखने से स्पष्ट होता है कि कथावस्तु की दृष्टि से उनके तीन वर्ग हैं—1. सामाजिक, 2. ऐतिहासिक और 3. पौराणिक, सभी सामाजिक उपन्यासों में यद्यपि मानव के सामाजिक या व्यक्तिगत संघर्षों और समस्याओं का ही चित्रण मिलता है, लेकिन लेखकों के चेतना भेद और दृष्टि भेद के अनुसार प्रगतिवादी, फायडवादी, गाँधीवादी आदि भेद हो जाते हैं। लेखकों ने जिस दृष्टि से सामाजिक जीवन और उनकी समस्याओं तथा संघर्षों का चित्रण किया है, उसी से उपन्यास की चेतना और उद्देश्य में भेद उत्पन्न हो जाता है।

4. उपन्यास शैली में नवीन प्रयोग—इधर उपन्यासों की टेकनिक में भी कई नये प्रयोग सामने आये हैं, जिनमें यह उल्लेखनीय है—राहुलजी का 'सिंह सेनापति', हजारीप्रसाद द्विवेदी का उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा', शिवप्रसाद मिश्र की 'बहती गंगा', धर्मवीर भारती का 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' 'गुनाहों का देवता', राजेन्द्र यादव 'प्रेत बोलते हैं' आदि।

पिछले दशक में हिन्दी उपन्यास ने अभूतपूर्व उन्नति की है। शिप तथा चेतना दोनों ही दृष्टियों से अनेक नये उपन्यासकार पिछले दशक में जन्म लेकर ख्याति प्राप्त कर, हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक होने का गौरव प्राप्त कर गये हैं। जैसे राजेन्द्र यादव, चंदकमल जोशी, यागवेन्द्र शर्मा, गुरुदत्त, फणीश्वरनाथ रेणु आदि। इस युग में प्रकाशित प्रसिद्ध उपन्यास जहाज का पंछी, रांगेय राघव का 'काका', राजेन्द्र यादव का उपन्यास 'उखड़े हुए लोग' आदि।

हिन्दी का उपन्यास साहित्य बहुत तेजी से विकास कर रहा है। यह संक्षेप में हिन्दी के उपन्यास साहित्य के विकास का इतिहास है। इस विकास में ऐतिहासिक उपन्यासों के सृजन की ओर लेखकों का ध्यान गया था। श्री किशोरीलाल गोस्वामी, गंगाप्रसाद गुप्त, श्री जगरामदास गुप्त आदि अनेक उपन्यासकारों ने हिन्दी उपन्यासों के विकास के प्रथम चरण में महत्वपूर्ण योगदान किया है।

उपन्यास साहित्य के विकास के द्वितीय चरण में श्री वृन्दावनलाल वर्मा के रूप में एक ऐसी प्रतिभा ने जन्म लिया जिन्होंने हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों के विकास और संवर्द्धन में महत्वपूर्ण योग दिया। तब से निरन्तर ऐतिहासिक उपन्यास हिन्दी उपन्यास साहित्य के भंडार में वृद्धि करते आ रहे हैं और ऐतिहासिक उपन्यास लिखने का चाव और उन्हें पढ़ने की रुचि

पाठकों में निरन्तर बढ़ती जा रही है। यह सत्य हिन्दी के निरन्तर बड़ी संख्या में प्रकाशित होने वाले उपन्यासों से सहज ही सिद्ध और स्पष्ट है।

हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में अनेक प्रतिभा सम्पन्न नए लेखक पदार्पण कर रहे हैं। इन्होंने उसके विविध्य पक्षों को नए आयाम देने का प्रयत्न किया है। इनमें अधिक उल्लेखनीय हैं- रमेश बक्षी, नरेन्द्र कोहली, निर्मल वर्मा रामदरश मिश्र, राही मासूम राजा, श्याम सुन्दर व्यास, मालती जोशी आदि। इनके द्वारा समसामयिक शहरी तथा ग्राम्य जीवन का बड़ा सहज और यथार्थवादी चित्रण किया गया है।

प्रश्न 3. उपन्यास शब्द का अर्थ बताते हुए उसकी परिभाषा, स्वरूप और उसकी सामान्य विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।

अथवा

उपन्यास की परिभाषा देते हुए उसके तत्वों का निरूपण कीजिए।

उत्तर-

उपन्यास का अर्थ एवं परिभाषा

'उपन्यास' शब्द दो शब्दों 'उप' तथा 'न्यास' के योग से बना है। 'उप' का अर्थ है 'समीप' और 'न्यास' का अर्थ है, स्थापन। इस प्रकार उपन्यास का अर्थ है—मानव जीवन के निकट मानव-जीवन का स्थापन। उपन्यास में मानव जीवन का ही चित्रण होता है, जिसे पढ़कर पाठक मानव-जीवन को समझने-बूझने का ज्ञान प्राप्त करता है।

हिन्दी में उपन्यास अंग्रेजी के 'नावेल' (Novel) का पर्यायवाची है। 'नावेल' का अर्थ है नया। इटली में भी उपन्यास के लिए 'नविले' तथा फ्रांस में नोवल शब्द का प्रयोग होता था।

कुछ प्रमुख पाश्चात्य व हिन्दी विद्वानों ने 'उपन्यास' की निम्नलिखित परिभाषाएँ की हैं-

1. **बेनस्टर** के अनुसार—"उपन्यास एक ऐसा कल्पित विशालकाय तथा गद्यमय आख्यान है, जिसमें एक ही कथानक के अन्तर्गत यथार्थ जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्रों और उनके क्रिया-कलापों का चित्रण करता है।"

2. **क्रोस** के अनुसार—"उपन्यास उस गद्यमय अल्प-कथा का नाम है, जिसमें वास्तविक जीवन का यथार्थ चित्रण रहता है।"

3. **न्यू इंग्लिश डिक्शनरी** में उपन्यास की परिभाषा इस प्रकार दी गई है—"उपन्यास कार्य-कारण श्रृंखला में बँधा हुआ लम्बे आकार का काल्पनिक गद्य कथानक है। इसमें वास्तविक जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्रों के कार्यों का चित्रण किया जाता है।"

4. **डॉ. श्यामसुन्दर दास** के अनुसार—"उपन्यास मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा है।

उपन्यास का स्वरूप

गद्य साहित्य की विभिन्न विधाओं में उपन्यास प्रमुख है। उपन्यास मानव जीवन तथा समाज पर आधारित पूर्ण कथानक होता है। यह कहानी से भिन्न है। कहानी जीवन के किसी एक पक्ष का चित्रण होता है, परन्तु उपन्यास में जीवन की विस्तृत झाँकी होती है। उपन्यास मानव जीवन तथा समाज की विभिन्न घटनाओं का संग्रहित रूप होता है। इसमें कथावस्तु का व्यवस्थित संगठन होता है और चरित्र-चित्रण, देशकाल तथा उद्देश्य पर पूर्ण ध्यान रखा जाता है। इस प्रकार उपन्यास का क्षेत्र जीवन में पूर्णतया सम्बद्ध है। कोई उपन्यास उत्तम पुरुष शैली में होता है, तो कोई पात्रों की समष्टि के माध्यम से अग्रसर होता है। आत्मकथा, डायरी, जीवनी आदि अनेक शैलियों में उपन्यास लिखे जाते हैं।

उपन्यास की विशेषताएँ

उपयुक्त विवेचन के आधार पर उपन्यास की निम्नलिखित विशेषताएँ होनी चाहिए—

(1) मानव जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाली कथा होनी चाहिए। अर्थात् जीवन की वास्तविक और यथार्थ कथा होनी चाहिए।

(2) इस कथा को एक समवेत मूर्तरूप और सजीवता प्रदान करने के लिए घटनाओं का श्रृंखलाबद्ध संयोजन होना चाहिए जो मानव जीवन को अपनी पूर्णता में उपस्थित कर सके।

(3) जीवन जैसा 'था' और जैसा है की जागरूकता प्रदान कर जीवन कैसा 'होना चाहिए' के आदर्श की प्रेरणा से मुक्त जीवन का उद्देश्य स्पष्ट होना चाहिए। अर्थात् भावी जीवन की कल्पनाओं से कथा की वास्तविक अनुप्राणिता होनी चाहिए। सरल शब्दों में, यथार्थ और आदर्श का समन्वय होना चाहिए।

उपन्यास के तत्व

पाश्चात्य विद्वान् **श्री हडसन** ने उपन्यास कला का तात्विक विवेचन करते हुए और उपन्यास की रचना के आधारभूत मूल तत्वों का निरुपण करते हुए कथानक (कथा वस्तु), चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, देशकाल और वातावरण, भाषा-शैली और जीवन-दर्शन या उद्देश्य को उपन्यास का मूल तत्व माना है। उन्हीं छः तत्वों को पाश्चात्य और भारतीय विद्वानों ने अब उपन्यास के मूल तत्वों के रूप में ग्रहण कर लिया है। हम आगे उपन्यास के संदर्भ में उन्हीं का तात्विक विवेचन करेंगे।

1. कथानक (कथावस्तु)—कथानक उपन्यास का मूल आधार है। बिना कथानक के कोई उपन्यास चल नहीं सकता, क्योंकि उपन्यास मानव जीवन को लेकर चलता है और मानव जीवन में घटित घटनाएँ तथा उसके सन्दर्भ में मनुष्य के क्रियाकलाप और मनोभाव ही कथा का स्वरूप निर्माण करते हैं। यही कथानक उपन्यास का मूल आधार बनती है।

उपन्यास में प्रायः कथानक के दो रूप रहते हैं—मनुष्य तथा गौण। मनुष्य कथा आदि से अन्त तक चलती है और वही लेखक के प्रतिपाद्य तथा अभीष्ट सिद्धि में सहायक होते हैं। गौण कथाएँ मुख्य कथा की सहायक बनकर आती है। कथा के चुनाव और विन्यास में उपन्यासकार को निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए—

(i) उपन्यास का कथानक युग जीवन से सम्बद्ध हो।

(ii) अनर्ग तथा अनावश्यक वस्तुओं से मुक्त हो।

(iii) युग जीवन की मान्यताओं का पोषक हो।

(iv) अंतकथाएँ मूलकथा के उत्कर्ष विधान में अनिवार्य रूप से सहायक हों।

2. पात्र तथा चरित्र-चित्रण—पात्र और चरित्र-चित्रण को महत्व देते हुए मुंशी प्रेमचन्द ने कहा है—उपन्यास ही मानव चरित्र का चित्र मात्र है। वस्तुतः पात्र ही कथानक को विकसित करते हैं और उनका चरित्र उपन्यास को गन्तव्य तक ले जाता है। पात्र ही उपन्यास रूपी सागर में कथानक रूपी नाव को उद्देश्य रूपी तट की ओर ले जाने वाले कर्णधार है।

चरित्र-चित्रण पात्रों के क्रियाकलापों से सम्बन्ध रखता है। पात्रों के क्रियाकलाप ही घटनाओं का कारण बनते हैं और घटनाओं का श्रृंखलाबद्ध संयोजन कथावस्तु का रूप ग्रहण करता है। पात्रों के बिना कथा का अस्तित्व नहीं हो सकता। पात्रों के चरित्र ही घटनाओं में तथा सम्बन्धित अन्य पात्रों के सम्बन्ध सूत्रों का निर्माण करते हैं। इस प्रकार उपन्यास में आने वाले हर पात्र की अपनी चारित्रिक विशेषताएँ होती हैं। जो घटनाएँ कथा का अंग बनती है,

उन्हीं के संदर्भ में पात्रों की चारित्रिक विशेषताएँ स्पष्ट होती चलती हैं। उपन्यास में चरित्र-चित्रण की अनेक विधियाँ प्रयोग में आती हैं। उन्हें निम्न प्रकार से देखा जा सकता है—

(i) कभी उपन्यासकार अपनी ओर से विभिन्न पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं का वर्णन करता है।
(ii) कभी अन्य पात्रों के माध्यम से अन्य पात्रों का चरित्र उभरता है।
(iii) कभी पात्रों के आपसी सम्बन्धों के माध्यम से पात्रों का चरित्र उभरता है।
(iv) तो कभी-कभी किसी पात्र द्वारा किए गए किसी काम या कही गयी कोई बात की प्रतिक्रिया किये गये काम या कही गयी बात से चरित्र उभरता है।
(v) और कभी पात्र स्वयं अपने मनोविश्लेषण द्वारा अपनी चारित्रिक विशेषताओं को स्पष्ट करता है।

3. कथोपकथन—कथोपकथन या संवाद उपन्यास का तीसरा महत्वपूर्ण तत्व है, जो उपन्यास के स्वरूप गठन में मुख्यत: चार काम करता है—कथावस्तु को आगे बढ़ाता है, पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं और आपसी सम्बन्धों को स्पष्ट करता है, घटनाओं में श्रृंखला तथा सम्बन्ध स्थापित करता है तथा उपन्यास के उद्देश्य को स्पष्ट करता है।

कथोपकथन द्वारा उपन्यासकार उपन्यास में वर्णित घटनाओं तथा दृश्यों को अपेक्षित रूप तथा सजीवता और मर्मस्पर्शिता उत्पन्न करता है एवं कथा विस्तार करता है।

पात्रों के आपसी कथोपकथन द्वारा ही पाठक पात्रों के मनोभावों और अलग-अलग स्वभावों से परिचित होता है और उनके प्रति अलग-अलग मनोभावों का निर्माण करता है।

विभिन्न पात्रों के आपसी विरोधी मतों को व्यक्त करने वाले कथोपकथनों के द्वारा ही उपन्यासकार उपन्यास के उद्देश्य और विचार को स्पष्ट करता है।

कथा तथा उसके विकास में पात्र की उपयुक्त भूमिका के प्रति उपयुक्तता पात्रों की अपनी विशेषताओं, जीवन-स्तर आदि की अनुकूलता, सम्बद्धता, स्वाभाविकता एवं सहजता, सजीवता, संक्षिप्तता एवं उद्देश्य को उभारने की क्षमता आदि कथोपकथन के अनेक गुण हैं।

4. देशकाल या वातावरण—देशकाल या वातावरण शब्द से ही स्पष्ट है कि कला देश-प्रदेश अथवा स्थान की है और उसका काल अथवा समय क्या है और उस स्थान तथा समय की परिस्थितियाँ क्या हैं ? उनका पात्रों पर कैसा प्रभाव पड़ता है ? इस दृष्टि से उसके तीन भेद किए जा सकते हैं—सामाजिक, प्राकृतिक एवं ऐतिहासिक।

पहली के अन्तर्गत लेखक सामाजिक स्थिति, रीति-रिवाज, वेशभूषा, पात्रों का जीवनगत स्तर, उनकी शिक्षा, संस्कृति, संस्कार आदि का चित्रण करता है।

दूसरी के अन्तर्गत लेखक उसके परिवेश तथा संदर्भ में पात्रों की मनोदशा का भावात्मक स्वरूप प्रस्तुत करता है और उसे अधिक मार्मिकता प्रदान करता है।

तीसरे का उपयोग ऐतिहासिक उपन्यासों में ही होता है।

अत: देशकाल और वातावरण के विषय में सामान्यत: कहा जा सकता है कि कथानक के मर्म और पात्रों की विशेषताओं को उभारने की उपयुक्त पृष्ठभूमि प्रदान करता है।

5. भाषा-शैली—भाषा-शैली का उपन्यास के तत्वों में अपना प्रमुख और महत्वपूर्ण स्थान होता है। भाषा-शैली ही उपन्यास को प्रारम्भ से अन्त तक पढ़े जाने की उत्सुकता और उमंग पाठक में जगाती है।

भाषा और शैली यद्यपि अलग-अलग हैं, किन्तु भाषा-शैली का अंग है शैली भाषा का प्राण है। भाषा कथा और उसके पात्रों को वाणी प्रदान करती है और शैली उस वाणी में

साभिप्राय अर्थ की प्राण प्रतिष्ठा करती है। शैली कथा को कहने और प्रस्तुत करने तथा पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं और मनोभावों को चित्रित करने के ढंग से सम्बन्ध रखती है। शैली ही वास्तव में उपन्यास में मौलिकता के गुण का समावेश करती है।

भाषा सरल, सजीव, पात्रोनुकूल, रोचक, मर्मस्पर्शी, प्रभावपूर्ण और प्रवाहमयी होनी चाहिए।

शैली अनेक प्रकार की होती है, जैसे वर्णनात्मक शैली, आत्मकथात्मक शैली, पात्रात्मक शैली, डायरी शैली, जीवन शैली और मिश्रित शैली आदि। अधिकांश उपन्यासों में एक साथ कई शैलियों का प्रयोग किया जाता है।

भाषा-शैली का महत्व इसलिए भी अधिक है क्योंकि इन्हीं के माध्यम से लेखक अपने उपन्यास को प्रभावमय और मर्मस्पर्शी बनाता है और उसमें मौलिकता का समावेश करता है।

6. उद्देश्य—उपन्यास का उद्देश्य निःसन्देह कथा के माध्यम से मनोरंजन जुटाना है, परन्तु गहराई से देखें तो यह मनोरंजन साधन है, साध्य नहीं। उपन्यास का साध्य है जीवन की व्याख्या। समस्त साहित्य का सम्बन्ध जीवन से है, जीवन की अभिव्यंजना ही उपन्यास का प्रधान उद्देश्य है। उपन्यासकार जीवन की व्याख्या इस प्रकार सुन्दर शैली में करता है कि वह सहज ग्राह्य हो जाती है।

उपन्यास लिखना भी अपने में एक उद्देश्य है। कोई लेखक उपन्यास तभी लिखता है, जब वह किसी कथा, किन्हीं पात्रों और उनके जीवन रहस्यों से जिनका परिचय या तो उससे हुआ है या जिनका उदय जीवन के अनुभवों के आधार पर उसकी कल्पना में हुआ है, परिचय यह अपने से अन्य सबसे कराना चाहता है। उपन्यास की कथा की कल्पना की अपनी भोगी हुई अनुभूतियों का जब वह अन्यों के साथ मिलकर सहयोग करना चाहता है, तो वह उपन्यास के रूप में उसे अभिव्यक्त कर सबके सहयोग योग्य बना देता है। अत: उद्देश्य उपन्यास का एक अत्यावश्यक और महत्वपूर्ण तत्व है। ❑

3 रामगढ़ की रानी
(वृंदावनलाल वर्मा)

प्रश्न 4. वृंदावनलाल वर्मा का साहित्यिक परिचय दीजिए।

उत्तर-

वृंदावनलाल वर्मा का परिचय

मूर्द्धन्य उपन्यासकार श्री वृंदावनलाल वर्मा का जन्म 9 जनवरी, 1889 ई. को मऊरानीपुर (झाँसी उत्तरप्रदेश) में एक कुलीन श्रीवास्तव कायस्थ परिवार में हुआ था। उनका बाल्यकाल काफी सुखमय रहा और उन्हें शिक्षा भी सुचारू रूप से मिली। इतिहास के प्रति वर्माजी की रुचि बाल्यकाल से ही थी। आपके परदादा ने 1857 के युद्ध में महारानी झाँसी के साथ देश के लिए संघर्ष किया था। बचपन में आपने उनसे झाँसी की रानी की वीरता की कहानियाँ सुनी थीं। बी.ए. पास करने के बाद सन् 1916 में वकालत की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद इसे पेशे के रूप में अपनाया और लेखन कार्य भी करते रहे। आपने इतिहास, राजनीति, दर्शन, मनोविज्ञान, संगीत, मूर्तिकला तथा वास्तुकला का भी गहन अध्ययन किया।

ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना के कारण वर्माजी को सर्वाधिक प्रसिद्धि प्राप्त हुई। उन्होंने अपने उपन्यासों में इस तथ्य को झुठला दिया कि 'ऐतिहासिक उपन्यास में या तो इतिहास मर जाता है या उपन्यास', बल्कि उन्होंने इतिहास और उपन्यास दोनों को एक नई दृष्टि प्रदान

की। वृंदावनलाल वर्मा जी की साहित्यिक सेवा के लिए भारत सरकार ने आपको 'पद्म भूषण' की उपाधि से विभूषित किया, आगरा विश्वविद्यालय ने डी. लिट् की मानद् उपाधि प्रदान की। उन्हें 'सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार' से भी सम्मानित किया गया तथा 'झाँसी की रानी' पर भारत सरकार ने दो हजार रुपए का पुरस्कार प्रदान किया। इनके अतिरिक्त उनकी विभिन्न कृतियों के लिए विभिन्न संस्थाओं ने भी उन्हें सम्मानित और पुरस्कृत किया।

वर्माजी के अधिकांश उपन्यासों का प्रमुख प्रान्तीय भाषाओं के साथ-साथ अंग्रेजी, रूसी तथा चैक भाषाओं में भी अनुवाद हुआ है। आपके उपन्यास 'झाँसी की रानी' तथा 'मृगनयनी' का फिल्मांकन भी हो चुका है। ऐसे महान् साहित्यकार का निधन 23 फरवरी, 1969 को हुआ।

कृतियाँ

उपन्यास—मृगनयनी, झाँसी की रानी, टूटे काँटे, कचनार, अमरबेल, विराटा की पद्मिनी, माधवजी सिंधिया, गढ़ कुंडार, महारानी दुर्गावती, लगन, कुंडलीचक्र, भुवनविक्रम, ललितादित्य, अचल मेरा कोई, मुसाहिबजू, रामगढ़ की रानी, सोना, सोती आग, डूबता शंखनाद, अहिल्याबाई, उदयकिरण, देवगढ़ को मुसकान, कभी-न-कभी, प्रत्यागत, संगम, प्रेम की भेंट।

कहानी-संग्रह—शरणागत, दबे पाँव, वीर का बलिदान।

नाटक—ललिताविक्रम, मंगलसूत्र, राखी की लाज, हंस-मयूर।

वृंदावनलाल वर्मा हिन्दी के ही नहीं, विश्व साहित्य के अमर कथाकार हैं। साहित्य जगत में वे प्रेमचंदजी के समान्तर महत्व रखते हैं। उन्होंने जहाँ ऐतिहासिक-सामाजिक उपन्यास, नाटक, एकांकी लिखे। वहीं गद्य गीत, जीवनी और बाल-साहित्य की रचना भी की। उन्होंने बुंदेलखंड के जीवन मूल्य और सांस्कृतिक उपलब्धि को राष्ट्रीय पहचान दी। वे हिन्दी के ऐसे पहले कथाकार हैं, जिन्होंने आंचलिकता को प्रतिष्ठित किया। ❑

प्रश्न 5. श्री वृंदावनलाल वर्मा द्वारा रचित उपन्यास 'रामगढ़ की रानी' का सारांश लिखिए।

अथवा

'रामगढ़ की रानी' उपन्यास की कथावस्तु संक्षेप में लिखिए।

उत्तर-

'रामगढ़ की रानी' उपन्यास का सारांश

'रामगढ़ की रानी' प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यासकार वृंदावनलाल वर्मा द्वारा रचित उपन्यास है। वर्माजी जब गोंडवाने की महारानी दुर्गावती पर उपन्यास लिखने के लिए ऐतिहासिक सामग्री का अध्ययन कर रहे थे, तब उन्होंने सी.यू. विल्स की पुस्तक **'हिस्ट्री ऑफ राजगोंड महाराजास ऑफ द सतपुड़ा रेंज'** में रामगढ़ की रानी के शौर्य की बात भी पढ़ी कि वह सन् 1857 की क्रान्ति में अंग्रेजी राज के विरुद्ध बड़ी बहादुरी के साथ लड़ते-लड़ते मरी थीं। तब ही उन्हें इच्छा उत्पन्न हुई कि रामगढ़ की रानी पर उपन्यास लिखा जाए पर उस समय यथेष्ठ ऐतिहासिक विवरण हाथ में नहीं था, इसलिए बाद में अधिकाधिक जानकारी लेने के बाद ही उन्होंने यह उपन्यास लिखा। उपन्यास का सार इस प्रकार है-

मध्यप्रदेश के मंडला के उत्तर-पूर्व में रामगढ़ लगभग पचास मील की दूरी पर है। खरमेर नदी के किनारे रामगढ़ तीन ओर सीधा-सा खड़ा है, वहाँ के पहाड़ की बनावट ही ऐसी है। ईस्ट इंडिया कम्पनी के समय में रामगढ़ की बस्ती के चारों ओर किले का परकोटा था और भीतर राजमहल। राज्य समाप्त हो चुका था, फिर भी राजा बहुत बड़ी मालगुजारी

देता था। किसी युग में राज्य का क्षेत्रफल चार हजार वर्गमील था, जिसमें चौदह परगने थे। यहाँ का अन्तिम राजा विक्रमादित्यसिंह था, जो पागल कहा जाता था। रानी अवन्तीबाई इन्हीं की पत्नी थी। इनके बड़े पुत्र अमानसिंह और छोटे शेरसिंह थे। राजा के पागलपन का लाभ उठाकर ईस्ट इंडिया कम्पनी के उच्च पदाधिकारी ने रामगढ़ क्षेत्र को कोर्ट कर लिया और अब उसके पदाधिकारी रामगढ़ में बैठकर हुकुमत कर रहे थे।

खड़देवरा के लोधी ठाकुर उमरावसिंह रामगढ़ की रानी के विश्वासपात्र प्रतिनिधि हैं। उमरावसिंह जबलपुर के डिप्टी कमिश्नर की कचहरी में कोर्टऑव वार्ड को रामगढ़ से हटा लेने और रानी साहब के हाथ में राज्य-प्रबंध देने की फरियाद करते हैं तथा अन्यायपूर्ण बकाया मालगुजारी के माफ करने की बात कहते हैं। डिप्टी कमिश्नर अपने बड़े साहब से छूट की सिफारिश करने को कहते हैं, पर वहाँ से छूट की मनाही हो जाती है। उमरावसिंह सारा विवरण रानी को सुनाते हैं तब रानी इन सभी को अन्यायी मानकर जबलपुर के मुखिया-सरदारों की सोच के बारे में उमरावसिंह से पूछती हैं। उमरावसिंह बताते हैं कि वे एक बैठक करेंगे जिसमें क्रान्ति के इच्छुक सभी अगुआ इकट्ठे होंगे और हमारे लिए भी निमंत्रण भेजा गया है। रानी ने अपनी ओर से उमरावसिंह को ही भेजा।

निर्धारित तिथि पर पुरवा में शंकरशाह राजगोंड की हवेली में बैठक के लिए उनका पुत्र रघुनाथशाह, कर्णदेव ब्राह्मण, जगतसिंह राजपूत, उमरावसिंह आदि एकत्रित हुए। बैठक का उद्देश्य यह तय करना था कि अंग्रेजों के बड़े साहब से क्या फरियाद करनी है और इसके लिए किस-किस को जाना है। सब कुछ निर्धारित होने के बाद दूसरे दिन बातचीत की तारीख निश्चित हो गई और निश्चित तारीख और समय पर सभी लोग डिप्टी कमिश्नर के बंगले पर पहुँच गए। बातचीत हुई, तर्क-वितर्क हुए पर कोई नतीजा न निकला।

कम्पनी की ओर से कोई रियायत न मिलने पर रानी अवन्तीबाई ने फिरंगियों से दो-दो हाथ कर उन्हें देश से खदेड़ देने की ठान ली। इसके लिए संगठित होना और बंदूकों का प्रबंध आवश्यक था। संगठित होने के लिए उन्होंने कागज पर संदेश लिखवाया कि "देश की रक्षा के लिए या तो कमर कसो या चूड़ी पहनकर घर में बंद हो जाओ। तुम्हें धर्म-इंसान की सौगंध है, जो इस कागज का सही पता वैरी को दो।" इस संदेश के साथ उन्होंने एक चूड़ी रखकर पुड़िया बना दी। इस प्रकार उन्होंने अपना संदेश अलग-अलग जिम्मेदार व्यक्तियों के पास भिजवा दिया, जहाँ से उसे उन लोगों ने आगे बढ़ा दिया।

शंकरशाह और उनके पुत्र रघुनाथशाह के पास जाकर उमरावसिंह ने रानी का संदेश दिया। ये दोनों कविता और संगीत से प्रेम रखते थे अत: तय हुआ कि जगह-जगह कवि सम्मेलन के द्वारा यह संदेश गुप्त रूप से सभी तक पहुँचा दिया जाए। शंकरशाह और रघुनाथशाह जहाँ भी जाते गिरधारीदास भी वहाँ जाता, क्योंकि वह स्वयं को पूरा कवि मानता था। सरकारी कर्मचारियों को राजा शंकरशाह और राजकुमार रघुनाथशाह के षड्यंत्र की भनक मिली तो उन्होंने अपने अधिकारियों को इसकी सूचना दी। ईस्ट इंडिया कम्पनी के एजेंसी हाऊस में मीटिंग हुई, जिसमें मेजर अर्सकिन कमिश्नर, लेफ्टिनेन्ट क्लार्क डिप्टी कमिश्नर, जबलपुर और कई जिलों के डिप्टी कमिश्नर इकट्ठे हुए। वार्तालाप के बाद तय हुआ कि अपने-अपने जिले में किसे क्या करना है। शंकरशाह पर निगाह रखनी होगी और गिरधारीदास को लालच देकर अपने लाभ की सूचना प्राप्त करनी होगी।

क्लार्क ने दूसरे ही दिन शायरी सुनने के बहाने गिरधारीदास को बुला लिया और उनका काफी सम्मान किया। यह सिलसिला धीरे-धीरे ईनाम के कारण बढ़ता गया और

हो गया और वाडिंगटन रानी के निकट आया तो उमरावसिंह ने रूँधे गले से उसे सावधान किया कि आप लोग उनका शरीर न छुएँ। वाडिंगटन की कुछ ब्राह्मण सिपाहियों ने रानी को उठाकर फौजी अस्पताल में भेज दिया, जहाँ उनका निधन हो गया। उमरावसिंह को गिरफ्तार कर लिया गया और फाँसी की सजा दी गई। वह जानता था कि अदालत में यही होगा फिर भी अन्त समय तक उमरावसिंह ने रानी का साथ न छोड़ा।

इस प्रकार उमरावसिंह रानी अवन्तीबाई का हर प्रकार से सहायक, हितचिंतक, विश्वासपात्र सैन्य संचालक और वीर अंगरक्षक था। फाँसी पर चढ़कर भी उसने अपने प्रण की रक्षा की। ❑

प्रश्न 10. अंग्रेज अफसर डिप्टी कमिश्नर वाडिंगटन का चरित्र चित्रण कीजिए।

उत्तर- **डिप्टी कमिश्नर वाडिंगटन का चरित्र-चित्रण**

कप्तान वाडिंगटन सात साल से मंडला का डिप्टी कमिश्नर है। वह बहुत तेज और चतुर अंग्रेज अफसर है। उसके चरित्र की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

1. अंग्रेज साथियों की राय से असहमत—ईस्ट इंडिया कम्पनी का विशाल भवन 'एजेंसी हाऊस' में मेजर अर्सकिन कमिश्नर, लै. क्लार्क डिप्टी कमिश्नर, जबलपुर और कई जिलों के डिप्टी कमिश्नर एकत्रित थे। उनकी चर्चा का विषय तत्कालीन राजनीतिक वातावरण था। सिवनी के डिप्टी कमिश्नर को चूड़यों की पुंड़ियों के विषय में शक था कि दाल में काला है। अर्सकिन इसे हिन्दू अन्धविश्वास से जोड़ते हैं, पर मंडला के डिप्टी कमिश्नर वाडिंगटन की आँखें चारों ओर चौकन्नी रहती थीं। इसलिए उसका मानना था कि इन दिनों शंकरशाह और उसके लड़के रघुनाथशाह का जगह-जगह कवि सम्मेलन करना किसी-न-किसी खतरे का संकेत हैं और बाद में गिरधारीदास ने गद्दारी करके इस खबर को पक्का भी कर दिया। इस प्रकार वाडिंगटन बहुत चौकन्ना और चतुर अफसर है। वह प्राय: अपने साथियों की राय से असहमत रहता था।

2. नजरों को पढ़ने में निपुण—जब मेजर अर्सकिन ने गोष्ठी के बाद पूछा कि गिरधारीदास कैसा आदमी है तब लै. क्लार्क ने बताया कि अच्छे चलन का और तहजीब वाला है। बावन नम्बर की पल्टन के कमांडर ने कहा कि अपना कुछ काम करे तो उसे इनाम दिया जा सकता है। जब अर्सकिन ने समर्थन किया तो क्लार्क ने गिरधारीदास को शायरी सुनने के बहाने बुलाने का प्रस्ताव रखा। जब वाडिंगटन ने गिरधारीदास को पहली बार देखा तो देखते ही जान लिया कि यह एक दिन अपने काम आएगा। वाडिंगटन के इशारे पर क्लार्क ने उसे एक छोटी-सी थैली दी, जिसे गिरधारी ने छिपाकर रख लिया। इस प्रकार वह लालच में आकर दूसरे-तीसरे दिन वहाँ आने लगा। गिरधारी राजा शंकरशाह का कारिंदा था। जब शंकरशाह को गिरधारी का राज पता चला तो उन्होंने उसे नौकरी से निकाल दिया। गिरधारी ने आकर वाडिंगटन को सारा राज बता दिया जिससे शंकरशाह और उनके पुत्र को गिरफ्तार कर तोप से उड़ा दिया गया। वाडिंगटन की चाल सफल रही।

3. रणनीति बनाने में कुशल—मंडल से खैरी की पहाड़ी साफ दिखती थी। रात में वाडिंगटन ने मंडला के किले में खैरी की पहाड़ी से बंदूकों के चलने की आवाजें सुनीं जो कि रानी की योजना का एक हिस्सा था। सुबह होते ही उसने कारतूसी बंदूकों और कड़ावीन वालों का एक प्रबल दस्ता रानी से युद्ध करने भेजा जो उसकी सेना का अग्रिम भाग था। वाडिंगटन ने अपनी सेना को दो टुकड़ियों में बाँटकर रानी की सेना पर दोनों ओर से प्रहार

करने हेतु तैयार रखा। इस प्रकार वह कुशल सैन्य-संचालक था। लेकिन रानी भी कम नहीं थीं। उन्होंने स्थिति को भाँप लिया और वह खैरी से अपनी सेना को दूर ले गयीं, परन्तु मंडला का घेरा डालने का निश्चय अडिग था। वाडिंगटन मंडला लौट आया। वहाँ से तीन कोस दूर उत्तर में 'निवास' नामक ग्राम की ओर चल पड़ा। जबलपुर पहुँचकर उसे उम्मीद थी कि नागपुर से बड़ी सेना आ जाएगी और उसका एक बड़ा भाग लेकर मंडला लौट जाएगा। इस प्रकार वाडिंगटन ने यद्यपि कुशल रणनीतिज्ञ के समान रणनीति बनाई तथापि युद्ध न हो सका।

4. **पुत्र-प्रेमी**—'निवास' गाँव आकर वाडिंगटन को पता चला कि रानी अवन्तीबाई ने उस पर पहले ही अधिकार कर लिया था। उसने लड़ने का निश्चय किया, लेकिन उसने अपने दस्ते को विश्राम करने दिया, क्योंकि उसका एक आठ-दस वर्ष का बालक अस्वस्थ था। इससे पता चलता है कि वह अपने पुत्र से अत्यधिक प्रेम करता है।

इसी प्रकार की एक घटना और होती है जिससे वाडिंगटन के पुत्र-प्रेम का ज्ञान होता है। 'निवास' गाँव में जब रानी की सेना ने पीछे से आकर वाडिंगटन की सेना पर आक्रमण कर दिया तो ऊँटों का तोपखाना तितर-बितर हो गया और तोपों के गोले भी निशाने पर न लग सके। बंदूक की लड़ाई भी थोड़ी देर चली। इसके बाद तलवारों की लड़ाई होने लगी। रानी ने वार पर वार किए जिससे वाडिंगटन तो बच गया पर उसका घोड़ा घायल होकर गिर पड़ा। रानी ने वाडिंगटन पर फिर आक्रमण किया तो बीच में एक सिपाही तलवार लिए उसे बचाने आ कूदा। उसने रानी के वार को अपनी तलवार से रोक लिया, अन्यथा वाडिंगटन का काम तमाम हो जाता। उसका तमंचा पहले ही खाली हो चुका था। अत: इस समय वह शस्त्रविहीन था। वह सिपाही वाडिंगटन को बचाकर पीछे ले गया। लड़ते-लड़ते अंग्रेजी सेना पीछे हटने लगी। इसी समय वाडिंगटन का बालक पीछा करने वाली रानी के सैनिकों को मिल गया। रानी को जब पता लगा कि वह वाडिंगटन का बालक है तो उन्होंने उसे पिता के पास भिजवा दिया। वाडिंगटन ने अपने बच्चे को छाती से लगा लिया और बच्चों को लेकर आए सैनिकों से कहा कि तुम लोग डरो नहीं। अपने बच्चे से यह जानकर कि रानी ने उसे दूध पिलाया और प्यार किया, वह गद्‌गद् हो उठा और उसने रानी साहिबा को अपना सलाम भेजा।

5. **इंसानियत का कायल**—वाडिंगटन जानता है कि अंग्रेजी सरकार के प्रति गद्‌दारी करने से उसे फाँसी की सजा हो सकती है फिर भी वह 'रानी द्वारा उसका बच्चा सकुशल भेजने' वाली घटना से रानी की इंसानियत का इतना कायल हो जाता है कि वह रानी को अपनी गुप्त सूचना भी भिजवा देता है। वह सूचना है- नागपुर कामठी से कम्पनी सरकार बहादुर की बहुत बड़ी फौज जबलपुर आ गई है। उस फौज का और उसके हथियारों का कोई भी मुकाबला नहीं कर सकता। रानी साहिबा हथियार रख दें, यही मेरी सलाह है, आगे उनकी मर्जी।

इसी प्रकार एक अन्य घटना से वाडिंगटन की इंसानियत का पता चलता है। शाहपुरा के युद्ध में जब रानी अपने पेट में तलवार भोंककर आत्मघात कर लेती हैं, तब वाडिंगटन तुरन्त बिगुल बजाकर आक्रमण रोक देता है और रानी की इच्छा के अनुसार रानी को हाथ न लगाकर ब्राह्मण सैनिकों से उठवाकर फौजी अस्पताल में भिजवा देता है ताकि शीघ्र इलाज करके उनको बचाया जा सके। यद्यपि रानी बचती नहीं, वह वीरगति को प्राप्त होती हैं। इतना ही नहीं वाडिंगटन रानी की ओर से लड़ने वाले गिरफ्तार किसानों को छोड़ देता है और बगावत में शामिल होने का शक होने वालों को गिरफ्तार न करने का हुक्म भी देता है। वह केवल उमरावसिंह को ही कैद रखता है।

हिन्दी कहानी

1 हिन्दी कहानी : स्वरूप और विकास

प्रश्न 1. हिन्दी कहानी के उद्भव और विकास पर एक सारगर्भित निबन्ध लिखिए।

अथवा

आधुनिक हिन्दी कहानी का क्रमिक इतिहास प्रस्तुत कीजिए।

अथवा

हिन्दी कहानी के उद्भव और विकास पर एक विवेचनात्मक टिप्पणी लिखिए।

उत्तर—

हिन्दी कहानी का उद्भव एवं विकास

आधुनिक हिन्दी-कहानी का आरम्भ बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से होता है। सन् 1903 ई. में 'सरस्वती' मासिक पत्रिका के प्रकाशन से आधुनिक कहानी का प्रारम्भ हुआ। कहानी बहुत कुछ जीवन के समीप आ गई। उसमें से अलौकिकता, दैवी-संयोग अथवा आश्चर्यजनक घटनाओं की कमी होने लगी। कहानियों में सांकेतिकता और संक्षिप्तता आने लगी। अब कहानी का उद्देश्य उपदेश, मनोरंजन, कौतूहल अथवा घटना-वैचित्रय का चित्रण मात्र न रहकर मानव जीवन की स्वाभाविक अभिव्यक्ति रह गया। कहानी में विषय और शिल्प-विधान दोनों ही दृष्टियों में नवीनता आ गई।

हिन्दी-कहानी का विकास—हिन्दी-कहानी का विकास निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है—

(i) पृष्ठभूमि काल (सन् 1900 से पहले);
(ii) प्रथम उत्थान-काल (सन् 1900 से 1910 तक);
(iii) द्वितीय उत्थान-काल (सन् 1911 से 1929 तक);
(iv) तृतीय उत्थान-काल (सन् 1930 से अब तक)।

1. पृष्ठभूमि काल (सन् 1900 से पहले)—इस काल की कहानियों का महत्व इसलिए है कि इन्होंने पाठकों में कहानी पढ़ने की रुचि जागृत की। देवकीनन्दन खत्री की जासूसी कथाओं के पढ़ने के लिए बहुत से लोगों ने हिन्दी सीखी। उनकी 'चन्द्रकान्ता सन्तति' अपनी अपनी अद्भुत कल्पना-शक्ति और कला-विन्यास के कारण आज भी पाठकों को आकर्षित करती है। इसी समय किशोरीलाल गोस्वामी ने कई कहानियाँ लिखीं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल इन्हीं को हिन्दी का प्रथम कहानीकार मानते हैं। तीसरे प्रमुख कथाकार श्री गोपालराम गहमरी ने भी अपनी जासूसी कथाओं से हिन्दी पाठकों की रुचि को आकर्षित किया। आपके द्वारा प्रकाशित 'जासूस' पत्र में मौलिक आख्यायिकाएँ भी प्रकाशित होती थीं।

इस प्रकार छोटी कहानियाँ, गल्प आख्यायिकाएँ पहले-पहल हिन्दी में बंगला से आई। इससे कुछ पहले श्री राधाचरण गोस्वामी 'सौदामिनी' नामक छोटी सी कहानी बंगला से अनुदित कर प्रस्तुत कर चुके थे।

इस युग की कहानियों का हिन्दी कहानी का न तो कोई विकास हुआ और न कोई उसका भाग ही बना, किन्तु इतना अवश्य है कि इन कहानियों ने हिन्दी-कहानी की पृष्ठभूमि तैयार की।

2. प्रथम उत्थान काल (सन् 1900 से 1910 तक)—सन् 1902 में 'सरस्वती' के प्रकाशन से ही हिन्दी-कहानी का श्रीगणेश होता है। 'सरस्वती' के प्रथम वर्ष से ही छोटी-छोटी कहानियाँ प्रकाशित होने लगीं। इनमें से अधिकांश बंगला कहानियों की अनुवाद थीं। अनुवादकों के पार्वतीनन्दन भट्टाचार्य, गिरिजा कुमार घोष, श्रीमती बंग महिला नाम के नाम से उल्लेखनीय हैं।

इन अनुवादों के साथ में मौलिक कहानियाँ भी प्रकाशित होने लगीं। सन् 1900 में किशोरीलाल गोस्वामी को मौलिक कहानी 'इन्दुमति' प्रकाशित हुई। इसको हिन्दी का सर्वप्रथम कहानी होने का श्रेय प्राप्त है। इस कहानी पर 'टेमपेस्ट' की छाप है सन् 1903 में श्री रामचन्द्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का समय' कहानी प्रकाशित हुई। यह कहानी के ढर्रे पर ही कही गई है। इसके पश्चात् गिरिजादत्त वाजपेयी की 'पण्डित और पण्डितानी' कहानी सामने आई, इस पर अंग्रेजी का प्रभाव है। इस काल में सर्वश्रेष्ठ समझी जाने वाली कहानी 'दुलाई वाली' सामने आई। इसकी लेखिका श्रीमती बंग महिला थीं। प्रसंगानुकूलता, कथोपकथन, स्वाभाविकता और मार्मिकता की दृष्टि से इसे सफल कहानी कहा जा सकता है।

यह कहानी-काल हिन्दी-कहानी का प्रयोग काल था। इसी समय श्री वृन्दावनलाल वर्मा ने ऐतिहासिक कहानी की परम्परा चलाई। उनकी 'राखीबन्द भाई' कहानी प्रकाशित हुई। मैथिलीशरण गुप्त ने सन् 1910 में 'निन्यानवे का फेर' कहानी लिखी।

प्रथम उत्थान काल की कहानियों की विशेषताएँ—(1) इस काल की सभी कहानियाँ कथानक प्रधान हैं। (2) कथानक में इतिवृत्तात्मकता, दैवी संयोग, आकस्मिकता तथा आश्चर्यजनक तत्व अधिक मिलते हैं। (3) चरित्र-चित्रण और चरित्र-विकास गौण है। (4) अधिकांश कहानियाँ संस्कृत-नाटकों, शेक्सपियर के नाटकों और बंगला नाटकों से प्रभावित हैं।

3. द्वितीय उत्थान काल (सन् 1911 से 1929 तक)—कहानी के द्वितीय उत्थान का प्रारम्भ 'इन्दु' पत्रिका के प्रकाशन से होता है। इसमें प्रसाद जी की सबसे पहली कहानी 'ग्राम' सन् 1911 में प्रकाशित हुई। चार कहानियाँ और निकलीं, जिनका संग्रह 'छाया' नाम से सन् 1912 में प्रकाशित हुआ। प्रसाद जी की कहानियाँ सर्वथा मौलिक थीं। किन्तु उनकी भाषा के अलंकरण और वस्तु-विन्यास पर बंगला का प्रभाव स्पष्ट है। इस काल में हिन्दी के अनेक प्रमुख कहानीकार हुए। 1911 में जे.पी. श्रीवास्तव ने हास्य-रस की कहानियाँ लिखीं। सन् 1912 में श्री विश्वरम्भरनाथ जिज्जा की 'परदेशी' कहानी प्रकाशित हुई। सन् 1913 में राधिकारमण सिंह की 'कानों में कँगना' सामने आई। इसी वर्ष कौशिक जी की 'रक्षा-बन्धन' कहानी निकली। सन् 1914 में चतुरसेन शास्त्री की 'गृहलक्ष्मी', सन् 1915 में गुलेरी जी की प्रसिद्ध कहानी 'उसने कहा था' तथा सन् 1916 में प्रेमचन्द की 'पंच परमेश्वर' कहानी प्रकाशित हुई। इनमें गोविन्दवल्लभ पन्त (सन् 1919), सुदर्शन (1920), रायकृष्णदास (1917), पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी (1917), बालकृष्ण शर्मा नवीन (1918), चण्डी प्रसाद हृदयेश (1919), भगवतीचरण वर्मा (1921), निराला (1927), भगवतीप्रसाद वाजपेयी (1924), विनोदशंकर व्यास (1927), वाचस्पति पाठक (1927) आदि प्रमुख हैं।

हिन्दी-कहानी का यह द्वितीय उत्थान बहुत महत्वपूर्ण है। इस काल में बहुत सी मौलिक कहानियाँ सामने आई हैं जो हिन्दी साहित्य की स्थायी निधि बन गई। इस युग में भावमूलक और यथार्थवादी दो प्रकार की कहानियाँ लिखी गई। भाव-मूलक कहानियों में जनक प्रसाद जी उनके

कथोपकथन कवित्वमय और हृदय को चुभने वाले हैं। उनमें प्राचीन समय की संस्कृति और वातावरण का सफल चित्रण हुआ है। प्रसाद जी की कहानियों का शिल्प-विधान सर्वथा मौलिक है। उनका प्रारम्भ इतना मनोवैज्ञानिक तथा नाटकीय होता है कि पाठक को वे स्वत: ही आकर्षित कर लेती है। उनका अन्त भी इतना प्रभावशाली और अप्रत्याशित होता है कि पाठक का मन झकझोर उठता है और वह एक समस्या पुन: सुलझाने लगता है। प्रसाद जी की कहानियों ने हिन्दी को एक नई दिशा प्रदान की और इस प्रकार की कहानियों की एक नवीन धारा ही प्रवाहित हो चली, जिसके कहानीकारों में रायकृष्णदास, वाचस्पति पाठक आदि प्रमुख हैं।

हिन्दी-कहानी के द्वितीय उत्थान की विशेषताएँ—(1) प्रेमचन्द की कहानी कला का अनेक कहानीकारों ने अनुसरण किया। इनमें सुदर्शन, विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक', ज्वालादत्त शर्मा आदि प्रमुख हैं। (2) इस युग की सर्वश्रेष्ठ कहानी 'उसने कहा था' है जो सन् 1915 में प्रकाशित हुई। (3) प्रसाद जी की कहानियों ने कहानी को एक नई दिशा दी। उनकी कहानियों में वैयक्तिकता अधिक है। (4) प्रेमचन्द जी इस युग के सबसे अधिक लोकप्रिय कलाकार हैं। (5) इस युग में प्रसाद और प्रेमचन्द एक दूसरे के पूरक हैं। (6) इस युग में कुछ प्रकृतिवादी कहानियाँ भी लिखी गई। इनके लेखक 'उग्र' जी हैं। (7) इस युग की कहानियों में कथानक के साथ चरित्र के विकास का विशेष ध्यान दिया गया। कहानियों के कथानक में दैवी-संयोग, आकस्मिक घटना अथवा आश्चर्यजनक तत्वों का समावेश न करके जीवन की स्वाभाविकता को लाया गया है।

हिन्दी-कथा-साहित्य में प्रेमचन्द का आगमन महत्वपूर्ण घटना है। प्रेमचन्द जी ने विविध परिस्थितियों में पड़े हुए मनुष्य का चित्रण तथा समाज के प्रत्येक स्तर के विवेचन को कहानी में स्थान दिया। हिन्दी की प्रगतिशील कहानियाँ प्रेमचन्द जी की परम्परा का ही बहुत कुछ विकास कही जा सकती हैं। विश्वम्भरनाथ शर्मा लिज्जा, जे.पी. श्रीवास्तव, राजा राधिकारमण सिंह, विशम्भरनाथ शर्मा कौशिक, पंडित ज्वालादत्त शर्मा, गोविन्दवल्लभ पंत, सुदर्शन, वृन्दावनलाल वर्मा और भगवतीप्रसाद वाजपेयी को प्रेमचन्द जी की ही श्रेणी में रख सकते हैं। बीसवीं शताब्दी के द्वितीय और तृतीय दशकों में हिन्दी-कहानी की समस्त प्रवृत्तियाँ और शिल्प-विधियाँ प्रेमचन्द और प्रसाद जी से प्रभावित और अनुप्राणित रहीं।

4. तृतीय उत्थान-काल (सन् 1930 से अब तक)—सन् 1930 के पश्चात् कहानी कला में परिवर्तन हुआ। वह अपने चरम विकास पर पहुँच गई। विषय की विविधता, भाव की गहनता, जीवन की मार्मिकता तथा शिल्प की नवीनता की दृष्टि से कहानी-साहित्य उन्नत हुआ।

प्रगतिशील कहानियों में प्रेमचन्द जी की परम्परा का ही अनुसरण हुआ है, परन्तु प्रवृत्ति की दृष्टि से पर्याप्त अन्तर आ गया है।

प्रगतिवादी कहानियों में सामाजिक समस्याओं का एक विशेष भौतिकवादी दृष्टि से चित्रण किया गया है समाज की प्रगतिशील शक्तियों का स्पष्ट रूप से संकेत रहता है। बहुत-सी प्रगतिशील कहानियाँ अत्यन्त मार्मिक हैं।

इस युग की कहानी-साहित्य गाँधीवाद, साम्यवाद, फ्रायड के यौनवाद आदि से प्रभावित है। इन नई कहानियों में जहाँ बुद्धि का अतिरेक है, वहाँ व्यक्ति को लेकर विद्रोह, विस्फोट और चिन्तन की प्रवृत्ति भी मिलती है। आज का कहानीकार बाह्य जीवन से हटकर अन्तर्गत और अवचेतन की ओर मुड़ गया है।

आज की नई कहानियाँ बुद्धिधर्मी, सिद्धान्तग्रस्त और प्रयोगवादी हैं। उनमें जीवन की गहराई और व्यापकता की कुछ कमी है। इतने पर भी असंख्य नवीन सम्भावनाओं के जन्म

"कहानी कल्पित रचना होते हुए भी जीवन के तत्वों, असत्यों की अभिव्यंजना है। कथाशिल्प की सबसे बड़ी कसौटी यह है कि वह लघुतम आकार पर खड़ी होकर महानतम जीवन सत्य को उद्घोषित करे, तात्पर्य यह कि वह अल्पमत समय, स्थान और घटना के समन्वय से जीवन के किसी एक चिरन्तन सत्य को बिम्बित करे।"

कहानी की उपयोगिता—कहानी मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उपयोगिता रखती है। निम्न बिन्दुओं से कहानी की उपयोगिता स्पष्ट है—

1. कहानी में मानवीय मूल्यों के संरक्षण एवं नव-निर्माण के प्रति जागरूकता मिलती है। दुनिया को व्यवहारिक वास्तविक जीवन जीना सिखाती है।
2. जाति, धर्म, राष्ट्र आदि के संकुचित घेरों को तोड़कर मनुष्य को मनुष्य के रूप में रहना सिखाती है।
3. जो उपयोग चित्र में कला का है, रंगों का है, उनके तारतम्य, सजावट और प्रस्तुती करने की चतुराई का है, वही उपयोग मनुष्य जीवन में कहानी का है।
4. कहानी मानव हृदय के व्यावहारिक जीवन से जुड़ी हुई होने से अपना पूर्ण प्रभाव छोड़ती है और मानव सुधार का प्रयत्न करती है। ❑

प्रश्न 3. कहानी की परिभाषा दीजिए और उसके प्रमुख तत्वों की विवेचना कीजिए।

अथवा

कहानी के आवश्यक तत्व कौन-कौन से हैं? समझाइये।

उत्तर- आधुनिक युग में कहानी, साहित्य का मुख्य अंग है। आज कहानी उपन्यास का लघु संस्करण नहीं है। वह साहित्य के एक स्वतन्त्र अंग के रूप में विकसित हो चुकी है। सभी विद्वानों ने कहानी के तत्व एकमत होकर निम्न प्रकार से स्वीकार किये हैं—

(1) कथावस्तु, (2) पात्र तथा चरित्र-चित्रण, (3) कथोपकथन या संवाद, (4) देशकाल या वातावरण, (5) भाषा शैली, (6) उद्देश्य।

कथानक—कथानक कहानी का प्राण होता है। कहानी में कथानक किसी न किसी रूप में विद्यमान रहता है। इसलिए कथावस्तु की रचना अत्यन्त वैज्ञानिक तरीके से क्रमिक विकास के रूप में होनी चाहिये। प्रत्येक घटना के आने से पूर्व उसके कारणों का विवेचन रहता है। इसी प्रकार पात्रों के कार्यों का विवरण देने से पूर्व मंतव्य स्पष्ट कर दिया जाता है। इन्हीं आधारों पर कथानक कहानीकार के निश्चित दृष्टिकोण को अभिव्यक्त करता है।

कथानक में आरम्भ तथा अन्त दोनों ही प्रभावकारी होना चाहिये। अच्छे कथानक के लिए प्रमुख गुण अपेक्षित किये हैं—(1) मौलिकता, (2) सम्भाव्यता, (3) सुगठितता, (4) रोचकता।

मौलिकता का आशय नवीनता से है। सम्भाव्यता का अर्थ आने वाली घटनाओं की स्थिति से है। घटित प्रसंग काल्पनिक न होकर मानव जीवन में सम्भावित हो। कथानक की सुगठितता से आशय विभिन्न घटनाओं का कार्य कारण श्रृंखला में बँधकर क्रमशः बढ़ते जाना। रोचकता से कहानी अन्त तक आकर्षक बनी रहती है, इसके लिए जिज्ञासा व कौतूहल की सृष्टि की जाती है।

कथानक के विकास की पाँच अवस्थाएँ भी निश्चित की गयी हैं—

1. प्रारम्भ—कहानी का प्रारम्भ किसी पात्र के परिचय, वातावरण के वर्णन या दो पात्रों के कथोपकथन द्वारा होता है।

2. आरोह—इसमें पात्र की मानसिक स्थिति या भावना का विकास दिखाया जाता है।

"कहानी कल्पित रचना होते हुए भी जीवन के तत्वों, असत्यों की अभिव्यंजना है। कथाशिल्प की सबसे बड़ी कसौटी यह है कि वह लघुतम आकार पर खड़ी होकर महानतम जीवन सत्य को उद्घोषित करे, तात्पर्य यह कि वह अल्पमत समय, स्थान और घटना के समन्वय से जीवन के किसी एक चिरन्तन सत्य को बिम्बित करे।"

कहानी की उपयोगिता—कहानी मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उपयोगिता रखती है। निम्न बिन्दुओं से कहानी की उपयोगिता स्पष्ट है—

1. कहानी में मानवीय मूल्यों के संरक्षण एवं नव-निर्माण के प्रति जागरूकता मिलती है। दुनिया को व्यवहारिक वास्तविक जीवन जीना सिखाती है।
2. जाति, धर्म, राष्ट्र आदि के संकुचित घेरों को तोड़कर मनुष्य को मनुष्य के रूप में रहना सिखाती है।
3. जो उपयोग चित्र में कला का है, रंगों का है, उनके तारतम्य, सजावट और प्रस्तुती करने की चतुराई का है, वही उपयोग मनुष्य जीवन में कहानी का है।
4. कहानी मानव हृदय के व्यावहारिक जीवन से जुड़ी हुई होने से अपना पूर्ण प्रभाव छोड़ती है और मानव सुधार का प्रयत्न करती है। ❑

प्रश्न 3. कहानी की परिभाषा दीजिए और उसके प्रमुख तत्वों की विवेचना कीजिए।

अथवा

कहानी के आवश्यक तत्व कौन-कौन से हैं? समझाइये।

उत्तर- आधुनिक युग में कहानी, साहित्य का मुख्य अंग है। आज कहानी उपन्यास का लघु संस्करण नहीं है। वह साहित्य के एक स्वतन्त्र अंग के रूप में विकसित हो चुकी है। सभी विद्वानों ने कहानी के तत्व एकमत होकर निम्न प्रकार से स्वीकार किये हैं—

(1) कथावस्तु, (2) पात्र तथा चरित्र-चित्रण, (3) कथोपकथन या संवाद, (4) देशकाल या वातावरण, (5) भाषा शैली, (6) उद्देश्य।

कथानक—कथानक कहानी का प्राण होता है। कहानी में कथानक किसी न किसी रूप में विद्यमान रहता है। इसलिए कथावस्तु की रचना अत्यन्त वैज्ञानिक तरीके से क्रमिक विकास के रूप में होनी चाहिये। प्रत्येक घटना के आने से पूर्व उसके कारणों का विवेचन रहता है। इसी प्रकार पात्रों के कार्यों का विवरण देने से पूर्व मंतव्य स्पष्ट कर दिया जाता है। इन्हीं आधारों पर कथानक कहानीकार के निश्चित दृष्टिकोण को अभिव्यक्त करता है।

कथानक में आरम्भ तथा अन्त दोनों ही प्रभावकारी होना चाहिये। अच्छे कथानक के लिए प्रमुख गुण अपेक्षित किये हैं—(1) मौलिकता, (2) सम्भाव्यता, (3) सुगठितता, (4) रोचकता।

मौलिकता का आशय नवीनता से है। सम्भाव्यता का अर्थ आने वाली घटनाओं की स्थिति से है। घटित प्रसंग काल्पनिक न होकर मानव जीवन में सम्भावित हो। कथानक की सुगठितता से आशय विभिन्न घटनाओं का कार्य कारण श्रृंखला में बँधकर क्रमशः बढ़ते जाना। रोचकता से कहानी अन्त तक आकर्षक बनी रहती है, इसके लिए जिज्ञासा व कौतूहल की सृष्टि की जाती है।

कथानक के विकास की पाँच अवस्थाएँ भी निश्चित की गयी हैं—

1. प्रारम्भ—कहानी का प्रारम्भ किसी पात्र के परिचय, वातावरण के वर्णन या दो पात्रों के कथोपकथन द्वारा होता है।

2. आरोह—इसमें पात्र की मानसिक स्थिति या भावना का विकास दिखाया जाता है।

3. चरम सीमा—यहाँ पर कहानी की रोचकता अथवा सुन्दरता से क्षण भर के लिए स्तब्धता आ जाती है और पाठक के हृदय में कम्पन्न होने लगता है। दुखान्त कहानियों में यह स्थिति अन्त में आती है।

4. अवरोह (पतन)—आगे क्या हुआ कि जिज्ञासा या उत्सुकता का समाधान ही अवरोह है।

5. उपसंहार—इसमें कहानी का परिणाम निहित रहता है। वातावरण घटना, चरित्रों के पूर्ण विकास के अनन्त कर कथानक का अन्त होता है। कुछ में यह परिणाम अस्पष्ट रहकर पाठकों के मनन के लिए सामग्री छोड़ देता है।

आजकल के इन पाँचों भागों को तीन भागों में समा लिया गया है—

(1) प्रारम्भ, (2) चरमोत्कर्ष, (3) अन्त।

पात्र या चरित्र-चित्रण—पात्र कथा वस्तु के सजीव संचालक होते हैं। कथा वस्तु का पात्रों से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। पात्र के बिना कोई घटना का कथानक ही नहीं हो सकता है। पात्रों से एक और कथावस्तु का आरम्भ, विकास व अन्त होता है, तो दूसरी तरफ हम कहानी से आत्मीयता प्राप्त करते हैं। पात्र हमेशा सजीव व स्वाभाविक होना चाहिये। इनकी अवधारणा काल्पनिक न होकर आत्मानुभूति के धरातल पर हो, ताकि पात्र और पाठक में साधारणीकरण हो सके। आजकल कथानक के बजाय चरित्र पर कहानीकार विशेष ध्यान केन्द्रित करते हैं। पात्रों की संख्या अधिक न हो। प्रमुख पात्र का चरित्र क्षण भर में भी अमिट प्रभाव छोड़कर चला जाये।

चरित्र-चित्रण चार प्रकार से किया जाता है—(1) वर्णन द्वारा, (2) संकेत द्वारा, (3) कथोपकथन द्वारा, (4) घटनाओं द्वारा। रोचक चरित्रों से कहानी का आकर्षण बढ़ जाता है। श्रेष्ठ कहानी वही होती है, जिसके रोचक चरित्र-चित्रण मनोवैज्ञानिकता लिए हुए हो।

कथोपकथन—पाठक के हृदय में उत्सुकता बनाये रखने के लिए कहानीकार को एक सबल और आकर्षक कथोपकथन का निर्माण करना पड़ता है। यदि कहानी में कथोपकथन न होकर केवल वर्णन हो तो पात्र अव्यक्त रह जाते हैं। रोचकता व सजीवता लाने के लिए कथोपकथन अति आवश्यक है। कथोपकथन कथा की गति को आगे बढ़ाता है, पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं को स्पष्ट करता है। कथोपकथन का आरम्भ ऐसा हो, जैसे नदी में लहरों की गति और उन पर वायु सहज संगीत, जिसके सहारे पाठक के हृदय में उत्तरोत्तर कहानी पढ़ने की आकांक्षा और जिज्ञासा दोनों बनी रहे।

देशकाल या वातावरण—यह कहानी का मेरूदण्ड है। इसलिए कहानीकार को कहानी में देशकाल का पूर्ण ध्यान रखना चाहिये। चलते हुए समय के अनुसार भी वातावरण का ध्यान रखना चाहिये। आज का कहानीकार सामान्यतः परिस्थिति चित्रण नहीं करता है। पूर्ण सामाजिक परिवेश को देखता है, उनका यथार्थ वर्णन करता है। वातावरण ही कहानी की काल्पनिक कथा को यथार्थता प्रदान करता है। यह पाठक के लिए जादूगर के समान है, काल्पनिक दुनिया में रुलाता है, हँसता है।

भाषा शैली—कहानी की सफलता व असफलता बहुत कुछ भाषा पर निर्भर है। इसलिए कहानी की वर्णन शैली सरल, सुबोध, प्रवाहपूर्ण और धारावाहिक होनी चाहिये। कहानी की भाषा अत्यधिक जटिल होगी, तो औसत बुद्धि वाले व्यक्ति उसे समझ नहीं पायेंगे। सामान्य पाठक की रोचकता को भी ध्यान में रखते हुए भाषा सरल व सुबोध होनी चाहिये। कभी-कभी संक्षिप्तता के कारण शैली व्यंजना प्रधान हो जाती है। इस प्रकार की शैली में लिखने का मतलब है—"गागर में सागर भरना"। उस शैली में कहानीकार प्रत्येक घटना का

विस्तृत वर्णन नहीं दे सकता है। व्यंग्य प्रधान कहानियों में व्यंग्यात्मक शैली तथा भावात्मक तथा वर्णनात्मक कहानियों में भावुकता व विवरण की प्रधानता रहती है। कहानी की शैली को अनेक प्रकारों में विभक्त किया है—(1) ऐतिहासिक शैली (2) आत्म चरित्र शैली, (3) पत्रात्मक शैली, (4) डायरी शैली, (5) नाटकीय शैली, (6) आत्म कथात्मक शैली, (7) वर्णनात्मक शैली, (8) मनोवैज्ञानिक शैली।

उद्देश्य—कहानी का उद्देश्य है किसी विशिष्ट प्रकृति, विचार या सिद्धान्त विशेष का प्रतिपादन और प्रचार करना, सुन्दर भाव चित्रों से मन का परिष्कार व मनोरंजन करना, जटिलता, जीवन के संघर्ष की अभिव्यक्ति करना।

कहानी की सोद्देश्यता उसके शिल्प विधान की सहायता करती है और कहानी प्रभाव की दृष्टि से सफल होता है। पाठक ऐसी कहानियाँ पढ़ते हुए स्वत्व को खोककर कहानी की संवेदना में ही डूब जाता है। आज का युग भी यही चाहता है कि कहानीकार यथार्थ, सुरुचिपूर्ण सन्देश द्वारा उच्च आदर्श का स्पष्ट उपदेश दे। ❑

प्रश्न 4. हिन्दी कहानियों की मुख्य प्रचलित शैलियों का सोदाहरण परिचय दीजिये।

उत्तर—

हिन्दी कहानी की विविध शैलियाँ

कहानी-कला में अनेक शैलियाँ काम में ली जाती हैं, उनमें से प्रमुख शैलियों का संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार हैं—

1. मनोविश्लेषणात्मक शैली—इस शैली का आविर्भाव हिन्दी का साहित्य में पाश्चात्य मनोविश्लेषण शास्त्र सिगमंड फ्रायड के सिद्धान्तों का प्रतिफलन है। इस शैली में कथानक का सूत्र मूलत: पात्रों की विविध मन:स्थितियों द्वारा निर्देशित होता है। चरित्र-चित्रण की दृष्टि से मनोविश्लेषण-शैली हिन्दी की सर्वप्रथम शैली कही जा सकती है। इसमें पात्रों की मनोविश्लषण-शैली हिन्दी की सर्वप्रथम शैली कही जा सकती है। इसमें पात्रों की मनोभावनाओं का विश्लेषण फ्रायडीय पद्धति पर किया जाता है। प्रेमचन्दोत्तर कहानी साहित्य में इस शैली को प्रमुखता प्राप्त है। इस शैली के सफल प्रयोक्ताओं में इलाचन्द्र जोशी, जैनेन्द्र और अज्ञेय के नाम उल्लेखनीय हैं। कतिपय साठोत्तर कहानीकारों में भी इस शैली का प्रयोग हुआ है। मनोविज्ञान के सहारे पात्रों की मन:स्थिति और व्यक्तित्व का विश्लेषण व प्रस्तुतीकरण इस शैली की प्रमुख विशेषता है। जैनेन्द्र, जोशी और अज्ञेय के अलावा किसी अन्य की शुद्ध एवं प्रामाणिक कहानी कोई नहीं है। हाँ, खोयी हुई दिशाएँ और परिन्दे कहानियों में कहीं-कहीं इसी मनोविश्लेषणात्मक शैली का प्रभाव देखा जा सकता है।

2. पत्र-शैली—पत्र शैली से तात्पर्य उस शैली से है, जिसके द्वारा नायक-प्रति-नायक या नायिका परस्पर पत्र लिखते हैं और उनके पत्र-व्यवहार से ही कथा गति प्राप्त करती है। वस्तुत: इस शैली का प्रयोग कहानियों व उपन्यास में आजकल पर्याप्त मात्रा में होने लगा है। पत्रात्मक शैली में लिखित कहानियों और उपन्यासों में कथा की योजना का अधिकार विविध पात्र-पात्रियों के द्वारा लिखे गये पत्र होते हैं। इस शैली के प्रयोग से कहानी में सम्पूर्ण कथा को रोचक पत्रों के सहारे प्रस्तुत किया जाता है। इस शैली के प्रयोग से कहानी में पर्याप्त सरसता व रोचकता का समावेश हो जाता है। "यही सच है" कहानी में इसका आंशिक प्रभाव देखा जा सकता है। यों इस शैली का प्रयोग नयी-पुरानी सभी कहानियों में मिल जाता है।

3. आत्म-कथानक शैली—"उत्तम पुरुष अथवा पुरुष की ओर से जो कथा प्रस्तुत की जाती है, उसे हम आत्म-कथानत्मक शैली कहते हैं। स्थूल रूप से इस शैली के अन्तर्गत प्राय: वे सब कथाएँ आती हैं, जिसमें प्रथम पुरुष की ओर से किसी कथा का वर्णन हो।"

आत्मकथात्मक शैली और संश्रमणात्मक शैली में मुख्य अन्तर यह होता है कि संस्मरण व्यक्ति के बाह्य अनुभवों पर अधिक जोर देते हैं; किन्तु आत्मकथात्मक शैली मुख्यत: चारित्रिक होती है। आत्मकथा शैली प्रमुखत: आत्मविश्लेषण के आधार पर विकसित हुआ करती है। डॉ. **प्रतापनारायण टण्डन** ने लिखा है कि "आत्मकथा शैली का एक रूप वह भी है जिसमें केवल प्रथम पुरुष या उत्तम पुरुष के रूप में कथा का वर्णन किया जाता है, परन्तु फिर भी जिनमें एक विशेष अन्तर यह मिलता है कि उनमें किसी एक विशिष्ट अथवा प्रमुख पात्र की ओर से कथा न कहीं जाकर भिन्न पात्रों की ओर से कथा का वर्णन व्यक्ति की ओर से दिये गये वक्तव्यों को संगठित करके किया जाता है। इस शैली के अन्तर्गत भिन्न-भिन्न पात्र अपनी-अपनी कथा को आत्मकथात्मक शैली में प्रस्तुत करते हैं।" इस शैली की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें लेखक और पाठक में पर्याप्त निकटता रहती है। इस शैली में अनेक कहानीकार आजकल कहानियाँ लिख रहे हैं। नयी कहानी का लेखक इस दिशा में बड़ा सशक्त बन पड़ा है।

4. सांकेतिक शैली—इसमें दृष्टान्त वर्मा और कथा-शैली के द्वारा किसी नैतिक या दार्शनिक रहस्य का उद्‌घाटन या उपदेश रहता है। जैनेन्द्र की 'देवी-देवता', 'भद्रबाहु' आदि इसी वर्ग की श्रेष्ठ कहानियाँ हैं।

5. नाटकीय शैली—यह कहानी की सर्वोत्तम शैली है। इसमें बड़ी सजीवता रहती है। कहानी का प्रारम्भ प्राय: कथोपकथन से होता है। विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक जी की 'रक्षाबन्धन' शीर्षक कहानी कथोपकथन से ही शुरु होती है। प्रसादजी की कहानियाँ भी इसी शैली में लिखी गई हैं। इस शैली में कथानक का विकास कथोपकथन के द्वारा होता है। कला की दृष्टि से यह सर्वोत्तम शैली है।

निष्कर्ष—कहानी की विविध शैलियाँ प्रचलित हैं। इन शैलियों के प्रयोग से कथावस्तु के प्रवाह और पात्रों की स्वाभाविकता में अन्तर पड़ता है। कहानी की भाषा पात्रों के अनुकूल होनी चाहिए, अन्यथा उसमें कृत्रिमता आ जायेगी। ❑

2 उसने कहा था

(चन्द्रधर शर्मा गुलेरी)

प्रश्न 5. हिन्दी कहानी साहित्य में गुलेरीजी का स्थान और महत्व बतलाते हुए उनकी कहानी-कला की विशेषताएँ समझाइए।

अथवा

गुलेरीजी की कहानी कला पर प्रकाश डालिए।

उत्तर-

हिन्दी-कहानी और गुलेरीजी

हिन्दी कहानी साहित्य में गुलेरीजी का स्थान अमर है। उन्होंने केवल तीन कहानियाँ ही लिखीं- 'सुखमय जीवन', 'बुद्धू का काँटा' और 'उसने कहा था'। उनकी प्रथम कहानी 'सुखमय जीवन' सन् 1911 में प्रकाशित हुई थी। 'उसने कहा था' कलात्मक दृष्टि से हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ कहानी मानी जाती है।

गुलेरीजी ने जिस समय कहानी लिखना आरम्भ किया था। वह हिन्दी कहानी का आविर्भाव युग था। गुलेरीजी से पहले सन् 1900 ई. में किशोरीलाल गोस्वामी की 'इन्दुमती',

सन् 1903 में रामचन्द्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का समय', गिरिजादत्त बाजपेयी की 'पण्डित-पण्डितानी', 1907 में बंग महिला की 'दुलाई वाली', सन् 1909 में वृन्दावनलाल वर्मा की 'राखीबन्ध भाई', सन् 1911 में प्रसादजी का 'ग्राम', सन् 1912 में विशम्भर नाथ जिज्जा की 'परदेशी', सन् 1913 में राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह की 'कानों का कंगना', विशम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' की 'रक्षाबन्धन' आदि कहानियाँ प्रकाशित हो चुकी थीं। इसी बीच में गुलेरीजी की 'उसने कहा था' कहानी प्रकाशित हुई, परन्तु यह कहानी इन कहानियों से कला-विधान में बहुत ही श्रेष्ठ थी। इसने गुलेरीजी को हिन्दी-कहानी जगत् में अमर स्थान प्रदान किया।

गुलेरीजी की कहानी कला—गुलेरीजी ने अपनी तीनों कहानियों की विषय-वस्तु सामाजिक अंचल से चयन की। तीनों कहानियाँ सामाजिक हैं। 'सुखमय-जीवन' की कथावस्तु एक व्यक्ति और एक परिवार की कथा है। कहानी का प्रमुख पात्र जयदेवशरण वर्मा बी.ए., एल-एल.बी. के परीक्षाफल की प्रतीक्षा में है। वह जानकारी के लिए अपने मित्र के पास जाता है। मार्ग में उसकी साइकिल पंचर हो जाती है और उसका साक्षात्कार कमला नाम की युवती से हो जाता है। यह युवती जगदेव द्वारा लिखित 'सुखमय जीवन' ग्रन्थ से बहुत प्रभावित थी। वह जयदेव को अपने घर ले जाती है और चाचा से परिचय कराती है। जयदेव और कमला का गुप्त प्रणय आरम्भ हो जाता है। एक दिन जयदेव कमला से विवाह का प्रस्ताव करता है। उसके इस व्यवहार से परिस्थिति उसके प्रतिकूल हो जाती है, उसका बड़ा अनादर होता है। जयदेव आक्रोश में कुँवारे रहने की प्रतिज्ञा कर डालता है, जिसके परिणामस्वरूप परिस्थितियाँ अनुकूल हो जाती हैं। अन्त में उसका विवाह कमला से हो जाता है। इस कहानी के कथानक का मूल स्वर प्रेम और कर्तव्य है। 'बुद्धू का काँटा' और 'उसने कहा था' कहानियाँ सामाजिक स्तर पर प्रेम और कर्तव्य से ओत प्रोत है। 'बुद्धू का काँटा' में रघुनाथ और भगवती का प्रणय वर्णित है। रघुनाथ के मन में स्त्री वर्ग की ओर से हीन-ग्रन्थि है। उसे मैदानों में खेलना भाता है, किन्तु स्त्री सम्पर्क से सदा बचता है। कहानी में नायिका भगवती की ओर से प्रयत्न होता है, परिणाम सुखद होता है। 'उसने कहा था' कहानी में लहनासिंह और सूबेदारिनी के आदर्श प्रेम, कर्तव्य और बलिदान की कहानी है। अमृतसर के बाजार में बालक और बालिका का जो प्रेम प्रारम्भ होता है, उसका अन्त लहनासिंह के बलिदान से होता है।

कथानक के विकास की दृष्टि से 'सुखमय जीवन' में कोई नवीनता नहीं है। इसकी तुलना में 'बुद्धू का काँटा' का कथानक अधिक प्रौढ़ है। 'उसने कहा था' कहानी का कथानक-योजना प्रौढ़ तथा चरम विकसित रूप में है। इन तीनों कहानियों में कहानी-कला का क्रमिक विकास मिलता है। कथानक के विकास में गुलेरीजी ने संयोगों और घटनाओं का सहारा लिया है। 'सुखमय जीवन' और 'उसने कहा था' के कथानक का विकास ही संयोगों द्वारा होता है। मार्ग में जयदेव वर्मा और कमला तथा अमृतसर के बाजार में लहना तथा बालिका का मिलना संयोगवश ही होता है। घटनाओं और संयोग के द्वारा कथानक में प्रारम्भ से लेकर अन्त तक जिज्ञासा और कुतुहल बना रहता है। घटनाओं और संयोगों की योजना जासूसी, तिलस्मी या अन्य घटना-प्रधान कहानियों के समान है, परन्तु गुलेरीजी की कहानियों की यह विशेषता है कि उनमें चरित्र की महत्ता का भी प्रतिपादन हुआ है।

चरित्र-चित्रण—चरित्र-चित्रण में गुलेरीजी को अद्भुत सफलता मिली है। उनके चरित्र यथार्थ जीवन से चुने गए हैं। उन्होंने अपनी तीनों कहानियों के प्रमुख पात्रों में व्यक्तित्व की पूर्ण प्रतिष्ठा की है। जयदेव वर्मा, कमला, रघुनाथ, भगवती और लहनासिंह आदि सभी पात्र व्यक्तित्व सम्पन्न हैं। चारित्रिक दृष्टि से रघुनाथ, भगवती और लहनासिंह का विशेष महत्व

है। इनका रूप विशेष रूप से निखरा है। लहनासिंह का चरित्र अत्युत्तम है। इसके चरित्र में मानवीय और आदर्श का सुन्दर समन्वय हुआ है।

कथोपकथन—गुलेरीजी की कहानियों के कथोपकथन कथानक के विकास और चरित्र-चित्रण में सहायक हैं। वर्णनों का सहारा उन्होंने दृश्य चित्रण में विशेष रूप से लिया है। एक ओर वर्णन द्वारा वातावरण उपस्थित कर और उसमें पात्रों को रखकर उनके वार्तालाप में उसके चरित्र की रेखाएँ उभारने की कला में गुलेरीजी को बड़ी सफलता मिली हैं और दूसरी ओर स्वाभाविकता, सजीवता और सुरुचि का उन्होंने बराबर ध्यान रखा है।

गुलेरीजी के कथोपकथन बड़े ही सजीव, सटीक, स्वाभाविक और पात्र-परिचय में सहायक होते हैं। 'उसने कहा था' में-

''तेरे घर कहाँ है?''

''मगरे में- और तेरे?''

''अन्तरसिंह की बैठक में, मेरे मामा होते हैं।''

''मैं भी मामा के यहाँ आया हूँ, उनका घर गुरु बाजार में है।''

यहाँ बालकों का भोलापन और परिचय की इच्छा स्पष्ट हो जाती है।

भाषा—वर्णन-कौशल और कथोपकथन की सफलता भाषा पर बहुत कुछ निर्भर है। गुलेरीजी हिन्दी के साथ विदेशी तथा प्रान्तीय भाषाओं के भी विद्वान थे। उनकी भाषा में साधारण व्यवहारिकता, विलक्षण वक्तता, सौष्ठव और आकर्षण मिलता है। उसमें कहीं भी ऊबड़पन और शिथिलता नहीं हैं। भाषा के मिले-जुले रूप ने वर्णनों में चमत्कार ला दिया है। इससे कथोपकथन बड़े ही सजीव और स्वाभाविक हो गए हैं।

उद्देश्य—गुलेरीजी की कहानियों में सोद्देश्यता विद्यमान रहती है। आदर्श उनकी प्रमुख प्रेरणा है। व्यक्ति, वर्ग और समाज तीनों के उच्च आदर्शों की उन्होंने प्रतिष्ठा की है। गुलेरीजी की कहानियाँ सामाजिक चेतना से अनुप्राणित हैं। प्रेम और कर्तव्य की भूमि पर गुलेरीजी ने आदर्श की स्थापना की है। जीवन के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण देना और मानवीय अनुभूतियों को जगाना तथा चरित्र के आदर्श की प्रतिष्ठा करना ही उनकी कहानियों का लक्ष्य रहा है। 'उसने कहा था' के विषय में पं. रामचन्द्र शुक्ल का कथन गुलेरीजी के मर्यादित यथार्थवाद एवं आदर्श प्रेम को स्पष्ट कर देता है-

''गुलेरीजी ने पक्के यथार्थवाद और सुरुचि को चरम मर्यादा के भीतर भावुकता का चरम उत्कर्ष अत्यन्त निपुणता के साथ संपुटित किया है।.... घटना के भीतर प्रेम का एक स्वर्गीय स्वरूप झाँक रहा है- केवल झाँक रहा है। निर्लज्जता के साथ पुकार या कराह नहीं रहा है। कहानी भर में कहीं प्रेम की निर्लज्जता, प्रगल्भता, वेदना की वीभत्स निवृत्ति नहीं है सुरुचि के सुकुमार से सुकुमार स्वरूप पर कहीं आघात नहीं पहुँचता। इसकी घटनाएँ ही बोल रही हैं। पात्रों के बोलने की अपेक्षा नहीं।'' यही बात गुलेरीजी की अन्य कहानियों में भी हैं।

रस-परिपाक, हास्य और विनोद—गुलेरीजी की कहानियों में रस-परिपाक की पूर्ण स्थिति है। 'उसने कहा था' के आरम्भ में सरलता, माधुर्य और चंचलता और अन्त में विषाद की गहरी छाया एवं गम्भीरता हैं। दोनों का गुम्फन इस प्रकार हुआ है कि पाठक का हृदय रस में डूब जाता है।

गुलेरीजी की गम्भीरता और पांडित्य के बीच में उनकी हास्य विनोद की प्रवृत्ति का बड़ा कलात्मक सामंजस्य दिखाई देता है, उन्होंने स्थान-स्थान पर हास्य की व्यंजना की है। सरल

प्रश्न 7. 'उसने कहा था' कहानी की कहानी के तत्वों के आधार पर समीक्षा कीजिये।

अथवा

'उसने कहा था' कहानी की साहित्यिक विशेषताओं को बताइए।

अथवा

कहानी कला की दृष्टि से 'उसने कहा था' कहानी की समीक्षा कीजिये।

उत्तर- कहानी के तत्व इस प्रकार हैं— (1) वर्गीकरण एवं कथावस्तु (2) पात्र एवं चरित्र-चित्रण (3) भाषा एवं शैली (4) उद्देश्य (5) मनोरंजकता एवं समस्याएँ (6) देशकाल एवं वातावरण (7) संवाद।

यह कहानी ऐतिहासिक एवं सामाजिक कहानी की मिली-जुली कहानी है। इसमें ऐतिहासिकता भी है एवं सामाजिकता भी।

श्री नन्ददुलारे वाजपेयी के शब्दों में, "गुलेरीजी की 'उसने कहा था' कहानी बहुत अधिक स्थान और समय घेरती है और कहानी के वर्णन प्रतिमानों को देखते हुए विराट या महाकथा (Epic story) कही जा सकती है।"

यदि इस कहानी को विस्तार दे दिया जाय तो इसका कथानक उपन्यास के रूप में परिवर्तित हो सकता है। इस कहानी के आधार पर चलचित्र भी बन सका है। 'उसने कहा था' कहानी संसार की श्रेष्ठ कहानियों में अपना स्थान रखती है। इसमें गुलेरीजी की कहानी-कथा चरमोत्कर्ष पर पहुँची हुई है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के निम्न विचार इस कहानी के सम्बन्ध में दृष्टव्य हैं—

"इसकी घटना ऐसी है जैसी बराबर हुआ करती है। परन्तु इसके भीतर से प्रेमी का एक स्वर्गीय रूप झाँक रहा है- केवल झाँक रहा है। निर्लज्जता के साथ पुकार या कराह नहीं रहा है। कहानी भर में प्रेम की निर्लज्ज, प्रगल्भता वेदना की वीभत्स-निवृत्ति नहीं।"

कथावस्तु-संगठन में जिज्ञासा—कहानी का शीर्षक पढ़ते ही पाठकों के हृदय में जिज्ञासा जागृत हो जाती है। उनके मन में प्रश्न उपस्थित हो जाते हैं- किसने कहा था? किससे कहा था? क्यों कहा था? कब कहा था? आदि। उसकी जिज्ञासा कहानी के अन्त में ही शांत होती है। कथानक का प्रारम्भ अमृतसर के बाजार में बम्ब-कार्ट के बीच में एक पंजाबी बालक लहनासिंह और पंजाबी लड़की के मिलन से होता है। आरम्भ अत्यन्त रोचक और स्वाभाविक है। बालक प्रश्न करता है- 'तेरी कुड़माई हो गई?' लड़की 'धत्' कहकर चली जाती है। एक दिन पुन: वह प्रश्न पूछे जाने पर लहना को आशा के विरुद्ध उत्तर मिलता है- "हाँ, देखते नहीं यह रेशम का कढ़ा हुआ रेशमी शालू।" लड़की का उत्तर लहना के हृदय में हलचल मचा देता है। वह रास्ते में दूसरों से टकराता हुआ घर पहुँचता है। बालक और बालिका का यह व्यवहार उनके हृदय के पवित्र प्रेम को प्रकट करता है।

"विस्मृति के सहारे कहानीकार 25 वर्ष की लम्बी छलाँग लेकर फ्रांस के मैदान में पहुँच जाता है, जहाँ लहनासिंह सूबेदार हजारासिंह के नेतृत्व में जमादार है। लहनासिंह के भारत में अपने मुकदमें की पैरवी करने के लिए आने पर, उनकी भेंट संयोग-वश बचपन में अमृतसर के बाजार में परिचित बालिका से हो जाती है। वह अब उसकी सूबेदारनी है। वह लहनासिंह से आँचल पसार कर माँगती है कि तब तुमने ताँगे के घोड़े से मेरे प्राण बचाये थे। अब मैं अपने पति-पुत्र को तुम्हें सौंप रही हूँ। इनकी रक्षा करना। लहना इस कर्तव्य को अपने सिर पर चढ़ा लेता है। समस्त घटना-क्रम और कथानक का विकास लहना की स्मृति में चित्र के रूप में उपस्थित होता है। मोर्चे पर सूबेदार और उसका पुत्र बोधसिंह घायल हो जाता है।

मृत्यु के पूर्व उसकी स्मृति सद्य हो जाती है। कहानी चरम सीमा पर पहुँच जाती है। वह वजीर की गोदी में पड़ा हुआ— 'वजीर पानी पिला बे, बार-बार कहता है। उसके ये शब्द पाठकों के हृदय पर चोट करते हैं। इसी समय लहना 'उसने कहा था', का रहस्य भी स्पष्ट करता है कि सूबेदारनी से कह देना कि 'उसने कहा था' उसे लहना ने पूरा कर दिया। उसके पति-पुत्र की रक्षा उसने अपने प्राणों का विसर्जन करके भी की। इस प्रकार उसने कहा था, का रहस्य कहानी के अन्त में खुलता है।

इस प्रकार कथावस्तु-संगठन स्वाभाविकता है। एक के पश्चात् दूसरी चित्रपट की तरह आती जाती है।

कहानी के प्रस्तावना भाग को अधिक नहीं दिया गया। अमृतसर की सड़कों पर इक्के-ताँगे वाले के चित्रण के साथ कथानक प्रारम्भ हो जाता है। इक्के-ताँगे वालों के द्वारा प्रयुक्त शब्दावली सफल वातावरण का निर्माण कर देती है।

पात्र—कहानी में पात्र इस प्रकार हैं- पूर्व एक लड़का और लड़की और जो बाद में लहनासिंह एवं सूबेदार की है। वजीरा, लेफ्टीनेण्ट साहब, सूबेदार और हजारासिंह, बोधसिंह लेफ्टीनेण्ट साहब-कुछ सैनिक।

चरित्र-चित्रण—चरित्र-चित्रण की दृष्टि से 'उसने कहा था' कहानी एक महान् आदर्श प्रस्तुत करती है। लहनासिंह का बाल्यकाल, युवाकाल का यथार्थ जीवन सामने आता है। लहनासिंह का चरित्र यथार्थ की पृष्ठभूमि पर आदर्श का प्रतिनिधित्व करता है, उसके प्रेम में वासना का लेशमात्र भी नहीं है। वह अपने वचन का पालन प्राणों को देकर भी करता है। वह मधुर प्रेम की पवित्र स्मृति में अपने को सहर्ष बलिदान कर देता है।

सूबेदार हजारासिंह का चरित्र-चित्रण भी बहुत कुशलता के साथ किया गया है। उसमें वीरता, धीरता, निर्भरता आदि सभी गुण हैं। अपने अफसर की आज्ञा का पालन करना वह अपना धर्म समझता है और उसके लिए अपने प्राण तक देने को तैयार है। सूबेदार के बाल्य-जीवन और युवाकाल के जीवन पर प्रकाश पड़ता है।

कहानी के सभी पात्रों का परिचय संवाद के द्वारा ही हुआ है। लेखक अपनी ओर से परिचयात्मक एक शब्द भी नहीं लिखता है। इस प्रकार कथोपकथनों पर नाटकीयता आ गई है।

'तेरे घर कहाँ है?''

'मगरे में' — 'और तेरे?'

'माझे में' — 'यहाँ कहाँ रहती है?'

'अंतरसिंह की बैठक में, वे मेरे मामा होते हैं।'

'मैं भी मांमा के यहाँ आया हूँ। उनका घर गुरु बाजार में है।'

लहनासिंह और लेफ्टीनेण्ट साहब का वार्तालाप भी बहुत आकर्षक है। मृत्युशय्या पर पड़े हुए लहनासिंह का वजीरसिंह से संवाद बहुत ही मर्मभेदक है। प्रस्तुत कहानी के कथोपकथन कथावस्तु को विकसित करने एवं पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं पर प्रकाश डालने में विशेष सहायक हुए हैं। सभी कथोपकथन सजीव और नाटकीय शैली में है।

हास्य का पुट—प्रस्तुत कहानी में हास्य का भी पुट है। उनका हास्य, विनोद की तो सीमा तक रहता है। लहनासिंह और नकली लेफ्टीनेण्ट के साथ हुई बातचीत से जो विनोद की फुलझड़ियाँ छूटती हैं, वे पाठक को रस-मग्न कर देती हैं। सम्पूर्ण कहानी रससिक्त है। कहानी का प्रारम्भ चंचल और अन्त करुणा की कादम्बिनी छा देता है। सम्पूर्ण कहानी में ममत्व, रति हास्य और करुणा के समन्वय से जो रस का परिपाक होता है, वह हृदय को तन्मयता प्रदान करता है।

भाषा—'उसने कहा था' कहानी की भाषा तत्सम शब्द-प्रधान होते भी व्यावहारिक है। वह सरल और प्रसंगानुकूल है। प्रादेशिक भाषा के शब्द प्रयोग से भाषा आकर्षणमयी हो गई है। उर्दू, पंजाबी और अंग्रेजी शब्दों के प्रयोग के साथ-साथ संस्कृत और पंजाबी के कुछ अंशों ज्यों के त्यों उद्‌भूत करने से और उसके पश्चात् तात्पर्यार्थ देने से शैली साहित्यिक हो गई है। भाषा में समास प्रधान शैली का अनुभव होने लगता है। बीच में आए हुए मुहावरे भाषा श्रृंगार करते हैं। मृत्यु शय्या पर पड़े लहनासिंह के मुख से प्रयुक्त भाषा में काव्यात्मकता है।

शैली—इस कहानी में निम्नलिखित शैलियाँ हैं—

(1) वर्णनात्मक (2) भावात्मक (3) चित्रात्मक।

उद्‌देश्य—पावन प्रेम में अपना सर्वस्व दूसरे के लिए बलिदान कर देना और उसका किंचित मात्र भी विज्ञापन न करना ही इस कहानी की मुख्य संवेदना है। एक सफल प्रेमी लहनासिंह पूर्व प्रेम की मधुर स्मृति के आधार पर प्रेमिका के लिए उसके पुत्र की रक्षा करने में अपना बलिदान करते हुए गौरव का अनुभव करता है। उसमें वासना का लेशमात्र भी नहीं है। प्रेम का सात्विक प्रभाव छलक रहा है।

मनोरंजकता एवं समस्याएँ—कहानी, भाषा, संवाद, पात्र एवं दृष्टिकोण से अत्यंत मनोरंजक है, एक साथ उसे पढ़ने का मन होता है। कहानी की गति अत्यन्त मोहक है। कहानी में देशप्रेम एवं कर्तव्य-पालन की समस्या एवं युद्धजनित समस्याओं का समावेश है।

देशकाल वातावरण—कहानी का क्षेत्र भारत एवं भारत के बाहर का प्रदेश है - यह बर्लिन के युद्ध की घटना है तथा इसका काल द्वितीय विश्व युद्ध का काल है। कहानी में वातावरण का निर्वाह अत्यंत सुरुचिपूर्ण है। पहले अमृतसर के बाजार, वहाँ के ताँगेवालों की बोली, बालक एवं बालिका का मिलन एवं उनकी वार्ता अत्यंत रोचक है। बाद में युद्ध का सटीक वातावरण है। साथ ही मृत्यु पूर्व की घटनाओं का उल्लेख अत्यंत कौशल का काम है।

संवाद—कहानी के संवाद छोटे-छोटे एवं अत्यंत सटीक है। वे मार्मिक भी हैं तथा प्रसंगानुसार हास्य, वीरता, प्रेम इत्यादि को प्रकट करते है उनकी भाषा अत्यन्त सजीव है। ❑

महत्वपूर्ण व्याख्या

1. संकेत- "मृत्यु के कुछ समय पहले स्मृति बहुत साफ हो जाती है। जन्म भर की घटनाएँ एक-एक करके सामने आती हैं। सारे दृश्यों के रंग साफ होते हैं, समय की धुन्ध ऊपर से बिलकुल हट जाती।"

सन्दर्भ—लहनासिंह का मृत्यु समय निकट है। इस समय उसकी स्मृति में पूर्व जीवन की सभी घटनाएँ आ रही हैं। प्रस्तुत पंक्तियों में कहानीकार इसी तत्व को पल्लवित कर रहा है।

व्याख्या—जीवन के अन्तिम क्षणों में मनुष्य के समक्ष उसके जीवन की सभी घटनाएँ आ जाती हैं। उनकी स्मृति साफ हो जाती है। जीवन के सारे दृश्य उसे स्पष्ट दिखाई देने लगते हैं। जिस प्रकार शीशे पर से धूल हट जाने से स्पष्ट दिखाई देने लगता है, उसी प्रकार से अन्तिम समय में कर्म और संघर्ष की धूल मनुष्य की आँखों से हट जाती है और उसे अपने जीवन की विगत घटनाएँ चलचित्र की भाँति दिखाई देने लगती है- लहना के सामने - अमृतसर में लड़की से भेंट, सूबेदारनी द्वारा लहना से सूबेदार एवं बोधासिंह की रक्षा का वचन इत्यादि समस्त घटनाएँ याद आ जाती हैं।

विशेष—खड़ी बोली, व्यंजना शब्द शक्ति का प्रयोग है। मनोवैज्ञानिक सत्य की मीमांसा है।

3 पंच परमेश्वर (प्रेमचन्द)

प्रश्न 8. प्रेमचन्द की कहानी-कला की विशेषताओं को लिखिए।

अथवा

प्रेमचन्द की कथात्मक विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

उत्तर— हिन्दी कथा-साहित्य की चली आती हुई कथा-शिल्प की अधूरी या कमजोरी को मुंशी प्रेमचन्द ने पहचाना। उसे दूर करने के लिए लगभग चार सौ कहानियों को लिखा। इससे न केवल उन्होंने रचना संख्या की दृष्टि से अपना सर्वोच्च स्थान लिया, अपितु कलात्मक दृष्टिकोण से भी सर्वोत्कृष्टता प्राप्त की। इस प्रकार प्रेमचन्द ने अपने कलात्मक महत्व को युग-युग तक स्थापित करने के लिए विविध प्रकार के विषयों को लेकर कहानियों का सृजन किया। इससे प्रेमचन्द जी निश्चय ही हमारे हिन्दी कथा-संसार के सर्वप्रथम मौलिक कथा-शिल्पी सिद्ध होते हैं। इस तथ्य की पुष्टि में हम कथा तत्वों की दृष्टि से मुंशी प्रेमचन्द की कहानी-कला की विशेषताओं का उल्लेख इस प्रकार से कर रहे हैं—

1. कथानक या कथावस्तु—कथानक या कथावस्तु की दृष्टि से मुंशी प्रेमचन्द का कथा-संसार सर्वाधिक विस्तृत है। वह सर्व व्यापक रूप से दिखाई देता है। उसकी व्यापकता ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक, दार्शनिक, राजनैतिक, मनोवैज्ञानिक आदि को लिए हुए है। मुंशी प्रेमचन्द जी ने अपने कथानक को इसलिए इतना व्यापक और विस्तृत किया कि जीवन का कोई भी अंग अछूता न रह जाए। परिवार, समाज और राष्ट्र का कोई भी पहलू ओझल न हो जाए। इसीलिए उनके कथानकों में दहेज-प्रथा, अछूतोद्धार, बाल-विवाह, विधवा-विवाह, अंध-विश्वास, राष्ट्र-द्रोह, शोषण, अत्याचार, घूसखोरी, निरंकुशता, गुरुभक्ति, आदि पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रीय समस्याओं के उल्लेख हुए हैं। इस प्रकार से प्रेमचन्द जी से संसार की कोई भी समस्या अछूती नहीं रही।

इन सभी समस्याओं और घटनाओं को प्रेमचन्द जी ने अत्यंत कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किया। इससे ये सभी समस्याएँ सजीव, मार्मिक और यथार्थ होकर पाठकों का हृदय-हार बन गई हैं।

2. पात्र और चरित्र-चित्रण—मुंशी प्रेमचन्द जी ने 'कहानी' शीर्षक निबंध में लिखा है—"वर्तमान आख्यायिका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और जीवन के यथार्थ और स्वभाविक चित्रण को अपना ध्येय समझती हैं उसमें कल्याण की मात्रा कम अनुभूति की मात्रा अधिक होती है।" इसी विचार में प्रेमचन्द जी ने मानव-संसार की अनुभूतियों को गंभीरतापूर्वक समझकर उन्हें कहानियों में सजीव कर दिया। मानव-संसार के चरित्रों को सच्चाई और वास्तविकता के चित्रण के लिए उपयुक्त पात्रों का चयन किया। सभी पात्रों के द्वारा यथार्थ और स्वाभाविक मानवीय चरित्रों को उद्घाटित किया। इसीलिए उनकी कहानियों में किसान, मजदूर, सेठ, साहूकार, पूँजीपति, डॉक्टर, वकील, जमींदार, महात्मा, भिखारी, चपरासी, विधवा, विमाता, अध्यापक, विद्यार्थी, शराबी, स्त्री, बच्चे, बूढ़े आदि अत्यंत यथार्थ और स्वाभाविक रूप में मिलते हैं।

3. देशकाल और वातावरण—देशकाल और वातावरण के अनुसार ही प्रेमचन्द ने अपने कथा-संसार का जाल बिछाया है। उनकी कहानियों की कथा-वस्तु देशकाल व

वातावरण के अनुसार ही चुनी-बुनी गयी है। जिस काल और स्थान की कथा-वस्तु है उसके अनुसार ही उसमें वातावरण की योजना रखी गई और इनके अनुसार ही कथानक के एक-एक सूत्र निकलकर पाठक के हृदय को बांध लेते हैं। इस प्रकार से संपूर्ण कथा एक जीवंत घटना-दृश्य के रूप में हमारे हृदय को अधिक प्रभावित करते हैं। इसी से इनकी कहानियों की सफलता अधिक दिखाई देती है।

4. संवाद या कथोपकथन—प्रेमचन्द जी की कहानियों के संवाद अत्यधिक रोचक, सरस और भावप्रद हैं, ये देशकाल और वातावरण को अधिक प्रभावित करने में समर्थ हैं। इनके संवादों के स्वरूप सभी प्रकार के पात्रों की मानसिक अभिव्यक्ति के प्रतीक हैं। फलतः शिक्षित-प्रशिक्षित, अशिक्षित, परिमार्जित, देशी और विदेशी सभी प्रकार की भाषा-बोली से पुष्ट संवाद हैं। इस प्रकार से प्रेमचन्द जी की कहानियों के कथोपकथन प्रसंगानुकूल हैं। इसी से वे लोकप्रिय हैं।

5. भाषा-शैली—भाषा-शैली के प्रयोग के क्षेत्र में प्रेमचन्द समकालीन कथाकारों से अधिक निपुण, प्रौढ़, सफल, समर्थ और विशेषज्ञ दिखाई देते हैं। इसका मुख्य कारण है कि प्रेमचंद की कहानियों में तत्सम्, तद्भव, देशज, अंग्रेजी, अरबी, फारसी, उर्दू आदि के साथ-साथ विविध प्रकार की सूक्तियों के भी प्रयोग मिलते हैं। उच्चस्तरीय साहित्यक भाषा से अलंकृत ऐसे-ऐसे वाक्य प्रयुक्त हुए हैं कि अव्वल दर्जे के साथ साहित्यिक को मात खानी पड़ती है। इसके विपरीत ऐसे शब्द-भाषा प्रयोग हैं, जो सभी वर्ग-श्रेणी के पाठक को समझ में आ जाते हैं। इस प्रकार से भाषा प्रयोग के क्षेत्र में प्रेमचन्द सफल दिखाई देते हैं।

प्रेमचन्द जी शैली प्रयोग के क्षेत्र में भी बहुत कुशल हैं। चित्रात्मक, सरस, सुबोध, भावात्मक, पत्रात्मक, डायरी, नाटकीय आदि शैलियों को सफलतापूवर्क प्रेमचन्द ने प्रयुक्त किया है।

6. उद्देश्य—प्रेमचन्द जी ने मनोरंजनार्थ कहानियों को नहीं लिखा है, अपितु उद्देश्यार्थ ही लिखा है। मानव-संसार की कमजोरियों और आदर्शों को चित्रित करके अपने पाठकों को बुराई को त्यागने और अच्छाई को अपनाने के लिए प्रेरणा-शिक्षा दी है। इसके लिए उन्होंने आदर्शोन्मुख यथार्थवाद का मार्ग अपनाया। वास्तव में प्रेमचन्द के कथा-साहित्य का उद्देश्य समाज सुधारक, राष्ट्रोत्थान और समन्वयवाद से कहीं ऊपर मानवतावाद की स्थापना का उद्देश्य रहा।

महत्व—मुंशी प्रेमचन्द का कथा-साहित्य-संसार में बेमिसाल स्थान और महत्व है। कथा-तत्व को सही और ठीक-ठीक रूप में प्रयुक्त करने वालों में प्रेमचन्द का स्थान सर्वोच्च है। ❑

प्रश्न 9. पंच परमेश्वर कहानी का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

अथवा

पंच परमेश्वर कहानी का प्रतिपाद्य स्पष्ट कीजिए।

अथवा

मुंशी प्रेमचन्द द्वारा लिखित कहानी 'पंच परमेश्वर' का सार लिखिए।

उत्तर-

पंच परमेश्वर कहानी का सार/प्रतिपाद्य

'पंच परमेश्वर' मुंशी प्रेमचन्द द्वारा रचित एक सुविख्यात कहानी है, जिसका प्रकाशन सन् 1915 में हुआ था। हिन्दी साहित्य जगत में कुछ आलोचक 'पंच परमेश्वर' कहानी को हिन्दी की प्रथम कहानी मानते हैं। सच्चे अर्थों में यह कहानी एक आदर्शवादी कहानी है।

जुम्मन शेख और अलगू चौधरी दोनों में बचपन से बहुत गहरी मित्रता थी। दोनों मिलकर साझे में खेती करते थे। दोनों को एक-दूसरे पर गहरा विश्वास था। दोनों एक-दूसरे के भरोसे अपना घर, सम्पत्ति छोड़ देते थे। उनकी मित्रता का मूल मंत्र उनके आपसी विचारों का मिलना था। जुम्मन शेख की एक बूढ़ी मौसी थी। मौसी के पास उसके अपने नाम से थोड़ी-सी जमीन थीं, किन्तु उसका कोई निकट सम्बन्धी नहीं था। जुम्मन ने मौसी से लम्बे-चौड़े वादे किए और जमीन को अपने नाम लिखवा लिया। जब तक जमीन की रजिस्ट्री नहीं हुई थी, तब जुम्मन तथा उसके परिवार ने मौसी का खूब आदर-सत्कार किया। मौसी को तरह-तरह के पकवान खिलाए जाते थे। जिस दिन से रजिस्ट्री पर मोहर लगी, उसी समय से सभी प्रकार की सेवाओं पर भी मोहर लग गई। जुम्मन की पत्नी अब मौसी को रोटियाँ देने के साथ-साथ कड़वी बातों के कुछ तेज सालन भी देने लगी थी। बात-बात में वह मौसी को कोसती रहती थी। जुम्मन शेख भी मौसी का कोई ध्यान नहीं रखते थे। सभी बूढ़ी मौसी के मरने का इंतजार कर रहे थे। एक दिन जब मौसी से सहा नहीं गया तो उसने जुम्मन से कहा कि वह उसे रुपए दे दिया करे ताकि वह स्वयं अपना भोजन पकाकर खा सके। उसके परिवार के साथ अब उसका निर्वाह नहीं हो सकेगा। जब जुम्मन ने मौसी की बात को नकार दिया तो मौसी ने पंचायत करने की धमकी दे डाली। जुम्मन शेख पंचायत करने की धमकी का स्वर सुनकर मन ही मन खूब प्रसन्न था। उसे पूर्ण विश्वास था कि पंचायत में उसी की जीत होगी।

सारा इलाका उसका ऋणी था, इसलिए उसे फैसले की तनिक भी चिन्ता न थी। वह पूर्णत: आश्वस्त था कि फैसला उसी के पक्ष में होगा। बूढ़ी मौसी कई दिनों तक लकड़ी का सहारा लिए गाँव-गाँव घूमती रही, वह सभी को अपनी दु:ख भरी कहानी सुनाती रही। गाँव में दीन-हीन बुढ़िया का दुखड़ा सुनने वाले और उसे सांत्वना देने वाले लोग बहुत ही कम थे। सारे गाँव में घूमने के बाद अन्त में घूमते-घूमते मौसी अलगू चौधरी के पास जाकर उसे पंचायत में आने का निमंत्रण देने लगी। अलगू चौधरी पंचायत में आने को तैयार हो गया। उसने मौसी से कहा कि जुम्मन शेख उसका पक्का मित्र है, इसलिए वह उसके विरोध में कुछ नहीं बोलेगा, वह वहाँ चुपचाप बैठा रहेगा। मौसी ने प्रतिवार करते हुए कहा कि, "क्या बिगाड़ के डर से ईमान की बात न कहोगे ?" मौसी द्वारा कहे गए इन शब्दों का अलगू के पास कोई उत्तर नहीं था। आखिरकार एक दिन शाम के समय एक पेड़ के नीचे पंचायत बैठी। जुम्मन शेख ने पहले से ही फर्श बिछाया हुआ था। पंचायत में आने वाले सभी लोगों के सत्कार का उसने पूरा प्रबन्ध कर रखा था। उनके खाने के लिए पान, इलायची, हुक्के-तम्बाकू आदि का पूर्ण प्रबन्ध कर रखा था।

पंचायत में जब कोई आता था तो वह दबे हुए सलाम के साथ उनका आदर-सत्कार करते हुए स्वागत करता था। पंचों के बैठने के बाद बूढ़ी मौसी अपनी करुण कहानी सुनाते हुए कहने लगी कि तीन वर्ष पहले उसने अपनी सारी जायदाद जुम्मन शेख के नाम लिखी थी। जुम्मन शेख ने भी उसे उम्र भर रोटी कपड़ा देना स्वीकार किया था। साल भर तो किसी तरह रो-पीट कर दिन निकाल लिए, लेकिन अब अत्याचार नहीं सहे जाते। आप पंचों का जो भी आदेश होगा, वह मैं स्वीकार करूँगी। सभी ने मिलकर अलगू चौधरी को सरपंच बना दिया। अलगू के सरपंच बनते ही जुम्मन आनंद से भर गए। उन्होंने अपने भाव अपने मन में रखते हुए कहा कि उन्हें अलगू का सरपंच बना स्वीकार है। अलगू के सरपंच बनने पर रामधन मिश्र और जुम्मन के अन्य विरोधी-जन बुढ़िया को अपने मन ही मन कोसने लगे। जुम्मन को अब फैसला अपनी तरफ आता दिखाई दे रहा था। अलगू द्वारा पूछा गया एक-एक प्रश्न जुम्मन

को हथौड़े की एक-एक चोट के समान लग रहा था। अन्ततः अलगू चौधरी ने अपना फैसला सुनाते हुए कहा कि बूढ़ी मौसी की जायदाद से इतना लाभ अवश्य होगा कि उसे महीने का खर्च दिया जा सके। इसलिए जुम्मन को मौसी को महीने का खर्च देना ही होगा। यदि जुम्मन को फैसला अस्वीकार है तो जायदाद की रजिस्ट्री रद्द समझी जाए। सभी ने अलगू के फैसले को खूब सराहा। फैसला सुनते ही जुम्मन सन्नाटे में आ गए।

अलगू चौधरी के इस फैसले ने जुम्मन के साथ उसकी दोस्ती की जड़ों को पूरी तरह से हिला दिया था। जुम्मन दिन-रात बदला लेने की सोचता रहता था। शीघ्र ही जुम्मन की कुटिल सोच की प्रतिक्षा समाप्त हुई। अलगू चौधरी पिछले वर्ष ही बटेसर से बैलों की एक जोड़ी मोल खरीद लाया था। बैल पछाही जाति के थे। दुर्भाग्यवश पंचायत के एक महीने बाद अलगू का एक बैल मर गया। अब अकेला बैल अलगू के किसी काम का नहीं था। उसने बैल समझू साहू को बेच दिया। बैल की कीमत एक महीने बाद देने की बात निश्चित हुई। अब समझू साहू दिन में नया बैल मिलने से तीन-तीन, चार-चार खेपे करने लगे। उन्हें केवल काम से मतलब था। बैलों की देख-रेख तथा चारे से उन्हें कोई लेना-देना नहीं था। भोजन-पानी के अभाव में एक दिन सामान लाते हुए रास्ते में बैल ने दम तोड़ दिया। समझू साहू को मार्ग में ही रात बितानी पड़ी। सुबह जब वह उठे तो उनकी धन की थैली तथा तेल के कुछ कनस्तर चोरी हो चुके थे। समझू साहू रोते-पीटते घर पहुँचे। काफी दिनों के बाद अलगू चौधरी अपने बैल की कीमत लेने समझू साहू के घर गए, किन्तु साहू ने पैसे देने के स्थान पर अलगू को भला बुरा कहना शुरू कर दिया। अन्ततः पंचायत बैठी। सरपंच जुम्मन शेख को चुना गया। सरपंच के रूप में जुम्मन ने न्याय संगत फैसला सुनाया। उसने समझू साहू को कसूरवार मानते हुए अलगू को बैल की कीमत लेने का हकदार बताया। क्योंकि जिस समय समझू साहू ने बैल खरीदा था। उस समय वह पूर्णतः स्वस्थ था। बैल की मृत्यु का कारण बीमारी न होकर अधिक परिश्रम करना था, जुम्मन के फैसले को सुनकर चारों तरफ 'पंच परमेश्वर की जय' का उद्घोष होने लगा। अलगू ने जुम्मन को गले से लगा लिया। दोनों के नेत्रों से गिरते आँसुओं ने दोनों के दिलों के मैल को धो दिया। दोनों की दोस्ती रूपी लता जो कभी मुरझा गई थी, वह अब हरी-भरी हो गई थी। ❑

प्रश्न 10. 'पंच परमेश्वर' कहानी की कहानी के तत्वों के आधार पर समीक्षा कीजिए।

अथवा

कहानी कला की दृष्टि से 'पंच परमेश्वर' कहानी की समीक्षा कीजिए।

उत्तर-

'पंच परमेश्वर' कहानी की समीक्षा

प्रेमचंद की 'पंच परमेश्वर' कहानी के प्रकाशन के साथ ही हिन्दी कथा-साहित्य में एक नए युग के दर्शन होते हैं। इस कहानी में ही पहली बार हिन्दी कथा-साहित्य के सच्चे तत्व अंकुरित और विकसित हुए हैं। इस दृष्टि से इस कहानी का हिन्दी कथा-साहित्य में ऐतिहासिक महत्व है। यह हमारे हिन्दी कथा-साहित्य की पथ-प्रदर्शक कहानी है। कहानी के तत्वों के आधार पर 'पंच परमेश्वर' कहानी की समीक्षा प्रस्तुत है-

1. कथावस्तु—मुंशी प्रेमचंद ग्रामीण जीवन के कुशल चितेरे थे। उनका अधिकांश कथा-साहित्य ग्रामीण जीवन से सम्बन्धित है। इस कहानी में ग्राम पंचायतों के महत्व पर प्रकाश डाला गया है।

जुम्मन शेख और अलगू चौधरी दोनों घनिष्ठ मित्र थे। जुम्मन शेख की एक बुढ़िया मौसी है, जिसकी सारी सम्पत्ति उन्होंने अपने नाम लिखा ली है और बदले में आजीवन उसके

जीवन निर्वाह का वचन दिया है। बाद में जुम्मन शेख अपने इस वचन का पालन नहीं कर रहा था। बुढ़िया को न तो भरपेट भोजन मिल पाता है और न तन ढँकने को वस्त्र। तंग आकर बुढ़िया पंचायत कराती है और अपनी ओर से अलगू चौधरी को सरपंच बनाती है। जुम्मन शेख यह सोचकर बहुत प्रसन्न होता है कि मित्र होने के नाते अलगू चौधरी उसके ही पक्ष में निर्णय देगा, परन्तु पंच के आसन पर बैठकर अलगू चौधरी अपना निर्णय बुढ़िया के पक्ष में देता है। इससे जुम्मन शेख अलगू चौधरी से बैर-भाव मानने लगता है। दोनों की आपस की मित्रता टूट जाती है। इधर अलगू चौधरी बैलों की एक जोड़ी खरीदता है, पर थोड़े ही दिनों पश्चात् उनका एक बैल मर जाता है। अलगू चौधरी को संदेह होता है कि जुम्मन ने विष देकर मेरा बैल मरवा दिया है। दोनों की पत्नियों में खूब तकरार होती है। अलगू अपना दूसरा बैल गाँव के समझू साहू को बेच देता है। एक महीने बाद उसके दाम चुकाने की बात तय होती है। समझू साहू बैल को दाना-पानी ठीक प्रकार से नहीं देता, परन्तु उससे काम खूब लेता है। परिणाम यह होता है कि बैल एक दिन बोझा ढोते समय रास्ते में ही मर जाता है। साहू के कुछ रुपए और कई कनस्तर चोरी चले जाते हैं। साहू और सहुआइन इस सबका दोष बैल को देते हैं। अलगू चौधरी जब अपना दाम माँगता है तो साहू और सहुआइन दोनों ही उससे लड़ने पर उतारू हो जाते हैं। अन्त में अलगू चौधरी पंचायत कराते हैं। समझू साहू की ओर से जुम्मन शेख को सरपंच बनाया जाता है। पंच के आसन पर बैठकर जुम्मन शेख अलगू चौधरी के ही पक्ष में अपना निर्णय देता है। सभी लोग जुम्मन शेख के उचित न्याय की प्रशंसा करते हैं। जुम्मन शेख और अलगू चौधरी दोनों फिर मित्र बन जाते हैं, क्योंकि दोनों ने ही यह जान लिया था कि पंच के पद पर बैठकर न कोई किसी का मित्र होता है और न कोई किसी का शत्रु। पंच के मुख से परमेश्वर बोलता है।

कथावस्तु से स्पष्ट है कि कथानक का क्षेत्र पर्याप्त विस्तृत और व्यापक है। उसमें अनेक मोड़ हैं और कहानी की मूल संवेदना को प्रकट करने के लिए अनेक घटनाओं को स्थान दिया गया है। जुम्मन शेख और अलगू चौधरी की मित्रता, जुम्मन शेख का अपनी मौसी के साथ व्यवहार, मौसी का पंचायत बैठाना और उसमें अलगू चौधरी द्वारा जुम्मन के विरुद्ध निर्णय देना, अलगू चौधरी और समझू साहू का बैल को लेकर झगड़ा, अलगू चौधरी का पंचायत बैठाना आदि कई घटनाएँ इस कथानक में जुड़ी हुई हैं। इतना अवश्य है कि सभी प्रसंग एक ही लक्ष्य बिन्दु की ओर अग्रसर हुए हैं। इससे कथानक अव्यवस्थित नहीं होने पाया है। सभी घटनाएँ एक-दूसरे से जुड़ी हुई हैं। उनका विकास स्वाभाविक गति से हुआ है तथा उनमें कहीं उलझन नहीं है।

कथानक का यह रूप इतिवृत्तात्मक और स्थूल हो गया है। उसमें सूक्ष्मता नहीं है जो आधुनिक कहानी का आवश्यक गुण है। इतिवृत्तात्मक होते हुए भी इस कहानी की कथावस्तु बड़ी रोचक है। इसमें पाठक की कौतूहल-वृत्ति बराबर बनी रहती है।

2. पात्र तथा चरित्र-चित्रण—यह कहानी चरित्र-चित्रण की दृष्टि से पर्याप्त मनोवैज्ञानिक आधार लिए हुए हैं। ग्रामीण समाज से सम्बन्धित होने कारण कहानी ग्रामीण पात्रों को लेकर चली है। कहानी के मुख्य पात्र जुम्मन शेख, अलगू चौधरी, बुढ़िया और समझू साहू हैं। सभी पात्र वर्गवादी हैं अर्थात् वे अपने चरित्र की जिन विशेषताओं को हमारे सामने रखते हैं, वे असाधारण न होकर उसी प्रकार की हैं, जो हमारे जाने-पहचाने समाज के लोगों में पाई जाती हैं। पात्रों की अच्छाइयों और बुराइयों-दोनों ही रूपों को लेखक ने हमारे सामने रखा है। समझू साहू गाँव का लोभी, कंजूस, बेईमान और निर्दयी साहूकार है। उसके लिए पैसा

ही सब कुछ है। अलगू चौधरी से खरीदे हुए बैल को वह भली प्रकार से दाना-पानी नहीं देता, परन्तु उसे काम बहुत लेता है। बैल के मरने पर वह अलगू चौधरी को उसके दाम भी नहीं देना चाहता। वह जुम्मन शेख को अपनी ओर से सरपंच इसीलिए बनाना चाहता है, जिससे उसके पक्ष में निर्णय हो सके। जुम्मन शेख भी स्वार्थी और नीच स्वभाव का पात्र है। अपनी मौसी की सारी सम्पत्ति हड़प करके भी वह उसे खाने को नहीं देता था। अलगू चौधरी द्वारा उनके विरुद्ध निर्णय दिए जाने पर वह मन ही मन अलगू चौधरी से बैर-भाव मानने लगता है, पर अन्त में वह अपने चरित्र का पुनीत और सच्चा आदर्श हमारे सामने रखता है। अलगू चौधरी और बुढ़िया के चरित्र की कोई विशिष्टता देखने को नहीं मिलती। वास्तव में ये सभी पात्र चरित्र-प्रधान न होकर आचरण प्रधान हैं। विविध परिस्थितियों में वे जैसा आचरण करते हैं, उसी का स्वरूप लेखक ने हमारे सामने प्रकट किया है। उनका अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। कहानी के इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए पंच का कार्य परमेश्वर का होता है। इन चरित्रों की कल्पना की गयी है। इसी उद्देश्य को केन्द्र बनाकर उनके चरित्रों को यथार्थ से आदर्श भी बनाया गया है।

3. संवाद या कथोपकथन—प्रेमचंदजी की यह कहानी नाटकीय शैली में न होकर वर्णनात्मक शैली में है। कहानीकार ने अपनी ओर से ही सब कुछ कहने का प्रयत्न किया है। यही कारण है कि कथोपथन की संवाद शैली को इस कहानी में अधिक स्थान नहीं मिला। फिर भी जहाँ कहीं कथोपकथन या संवाद आए हैं, उनका रूप बड़ा ही स्वाभाविक और सजीव है। वे सभी पात्रानुकूल, भावनाकुल और परिस्थिति के अनुकूल हैं। उदाहरण के लिए, बुढ़िया और अलगू चौधरी का यह संवाद देखा जा सका है-

खाला ने लाठी पटक दी और दम लेकर बोली- बेटा, तुम भी दमभर के लिए मेरी पंचायत में चले आना।

अलगू—मुझे बुलाकर क्या करोगी? कई गाँव के आदमी तो आवेंगे ही।

खाला—अपनी विपद तो सबके आगे रो आयी। अब आने न आने का अख्तियार उनको है।

अलगू—अब इसका क्या जवाब दूँ? अपनी खुशी, जुम्मन मेरा पुराना मित्र है। उससे बिगाड़ नहीं कर सकता।

खाला—बेटा, क्या बिगाड़ के डर से ईमान की बात न बोलोगे?

4. देशकाल और वातावरण—देशकाल एवं वातावरण के चित्रण में तो प्रेमचंदजी सिद्धहस्त हैं। 'पंच परमेश्वर' कहानी से यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है। पंचायत के दृश्य का उन्होंने जो वर्णन किया है, उसे पढ़कर ऐसा लगता है, जैसे पंचायत हमारे ही सामने हो रही हो। पंचायत में बुढ़िया की फरियाद, रामधन मिश्र का जुम्मन के प्रति विरोधी रूख, अलगू चौधरी का निर्णय आदि प्रसंग ऐसे हैं, जो देशकाल-वातावरण की दृष्टि से बिल्कुल उचित है। इसी प्रकार बीच मार्ग में समझू साहू की गाड़ी के बोझ को ढोते हुए बैल की मृत्यु, रात्रि के समय समझू साहू की परेशानी आदि के दृश्य-चित्र भी बड़े स्वाभाविक और सजीव बन पड़े हैं।

उदाहरण के रूप में खाला की पंचायत का वातावरण प्रस्तुत है- "संध्या-समय एक पेड़ के नीचे पंचायत बैठी। शेख जुम्मन ने पहले से ही फर्श बिछा रखा था। उन्होंने पान, इलायची, हुक्के-तम्बाकू आदि का प्रबंध भी किया था। हाँ, स्वयं अलबत्ता अलगू चौधरी के साथ जरा दूर पर बैठे हुए थे। जब पंचायत में कोई आ जाता था, तब दबे हुए सलाम से उसका

स्वागत करते थे। जब सूर्य अस्त हो गया और चिड़ियों की कलरवयुक्त पंचायत पेड़ों पर बैठी, तब पंचायत शुरू हुई। फर्श की एक-एक अंगुल जमीन भर गयी, पर अधिकांश दर्शक ही थे। पंचायत में केवल वे ही लोग पधारे थे, जिन्हें जुम्मन से अपनी कुछ कसर निकालनी थी। एक कोने में आग सुलग रही थी। नाई ताबड़-तोड़ चिलम भर रहा था।''

5. भाषा-शैली—प्रस्तुत कहानी हमारे ग्रामीण जीवन से सम्बन्धित है। कहानी के पात्र शिक्षित समाज के नहीं हैं, अत: जिस भाषा का प्रयोग कहानीकार ने अपनी इस कहानी में किया है, वह शिक्षित समाज की साहित्यिक भाषा नहीं, अपितु ग्रामीण समाज के बीच बोली जाने वाली सीधी सरल भाषा है। पात्रानुकूल होने से भाषा का रूप बड़ा स्वाभाविक और सजीव है। कृत्रिमता उसमें नाममात्र को भी नहीं है। भावानुकूल होने से उसमें पर्याप्त प्रवाह, लोच और रवानगी है।

कहानी में मुस्लिम पात्र होने से उर्दू शब्दों की बहुलता है, परन्तु कहीं-कहीं जहाँ लेखक ने अपनी ओर से कोई विचार व्यक्त किया है, कहानी की भाषा संस्कृतनिष्ठ हिन्दी हो गई है। उदाहरण के लिए-

''पत्र-संपादक अपनी शान्ति-कुटी में बैठा हुआ कितना धृष्टता और स्वतंत्रता के साथ अपनी प्रबल लेखनी से स्वयं मंत्रिमंडल पर आक्रमण करता है, परन्तु ऐसे अवसर भी आते हैं, जब वह स्वयं मंत्रिमंडल में सम्मिलित होता है। मंडल के भवन में पग धरते ही उसकी लेखनी कितनी मर्मज्ञ, कितनी विचारशील, कितनी न्यायपरायण हो जाती है। इसका कारण उत्तरदायित्व का ज्ञान है।''

फिर भी प्रेमचंदजी ने अपनी इस कहानी में बोलचाल के ही शब्दों का अधिक सहारा लिया है। कहावतों और मुहावरों के सफल प्रयोग ने इसकी भाषा के सौन्दर्य को अधिक निखार दिया है। जैसे- मुझे सत्य से जी-भर भी टलना उचित नहीं, अफसोस में बेचारे ने सिर पीट लिया, कब्र में पाँव लटके हुए हैं, आदि। कहीं-कहीं तो भाषा का रूप बड़ा लाक्षणिक हो गया है। जैसे- ''जब तक दान-पत्र की रजिस्ट्री नहीं हुई थी, तब तक खालाजान का खूब आदर-सत्कार किया गया। उन्हें खूब स्वादिष्ट भोज्य पदार्थ खिलाए गए थे। हलवे-पुलाव की वर्षा-सी की गई, पर रजिस्ट्री की मुहर ने इन खातिरदारियों पर भी मानो मुहर लगा दी।''

शैली की दृष्टि से यह कहानी वर्णनात्मक या ऐतिहासिक शैली में लिखी गई है। घटनाओं का वर्णन, पात्रों का चरित्र-चित्रण सभी कुछ लेखक ने अपनी ओर से किया है। इसीलिए शैली की दृष्टि से कहानी का रूप अधिक व्याख्यात्मक हो गया है। उसमें इतिवृत्तात्मकता आ गई है, फिर भी वर्णन इतने रोचक हैं कि शैली का यह दोष अधिक नहीं खटकता है।

6. उद्देश्य—प्रेमचंदजी का सभी कथा-साहित्य सोद्देश्य है। यह केवल मनोरंजन के लिए नहीं लिखा गया, अपितु एक निश्चित विचारधारा को लेकर चला है। प्रस्तुत कहानी में भी ग्राम पंचायतों के महत्व पर प्रकाश डाला गया है- ''पंच के पद पर बैठकर न कोई किसी का दोस्त होता है, न दुश्मन। न्याय के सिवा उसे और कुछ नहीं सूझता। पंच की जबान से खुदा बोलता है।'' बस इसी मूल भावना पर सारी कहानी टिकी हुई है। कथानक और पात्रों की योजना इसी उद्देश्य को केन्द्रबिन्दु बनाकर की गयी है। घटनाओं और पात्रों का अपने में कोई महत्व नहीं है, जो कुछ महत्व है, वह इसी पंचायत के आदर्श का है, जहाँ स्वार्थी, धोखेबाज जुम्मन भी सच्चा न्याय करता है।

इस रूप में कहानी आदर्शवादी है और आदर्शवादिता का रूप लिए वह उपदेशात्मक

बन गई है। उसमें नीति और प्रचार की गंध है। लेखक का सुधारवादी दृष्टिकोण उसमें प्रखर बन गया है। फलतः कहानी-कला का सौन्दर्य अपनी पूरी सुन्दरता के साथ निखर नहीं पाया है। फिर भी उच्च आदर्श पर प्रतिष्ठित होने के कारण भाव-पक्ष की दृष्टि से कहानी बड़ी प्रेरणाप्रद है।

महत्वपूर्ण व्याख्याएँ

1. संकेत- हमारे सोये हुए धर्मज्ञान की सारी सम्पत्ति लुट जाए तो उसे खबर नहीं होती, परन्तु ललकार सुनकर वह सचेत हो जाता है। फिर उसे कोई जीत नहीं सकता। अलगू इस सवाल का कोई उत्तर न दे सका, पर उसके हृदय में शब्द गूँज रहे थे- क्या बिगाड़ के डर से ईमान की बात न कहोगे?

सन्दर्भ—प्रस्तुत अवतरण प्रेमचंदजी द्वारा लिखित 'पंच परमेश्वर' नामक कहानी से उद्धृत है।

प्रसंग—कहानी की नारी पात्रा जुम्मन की मौसी के अलगू चौधरी से यह कहने पर कि 'बेटा क्या बिगाड़ के डर से ईमान की बात न कहोगे' अलगू चौधरी यह अनुभव करने लगता है कि धर्म मित्रता से बढ़कर है। मित्रता के नाम पर वह धर्म को नहीं छोड़ सकता।

व्याख्या—लेखक कहता है कि यदि हम अपने धर्म के प्रति उदासीन रहते हैं, धर्म की बातों की चिंता नहीं करते, तो भले ही हमारा धर्म नष्ट हो जाये, उस स्थिति में धर्म नष्ट होने का ज्ञान हमको नहीं होता। हमको यह मालूम ही नहीं पड़ता कि हमारे धर्म की सम्पत्ति नष्ट हो गई है, परन्तु जब हमारे धर्म-ज्ञान को चुनौती दी जाती है, हमारे धर्म-ज्ञान पर आक्षेप किया जाता है, तब हमारा धर्म-ज्ञान सावधान हो जाता है और हम अपने धर्म के लिए सजग हो जाते हैं। हम यह सहन नहीं कर सकते कि कोई हमारे धर्म पर उँगली उठाए। फिर हमारा धर्म-ज्ञान नष्ट नहीं हो सकता। उसे कोई जीत नहीं सकता। जुम्मन की मौसी बुढ़िया खाला ने अलगू चौधरी के धर्म-ज्ञान को ललकारा था, धर्म की दुहाई दी थी। जुम्मन की मित्रता के स्थान पर अलगू ने अपने हृदय में सोये धर्म-ज्ञान को जगाया था। अलगू के हृदय में बुढ़िया के कहे हुए शब्द घर कर गए। उसने अनुभव किया कि मित्रता के लिए वह अपने धर्म को नहीं त्याग सकता। मित्रता से बड़ा धर्म है।

विशेष—(1) भारतीय समाज में धर्म का विशेष महत्व है। अलगू धर्म-भावना पर संदेह देखकर इसी कारण बदल गया है। (2) भाषा संस्कृत के तत्सम शब्दों में सुशोभित सरल, सुबोध, खड़ी बोली है। शैली विचारात्मक है।

2. संकेत- अपने उत्तरदायित्व का ज्ञान बहुधा हमारे संकुचित व्यवहारों का सुधारक होता है। जब हम राह भूलकर भटकने लगते हैं, तब यही ज्ञान हमारा विश्वसनीय पथ-प्रदर्शक बन जाता है।

संदर्भ—पूर्ववत्।

प्रसंग—इन पंक्तियों में लेखक ने बताया है कि मनुष्य के जीवन में उत्तरदायित्व का कितना महत्व है।

व्याख्या—लेखक कहता है कि मनुष्य को जब अपने उत्तरदायित्व का ज्ञान हो जाता है तो उसका अनुदार हृदय भी बड़ा उदार हो जाता है। उसे फिर अपना उचित कर्तव्य दिखाई देने लगता है। वह उसे उचित-अनुचित का ज्ञान कराता है। जब मनुष्य अपने मार्ग से भटकने लगता है तब यह उत्तरदायित्व का ज्ञान ही उसे ऐसे पथ-प्रदर्शक की भाँति सच्ची राह बताता है, जिस पर विश्वास किया जा सके। ❑

4 पुरस्कार
(जयशंकर प्रसाद)

प्रश्न 11. कहानीकार जयशंकर प्रसाद की कहानीकला की विशेषताएँ लिखिए।

अथवा

जयशंकर प्रसाद के कथाशिल्प से सम्बन्ध विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

उत्तर— जयशंकर प्रसादजी कहानीकार के रूप में भी जाने जाते है। समाज को बदलने के एक बड़े उद्देश्य को लेकर चलने वाले प्रसादजी अपनी सभी कहानियों में जीवन की वास्तविकता को पूरी तरह प्रस्तुत करते हैं। 'आकाशदीप' उनकी प्रसिद्ध कहानी है। यह मध्यकालीन भारतीय संस्कृति और उसके प्रभाव की गौरवगाथा है। प्रेमचन्दजी की कहानी कला से सम्बद्ध विशेषताएँ पर निम्न बिन्दुओं में प्रकाश डाला जा सकता है—

1. कथानक या कथा-वस्तु—प्रसादजी की कथाओं की कथा-वस्तु की सर्वप्रथम विशेषता सौंदर्य का प्रस्तुतीकरण है। कहानियों ने कथानक भारतीय संस्कृति में से बसे हैं। कथानक सामाजिक प्रकार के हैं। इन्हें पढ़ने पर पाठक स्वयं को एक पात्र समझने लगता है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं, कि प्रसादजी की कहानियों के पात्र हम सबके बीच में होते हैं। इनकी कहानी या कथानक पाठक को तल्लीन करता हुआ घटनाक्रम की ओर अग्रसर होता है।

संक्षेप में, कह सकते हैं कि प्रसादजी की सभी कहानियों के कथानक सुगठित और कहानी को स्थापित करने वाले होते हैं।

2. पात्र और चरित्र-चित्रण—प्रसादजी की कहानियों के पात्र मध्यमवर्गीय समाज के पात्र हैं। इनके सभी पात्र किसी न किसी समस्या को प्रस्तुत करते हैं। पात्रों की प्रमुख समस्याएँ समाज से जुड़ी हुई होती हैं। जिनका समाधान भी साथ-साथ होता जाता है। पात्र संख्या कम ही मिलती है और पात्र संघर्ष में ही उलझा रहता है। यह सत्य है कि वह पात्र समाज के समक्ष कुछ संदेश अवश्य छोड़ता है। आकाशदीप कहानी में नायक बुधगुप्त, नायिका चम्पा, पोतनायक मणिभद्र आदि कुछ पात्र ही अपना स्थान बना सके हैं।

सारांश रूप में, कह सकते हैं कि पात्र और चरित्र-चित्रण की दृष्टि से प्रसाद जी की कहानियाँ श्रेष्ठ बन पड़ी हैं।

3. देशकाल और वातावरण—प्रसादजी की कहानियों का संसार देशकाल और वातावरण की दृष्टि से सुगठित है। उनकी कहानियों की कथा-वस्तु देशकाल व वातावरण के अनुसार ही चुनी-बुनी गई है। जिस काल और स्थान की कथा-वस्तु है उसके अनुसार ही उसमें वातावरण की योजना बनाई गई है और इसके अनुसार ही कथा का एक-एक सूत्र निकलकर पाठक के हृदय को प्रभावित करने लगती है। इसी प्रकार से प्रसादजी की सभी कहानियाँ सफल हो सकी हैं।

4. संवाद या कथोपकथन—प्रसादजी की कहानियों के संवाद अत्यधिक रोचक, सरस और भावुक हैं। इन्हीं के कारण देशकाल और वातावरण भी अधिक प्रभावपूर्ण बन सका है। आपकी कहानियों के संवाद के स्वरूप कहानी के सभी प्रकार के पात्रों की मानसिकता अभिव्यक्ति को प्रस्तुत करने में समर्थ होते हैं। परिणामस्वरूप देशी-विदेशी, परिमार्जित, प्रशिक्षित, सुगठित, छोटे-बड़े सभी प्रकार की भाषा व बोली के सुंदर संवाद हैं। इस प्रकार से प्रसादजी की कहानियों के कथोपकथन प्रसंगों के अनुरूप हैं और इसी कारण इनकी कहानियाँ लोकप्रिय बन सकी हैं।

5. भाषा-शैली—भाषा-शैली की दृष्टि से प्रसादजी समकालीन कहानीकारों से अधिक, सफल, निपुण, प्रौढ़ और विशेषज्ञ दृष्टिगोचर होते हैं। इसका प्रमुख कारण आपकी कहानियों में तत्सम, तद्भव, देशज, अंग्रेजी, अरबी, फारसी, उर्दू आदि के साथ-साथ विविध प्रकार के मुहावरों, कहावतों आदि का भी प्रयोग दिखाई देता है। आपकी कहानियों में सुंदर साहित्यिक भाषा से अलंकृत इस प्रकार के वाक्य दिखाई देते हैं कि अन्य साहित्यकार भी दाँतों तले उँगली दबा लें। भाषा का प्रयोग इतना सरल है कि सभी पाठकों की समझ में आ जाता है। भाषा प्रयोग की दृष्टि से प्रसादजी सफल कहे जा सकते हैं।

प्रसादजी की शैलियों में प्रयोग शैली निम्नलिखित है—

1. विचारात्मक शैली—आपकी कहानियों में मानसिक भावों के अन्तर्द्वन्द को प्रकट करने के लिए प्रसादजी ने अपनी कहानियों में इस शैली का प्रयोग किया है।

2. मनोवैज्ञानिक शैली—कहानी के पात्रों के चरित्र-चित्रण को प्रकट करने के लिए इस शैली का सुंदर और कलात्मक प्रयोग किया गया है।

3. संवाद शैली—विभिन्न कहानियों में संवाद शैली भी प्रयुक्त की गई है। इससे कहानी रोचक और आकर्षक बन गई है और कहानी में नाटकीयता का गुण भी आ गया है।

4. वर्णनात्मक शैली—प्रसादजी की सभी कहानियों में इस शैली के दर्शन होते हैं। इसके प्रयोग से कहानी सुदृढ़ हो जाती है।

उद्देश्य—प्रसादजी ने कहानियों को केवल मनोरंजन के लिए नहीं लिखा है, बल्कि इनका कुछ-न-कुछ उद्देश्य अवश्य होता है। आपने अपनी कहानियों में इस मिथ्या जगत् की कमजोरियों और आदर्शों को प्रकट करने वालों को बुराई त्यागने का संदेश प्रदान किया है और प्रेरणात्मक शिक्षा दी है। आपके कथा-साहित्य का उद्देश्य राष्ट्र उत्थान, समाज सुधार और समन्वयवाद से कहीं ऊपर उठकर इस जगत् में मानवतावाद की स्थापना करने का उद्देश्य रहा है। जिस प्रकार प्रस्तुत कहानी आकाशदीप का उद्देश्य व्यक्तिगत प्रेम पितृ-प्रेम की विजय को दर्शाना है।

महत्व—जयशंकर प्रसाद हिन्दी साहित्य जगत् में कवि के रूप में जिस प्रकार स्थापित हैं उसी प्रकार हिन्दी कथा साहित्य में भी उनका महत्वपूर्ण स्थान और महत्व है। कथा तत्व को सही रूप में और नियमों के अनुसार प्रस्तुत करने वालों में प्रसादजी का स्थान सर्वोच्च है। ❑

प्रश्न 12. 'पुरस्कार' नामक कहानी का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

अथवा

जयशंकर प्रसाद की 'पुरस्कार' कहानी ''ऐतिहासिक धरातल पर निर्मित एक हृदयस्पर्शी एवं मार्मिक कहानी है।''-इस कथन की विवेचना कीजिए।

अथवा

'पुरस्कार' कहानी प्रेम और कर्त्तव्य के संघर्ष का अनूठा उदाहरण है।'' इस कथन से आप कहाँ तक सहमत है?

उत्तर- जयशंकर प्रसाद की 'पुरस्कार' कहानी ऐतिहासिक धरातल पर निर्मित एक हृदयस्पर्शी एवं मार्मिक कहानी है। 'पुरस्कार' एक चरित्र प्रधान कहानी है। मगध का राजकुमार अरुण कौशल के परम्परागत उत्सव के समय मधूलिका की सरल चितवन और उनके सौन्दर्य को देखकर मुग्ध हो जाता है। वह उसके खेत पर पहुँचता है—और प्रणय-याचना करता है। मधूलिका उसके प्रस्ताव को ठुकरा देती है। तीन वर्ष तक मधूलिका विपत्तियों से जूझती रहती है। एक बरसाती रात में अभावों के बीच उसे अरूण की याद आ जाती है।

सहसा अरुण विद्रोही राजकुमार के रूप में उसके समक्ष उपस्थित होता है। मधूलिका का स्वप्न साकार हो उठता है। राजकुमार के अनुरोध पर मधूलिका दक्षिणी नाले के निकट की भूमि प्राप्त करने में सफल हो जाती है। राजकुमार यहीं से कौशल पर आक्रमण करने की तैयारी करता है। अरुण पर मधूलिका को कौशल की राजरानी बनाने का काल्पनिक मद सवार है। एक ओर अरुण का प्रेम और राजरानी बनने की कल्पना, दूसरी ओर पिता का ध्यान जो जीवन पर्यन्त कौशल के रक्षक और सेवक रहे। उसे अपने कर्त्तव्य का बोध होता है। वह चुपचाप महाराज को अपने प्रेमी के षड़यन्त्र की सूचना देती है। प्रेम और कर्त्तव्य के द्वन्द्व में कर्त्तव्य की विजय होती है। अरुण बन्दी बना लिया जाता है। इस तरह यह कहानी 'प्रेम और कर्त्तव्य' के संघर्ष का अनूठा उदाहरण है। प्रस्तुत कहानी 'पुरस्कार' का सारांश इस प्रकार है—

कौशल राज्य में प्रतिवर्ष कृषि का महोत्सव आयोजित किया जाता था। उस दिन कौशल राज्य के महाराज को उस दिन के लिए कृषक बनना पड़ता था। उस दिन इन्द्र देवता की पूजा बड़ी धूमधाम से की जाती थी। इस उत्सव को दूसरे राज्यों के युवक राजकुमार बड़े ही चाव से आकर देखते थे और अपना योगदान देते थे।

इस उत्सव के लिए किसी का भी खेत चुना जाता था। इस बार मधूलिका का खेत-चुना गया। मगध का राजकुमार अरुण अपने रथ पर बैठा हुआ बड़े कौतूहल से इस दृश्य को और विशेष रूप से मधूलिका को देख रहा था, जो राजा को थाल में से बीज देती जा रही थी। जब राजा खेत जोत चुके तो उन्होंने स्वर्ण मुद्राएँ नाल में रखी, पर मधूलिका ने वे सिवोधार्य कर महाराज पर न्यौछावर कर लुटा दी। राजा को थोड़ा क्रोध आया, पर मधूलिका ने नम्रता से कहा "महाराज यह मेरे पुरखों की भूमि है, इसे बेचना अपराध है।" तभी मन्त्री ने राजा से उसका परिचय कराया कि यह वाराणसी युद्ध के परमवीर सिंह मित्र की कन्या है। तब राजा ने राजकीय नियम जाने और मधूलिका का खेत राजकीय संरक्षण में चला गया। उत्सव विसर्जित हुआ और मधूलिका मधूक वृक्ष के नीचे चुपचाप बैठी थी, जो उसकी खेत की सीमा पर था।

दूसरे दिन अरूण ने प्रणय-निवेदन कर उसे भूमि लौटाने का आश्वासन दिया। पर मधूलिका ने यह कहकर उसका प्रणय, निवेदन ठुकरा दिया कि तुम राजकुमार हो और मैं एक साधारण किसान की बेटी, राजकुमार तो चला गया, पर मधूलिका भी आहत हुई। वह वहीं वृक्ष के नीचे कुटिया बनाकर रहने लगी और दूसरों के खेतों में काम करके जीवन बिताने लगी।

अचानक एक दिन घनघोर वर्षा हो रही थी। तब एक युवक आया और बोला "मुझे आश्रय चाहिए।" मधूलिका बाहर आयी। देखा-वह उसके सपनों का राजकुमार अरुण है। वह बोला—"मैं मगध का विद्रोही निष्कासित हूँ और कौशल में जीविका खोजने आया हूँ।" महत्वाकांक्षी अरुण अपने सौ सैनिकों के बल पर कौशल का दुर्ग जीतना चाहता था। मधूलिका ने अरुण की सहायता की और दुर्ग के दक्षिण की सैनिक महत्व की भूमि को प्राप्त कर अरुण ने आधी रात में हमला किया।

मधूलिका को अपने वीर पिता की याद आयी और उसने राजा को आक्रमण की पहले की सूचना दे दी। राजा ने मधूलिका से कहा कि एक बार फिर तुमने कौशल राज्य का उपकार किया है, तुम पुरस्कार पाने की अधिकारिणी हो। बाद में अरुण बन्दी बना लिया गया और उसे प्राणदण्ड दिया गया। तब मधूलिका से राजा ने पूछा-तुझे क्या पुरस्कार लेना है। तब वह पहले तो चुप रही, फिर बन्दी अरुण की ओर देखा। अरुण हँस पड़ा। जब राजा ने जिद की, तब मधूलिका ने भी पुस्कार स्वरूप प्राणदण्ड माँगा और अरुण की बगल में जा खड़ी हुई। ❑

प्रश्न 13. कहानी कला के तत्वों के आधार पर पुरस्कार कहानी की समीक्षा कीजिए।

उत्तर– कहानी में छह तत्व होते हैं। पुरस्कार कहानी इन तत्वों की कसौटी पर सफल कहानी है।

1. कथावस्तु—पुरस्कार कहानी ऐतिहासिक धरातल पर कल्पना की भीगी चादर ओढ़कर लिखी गयी है। इसका कथानक कौशल के प्रसिद्ध इन्द्रोत्सव के प्रकृति की मनोहारी पृष्ठभूमि से प्रारम्भ होता है। कृषक बाला मधूलिका प्रारम्भ से ही पाठकों पर छायी रहती है। उसकी सुन्दरता से मुगध होकर मगध का राजकुमार अरुण प्रणय-प्रस्ताव रखता है, पर मधूलिका ठुकरा देती है। बहुत दिन बाद पुनः एक आपत्ति के समय वह अरुण की सहायता तो करती है, पर पिता की देश-भक्ति को याद करके उसका हृदय परिवर्तन होता है और वह राजा को आक्रमण की खबर देकर देश की रक्षा भी करती है तथा अपने लिए, अपने प्रेम के खातिर प्रेमी के साथ मृत्युदण्ड पुरस्कार रूप में माँगती है।

2. चरित्र-चित्रण—इस कहानी में तीन प्रमुख पात्र है। वीर सिंह मित्र की कृषक-कन्या मधूलिका, मगध का राजकुमार अरुण तथा कौशल-नरेश। मधूलिका प्रणय और सौन्दर्य के साथ तेजस्विता की मूर्ति है। उसके चरित्र के द्वन्द्व, प्रेम और कर्त्तव्य के संघर्ष को भली भांति उभारा गया है। अरुण का चरित्र-चित्रण साहस, धैर्य, शौर्य, महत्वाकांक्षा और प्रेम-भावना से पूर्ण चित्रित किया गया है। कौशल नरेश प्रजावत्सल और अपने प्रण की रक्षा करने वाले हैं। वे जो स्वर्ण मुद्राएँ मधूलिका को देते है, वह उसे उन्हीं पर न्यौछावर कर अस्वीकार कर देती है। फिर भी वे केवल भृकुटि, भंग से अपना राज्योचित विरोध प्रकट करते है और बाद में यह जानकर प्रसन्न होते हैं कि वह वीर सिंहमित्र की कन्या है।

3. संवाद (कथोपकथन)—कहानी के संवाद उत्कृष्ट कोटि के है और पात्रानुकूल हैं। कहानी में संवाद का प्रमुख स्थान है। उसी से कहानी आगे बढ़ती है। पुरस्कार कहानी के संवाद पढ़कर पाठक रस-विभोर हो जाता है और आदि से अन्त तक कहानी पढ़ने का मन होता है।

4. वातावरण योजना—पुरस्कार एक ऐतिहासिक कहानी है। ऐतिहासिक कहानी में वातावरण की सृष्टि आवश्यक होती है। प्रसादजी वातावरण की सृष्टि करने में किसी चतुर चितेरे से कम नहीं है। चाहे राजप्रसाद हो या मधूलिका की झोपड़ी, चाहे उत्सव के समय प्रकृति की प्रफुल्लता हो या संकटकालीन घनघोर वर्षा की भयावहता-प्रसादजी ने बड़ी कुशलता से इन दृश्यों का निर्माण कर परिस्थिति और वातावरण का कुशल चित्रण किया है।

5. भाषा-शैली—'पुरस्कार' कहानी की भाषा-शैली संस्कृतनिष्ठ है। संस्कृतनिष्ठ शब्दों का प्रयोग हुआ है। भाषा भावों के अनुरूप है। प्रसाद के कवि हृदय का प्रभाव भाषा पर स्पष्ट दिखाई देता है। स्थान-स्थान पर काव्यात्मक व्यंजनाएँ मिलती हैं। शैली आकर्षक, प्रवाहपूर्ण और प्रभावोत्पादक है। कलात्मकता की दृष्टि से कहानी की रचना विधान सफलतापूर्वक हुआ है।

6. उद्देश्य—प्रस्तुत कहानी में प्रसादजी ने जीवन के एक महान प्रश्न को उपस्थित किया है और उसका आदर्शवादी किन्तु स्वाभाविक हल भी प्रस्तुत किया है। यह प्रश्न मधूलिका के मन में उठे प्रेम और देश-प्रेम के संघर्ष का है। एक ओर तो मधूलिका के समक्ष सुखद भविष्य का सुन्दर सपना है, दूसरी ओर उसका यही स्वप्न उसकी मातृभूमि पर संकट का कारण बनता है। इस समस्या का प्रसादजी ने उदात्त भूमि पर निराकरण प्रस्तुत कर एक महान् सन्देश देने का सफल प्रयास किया है।

प्रसादजी की कहानी कला का पूर्ण परिपाक प्रस्तुत कहानी में मिलता है इसलिए पुरस्कार उनकी श्रेष्ठ कहानियों में से एक है। ☐

प्रश्न 14. मधुलिका का चरित्र-चित्रण कीजिए। पुरस्कार की नायिका के चरित्र में निहित कर्त्तव्य एवं प्रेम के द्वन्द को स्पष्ट कीजिए।

अथवा

पुरस्कार कहानी की नायिका 'मधूलिका' की चरित्रगत विशेषताओं का उल्लेख कीजिए। अथवा

साधारण कृषक-कन्या की और राजकुमार अरूण की आसक्ति मधूलिका की किन चारित्रिक विशेषताओं के कारण हुई?

उत्तर- कौशल देश के भूतपूर्व सेनापति की कन्या का नाम मधूलिका है। वही 'पुरस्कार' कहानी की नायिका है। नारी-सुलभ लज्जा से उसका सौन्दर्य द्विगुणित हो जाता है। मगध का राजकुमार अरुण प्रथम दृष्टि से उस समय मोहित हो जाता है जब मधूलिका को उत्सव में देखा था। उसकी चारित्रिक विशेषताएँ इस प्रकार हैं-

1. सौन्दर्य और त्याग की धनी—मधूलिका अद्वितीय सुन्दरी हैं। सौन्दर्य के साथ-साथ उसमें आत्मसम्मान की भावना भी कूट-कूट कर भरी है। वह अपने पिता और पितामह की भूमि का मूल्य लेना स्वीकार नहीं करती।

2. स्वाभिमानी—स्वाभिमानी होने के कारण ही वह अरूण का प्रणय-प्रस्ताव ठुकरा देती है।

3. राजनिष्ठा और देशभक्ति—राज्य के प्रति उसके मन में सच्चा सम्मान है। अपनी भूमि पर राज्योत्सव मनाने की स्वीकृति दे देती है, साथ ही भूमि का मूल्य लेने से भी इन्कार कर देती है। वह अपने दिवंगत पिता की आत्मा को अशांत कैसे करती? देश के प्रतिनिष्ठा के कारण ही वह अरुण के कुचक्रों की सूचना सेनानायक और राजा तक पहुँचा देती है।

4. आदर्श प्रेमिका—वह सरल प्रकृति की भोली युवती है। अभावपूर्ण जीवन से तंग आकार वह राजकुमार की ओर आकर्षित होती है। यह उसकी चारित्रिक दुर्बलता का नहीं नारी स्वभाव का परिचायक है।

5. कर्त्तव्यनिष्ठ—उसका प्रेम कपट रहित और सच्चा है। प्रेम के खातिर वह अपने प्राणों की भी परवाह नहीं करती। अरूण के षड़यन्त्र का पता लगते ही वह महाराज को सूचित करती है।

6. विवेकशीलता—वह एक साध्वी और विवेकशील युवती है।

7. तर्क-वितर्क में पटु—वह तर्क, वितर्क में पटु है, देखिए—"नियमों से यदि मानव हृदय वाध्य होता तो आज मगध के राजकुमार का हृदय किसी राजकुमारी की ओर न खींचकर कृषक वाला का अपमान करने न आता।"

8. विनम्रता और प्रत्युत्पन्नमति—जब मंत्रिवर उसे राजकीय रक्षण पाने की अधिकारिणी होना घोषित करते है, तो वह नम्रता पूर्वक कहती है—"राजकीय रक्षण की अधिकारिणी तो सारी प्रजा है।"

निष्कर्ष—मधूलिका त्यागमयी, आदर्श प्रेमिका, विनम्रता की मूर्ति, स्वाभिमानिनी और विवेकशीलता युवती है। उसका जीवन देश के प्रति प्रगाढ़-स्नेह और बलिदान की कहानी है। ❑

प्रश्न 15. 'पुरस्कार' कहानी का पात्र अरूण चतुर, साहसी एवं कूटनीतिज्ञ है-इस कथन की सोदाहरण पुष्टि कीजिए।

उत्तर- मगध का राजकुमार अरूण कौशल के कृषि के उत्सव में दिखलायी देता है और

मधूलिका के सौन्दर्य से प्रभावित होकर उसके सम्मुख प्रेम का प्रस्ताव रखकर उसके हृदय में प्रेमभावना जाग्रत कर देता है। उसकी यह चतुराई राजनीति से प्रेरित है। मगध से निर्वासित होकर वह मधूलिका के पास आता है तथा जीविका खोजने का बहाना करता है। कौशल पर विजय प्राप्त करने में नारी मनोविज्ञान का लाभ उठाकर नये राज्य की स्थापना का संकल्प दोहराता है और मधूलिका को राजरानी के सिंहासन पर बैठाने का आश्वासन देता है। तुम्हारी इच्छा हो तो प्राणों से प्राण लगाकर भी कौशल के सिंहासन पर बैठा हूँ। उसकी कूटनीतिज्ञता ने मधूलिका के मन में कामना की आँधी जगा दी। फलस्वरूप उसके कथनानुसार मधूलिका महाराज से नाले के समीप की भूमि माँग लेती है। अरूण अदम्य साहसी युवक है। नये राज्य की महत्वाकांक्षा संजोये हुए मधूलिका से कहता है—"मैं अपने बाहुबल पर भरोसा करता हूँ। नये राज्य की स्थापना कर सकता हूँ—अरूण के खड्ग का आतंक देखोगी।" मुट्ठी भर सैनिकों के सहयोग से कौशल पर आक्रमण करना उसके अदम्य साहस का परिचायक है। ❑

महत्वपूर्ण व्याख्याएँ

1. संकेत- आर्द्रा नक्षत्र, आकाश में काले-काले बादलों की घुमड़, जिसमें देव-दुन्दुभी का गम्भीर घोष। प्राची के एक निरंभ्र कोने से स्वर्ण-पुरुष झाँकने लगा था- देखने लगा महाराज की सवारी। शैलमाला के अंचल में समतल उर्वरा भूमि से सोंधी बास उठ रही थी। नगर तोरण से जय-घोष हुआ, भीड़ में गजराज की चामरधारी झुण्ड उन्नत दिखाई पड़ा। वह हर्ष और उत्साह का समुद्र हिलोरें भरता हुआ आगे बढ़ने लगा।

प्रभात के हेम-किरणों से अनुरंजित नन्हीं-नन्हीं बूँदों का एक झोंका स्वर्ण-मल्लिका के समान बरस पड़ा। मंगल-सूचना से जनता ने हर्ष-ध्वनि की।

रथों, हाथियों और अश्वारोहियों की पंक्ति जम गई। दर्शकों की भीड़ भी कम न थी। गजरात बैठ गया, सीढ़ियों से महाराज उतरे। सौभाग्यवती और कुमारी सुन्दरियों के दो दल, आम्रपल्लवों से सुशोभित मंगल-कलश और फूल, कुंकुम तथा खीलों से भरे थाल लिए, मधुर गान करते हुए आगे बढ़े।

सन्दर्भ—प्रसादजी प्रस्तुत सन्दर्भ में प्रकृति को रमणीय पृष्ठभूमि में कौशल के राष्ट्रीय पर्व की तैयारी का वर्णन कर रहे हैं।

व्याख्या—आर्द्रा नक्षत्र लग गया। वर्षा-प्रारम्भ हो गई। आकाश में काले-काले बादल घुमड़कर छा गये। वे गरजते हुए ऐसे प्रतीत होते थे मानो दुन्दुभी बजा रहे हों। बादलों का गम्भीर घोष वातावरण को गुंजायमान कर रहा था। पूर्व दिशा का एक कोना बादलों से रहित था उससे निकलता हुआ सूर्य ऐसा प्रतीत होता था, मानो झरोखे से स्वर्ण-पुरुष झाँककर कौशल-नरेश की निकलती हुई उत्सव-सवारी को देख रहा हो। पर्वत-श्रेणियों के बीच में समतल उर्वरा-भूमि थी, उससे सोंधी सुगन्ध उठ रही थी।

कुछ समय के उपरान्त कौशल-नरेश की सवारी निकलना प्रारम्भ हुई। नगर के मुख्य द्वार पर जय-घोषण होने लगा। भीड़ के बीच में कौशल-नरेश की सवारी के हाथी का उन्नत चामर सुशोभित होने लगा। हर्ष-आनन्द से युक्त जन-समूह सागर की तरह हिलोरें लेता हुआ आगे को बढ़ने लगा। सूर्य की स्वर्णिम किरणों से ओस की बूँदे अत्यन्त रमणीय हो रही थीं, वे चमेली के फूलों की तरह बरस पड़ीं। जनता ने इसकी मंगल-सूचना समझकर हर्ष-ध्वनि की।

रथ, हाथी और घुड़सवारों की पंक्तियाँ चल रही थीं। साथ में दर्शकों की भी अपार भीड़, थी। कुछ आगे चलकर हाथी बैठ गया। कौशल-नरेश सीढ़ियों से नीचे उतर आये।

2. संकेत- ''जीवन से सामंजस्य बनाये रखने वाले उपकरण तो अपनी सीमा निर्धारित रखते हैं परन्तु उनकी आवश्यकता और कल्पना भावना के साथ बढ़ती-घटती रहती है।''

सन्दर्भ—मधूलिका मगध के राजकुमार अरुण के प्रणय-प्रस्ताव को ठुकरा चुकी है। राजा का प्रतिदान ठुकराकर वह दूसरों के खेतों में काम करके उदर पूर्ति करती है। कष्ट के झंझावात् उसको झकझोर देते हैं। प्रस्तुत प्रसंग में प्रसादजी उसके हृदय-द्वन्द्व का वर्णन कर रहे हैं।

व्याख्या—मधूलिका बिना असन्तोष व्यक्त किये हुए कठिन परिस्थितियों में जीवनयापन कर रही थी। शीतकाल में वस्त्राभाव और वर्षा से टपकता हुआ छाजन उसे अपनी परिस्थिति पर सोचने के लिए विवश कर देता है। उसे स्मृति आती है कि आज से तीन वर्ष पूर्व मगध का राजकुमार अरुण उससे प्रणय की भिक्षा माँगने आया था, जिसे उसने ठुकरा दिया। वह सोचती है कि यदि उसने राजकुमार का कहना मान लिया होता तो वह मगध के राजमहल में होती। उसको यह कष्ट के दिन क्यों देखने पड़ते।

सच है, मनुष्य अपनी भावना के अनुसार ही आवश्यकताएँ बढ़ाता जाता है। उसको अपनी वर्तमान स्थिति में सन्तोष नहीं होता। मधुलिका जब तब अपनी स्थिति में सन्तुष्ट रही, उसकी किसी कमी का अनुभव नहीं हुआ, किन्तु भावना में अन्तर पड़ते ही वह अरुण के राजमहल की बात सोचने लगी।

विशेष—प्रस्तुत प्रसंग में नाटकीयता है। ठीक इस समय अरुण का आना चमत्कार-पूर्ण रीति से कथावस्तु को आगे बढ़ाता है। ❑

5 वापसी
(उषा प्रियंवदा)

प्रश्न 16. उषा प्रियंवदा की कहानी-कला की विशेषताएँ बतलाइए।

उत्तर-

उषा प्रियंवदा की कहानी-कला की विशेषताएँ

परिचय—हिन्दी की महिला कहानी लेखिकाओं में उषा प्रियंवदा का शीर्ष स्थान है। आपने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से अंग्रेजी साहित्य में एम.ए. किया। इसके पश्चात् आप वहीं अंग्रेजी विभाग में अध्यापन करने लगीं। आपने अमेरिका के इंडियाना विश्वविद्यालय में आधुनिक अमेरिकी-साहित्य पर अनुसंधान कार्य किया। पत्र-पत्रिकाओं में आपकी कहानियाँ प्राय: छपती रहती हैं। आपकी प्रकाशित पुस्तकें अग्रलिखित हैं—

उपन्यास—पचपन खम्भे लाल दीवारें।

कहानी संग्रह—जिन्दगी और गुलाब का फूल (1961), एक कोई दूसरा (1966), कितना बड़ा झूठ (1972)।

कहानियों की विशेषताएँ—उषा प्रियंवदा की कहानियों की कतिपय विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

(1) आज की पीढ़ी के दूसरे अनेक कहानीकारों की भांति, उनकी भावधारा समष्टिगत-चिन्तन से व्यष्टिगत-चिन्तन की ओर मुड़ी है। आज के नारी जीवन में स्वतंत्रता की प्राप्ति के बाद जो परिवर्तन आए हैं और जिन नए मूल्यों को आत्मसात् करने और पुराने मूल्यों को

अस्वीकारने के लिए आज की नारी बिना सोचे-समझे अपनाने के लिए आकुल हो रही है, उसके क्या-क्या परिणाम हुऐ हैं, उषा प्रियंवदा की कहानियों में यह अत्यंत सूक्ष्मता के साथ मुखरित हुआ है।

(2) द्वितीय प्रकार की कहानियाँ वे हैं, जिनमें पति-पत्नी के सम्बन्धों की आधुनिक परिवर्तित संदर्भों में व्याख्या है।

(3) तृतीय ढंग की कहानियों में उन्होंने आधुनिक मध्यमवर्गीय परिवारों की क्या स्थिति है, उनकी मान्यताएँ किस सीमा तक परिवर्तित हो रही हैं और मूल्य-मर्यादा किन विषमताओं एवं विकृतियों के कारण खण्डित हो रही है और उस परिवेश में तथाकथित आधुनिक नारी अपनी उच्च शिक्षा एवं अस्तित्व रक्षा की भावना से ओत-प्रोत किस प्रकार मिसफिट है--का बड़ा ही यथार्थ एवं सजीव चित्रण किया है।

(4) चतुर्थ प्रकार की कहानियाँ वे हैं, जो उन्होंने विदेश जाने के बाद लिखी हैं, जिनमें आत्मपरक दृष्टिकोण का विकास परिलक्षित होता है।

रचनाएँ—'पैरम्बुलेट', 'जाले' (1956), ' पूर्ति', 'जिन्दगी और गुलाब का फूल' (1958), 'मोहबंध' (1959), 'छुट्टी का एक दिन','वापसी','खुले हुए दरवाजे' (1960), 'एक कोई दूसरा', 'झूठा दर्पण' (1961),'दो अंधेरे','दृष्टिकोण','कोई नहीं' (1962), 'मछलियाँ', 'बनवास' आदि उनकी चर्चित कहानियाँ है,, जो उपर्युक्त संदर्भों में देखी जा सकती है। 'वापसी' कहानी पर इन्हें नई कहानियों का सर्वश्रेष्ठ पुरस्कार मिला है।

शिल्प-विधान—उषा प्रियंवदा की कहानियों में यद्यपि आधुनिक शिल्प-विधान प्राप्त होता है पर वे कला को उतना महत्व नहीं देती, जितना जीवन के यथार्थ को। उन्होंने समकालीन युगबोध को उसकी सही परिप्रेक्ष्य में देखने की चेष्टा की है और उसके यथार्थ आयामों को सत्य अभिव्यक्ति देने में ही उनकी प्रतिबद्धता सन्निहित है। उनकी कहानियों में किसी-न-किसी रूप में कथा तत्व प्रबल है और उनमें शिल्पगत बिखराव नहीं पाया जाता। वे जीवन में विवेक को महत्व देती हैं। भावुकता उनमें अवश्य है, किन्तु साथ ही वैचारिक गरिमा, समझ और गहराई है।

उनकी कहानियों में जगह-जगह मानवीयता और करूणा के स्वर भी फूट पड़ते हैं। कलात्मक रहते हुए भी उन्होंने 'नारी के दृष्टिकोण' को अधिक महत्व दिया है। उनकी कहानियों में संवेदना की ताजगी है। उनकी भाषा वस्तुपरक है। विविधता और मार्मिकता लिए हुए भी, आर्थिक और आपसी सम्बन्धों के बीच घुटते हुए भी, उनके पात्र कोई बुनियादी सवाल नहीं उठाते।

निष्कर्ष—उषा प्रियंवदा की कहानियों का गठन चमत्कारपूर्ण नहीं , उनका अन्त भी चमत्कारपूर्ण नहीं होता, उनमें कुतुहल और उत्सुकता का उद्दीपन भी नहीं मिलता, परन्तु उनकी कहानियाँ जीवन की सहज व्याख्या प्रस्तुत कर देती हैं। वे भाषा एवं कथोपकथन—भावुकता और अलंकरण से रहित हैं। सहज और सरल भाषा में वे परिवार का यथार्थ चित्र बन जाती है। ❑

प्रश्न 17. 'वापसी' कहानी की विशेषताओं पर सोदाहरण प्रकाश डालिये।

अथवा

कहानी-कला के तत्वों के आधार पर 'वापसी' कहानी की समीक्षा कीजिए।

अथवा

संवेदना, अनुभव और शिल्प की दृष्टि से 'वापसी' कहानी का विश्लेषण कीजिए।

उत्तर– 'वापसी' नयी कहानी शिल्प की दृष्टि से एक सफल कहानी है। यह आज के यथार्थ का सजीव बिम्ब प्रस्तुत कर देती है। पुरानी शास्त्रीय कहानी की दृष्टि से इस कहानी के कथानक की गढ़न, घटनाओं की बहुलता, काव्यात्मकता, आरम्भ, विकास एवं चरम सीमा में कोई चमत्कार खोजना उचित न होगा। प्रभाव की एकता ही इस कहानी में देखी जा सकती है। इसमें परिवार के छोटे-छोटे सजीव चित्र मिलेंगे। यह चित्र एकत्र होकर आधुनिक सन्दर्भ की पीड़ा और घुटन को स्पष्ट कर देते हैं।

शहर की आधुनिकता ने जीवन के मूल्यों का विघटन कर दिया है। परस्पर के सम्बन्ध बिखर गये हैं। रूढ़ियों और परम्पराओं से मुक्ति पाने की छटपटाहट आज के मनुष्य में है। आज के संघर्ष में मनुष्य अजनबी-सा हो रहा है। उसे अकेलेपन की स्थिति व्यथित कर रही है, इसी आधुनिक बोध को 'वापसी' कहानी में व्यक्त किया गया है।

वापसी कहानी की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं–

1. **कथा-वस्तु**—कहानी की कथा-वस्तु पूर्ण पारिवारिक है। गजाधर बाबू 35 साल की रेलवे-सेवा के पश्चात् सेवा-निवृत्त हुए हैं। उन्हें रेलवे का क्वार्टर छोड़ते हुए कष्ट हो रहा है, परन्तु प्रसन्नता इस बात की है कि वह अपने परिवार के लोगों के साथ रहेंगे।

वे घर जाते हैं, परन्तु घर का वातावरण सर्वथा बदला हुआ है। घर का पूरा कार्य उनकी स्त्री करती है, जबकि बहू तथा जवान बेटी बसन्ती बैठी रहती हैं। वे इस वातावरण में अपने आपको मिला नहीं पाते। लड़की का रात में बाहर रहना अच्छा नहीं लगता। वे उससे तथा बहू से खाना एवं अन्य छोटे-मोटे कार्यों को करने के लिए कहते हैं। घर में एक विद्रोह-सा हो जाता है। परिणामस्वरूप बड़ा लड़का अपनी पत्नी के साथ अलग होना चाहता है। गजाधर बाबू नहीं समझ पाते कि किस प्रकार अपने अन्दर परिवर्तन लावें। पत्नी उन्हें किसी भी कार्य में हस्तक्षेप करने से मना करती है और वे चुप हो जाते हैं। हर कार्य पूर्ववत् होने लगता है, लेकिन इसी बीच एक बात पर जब नौकर को निकाल देते हैं, तो घर में तूफान खड़ा हो जाता है। ठीक उसी दिन इनका नियुक्ति-पत्र आया, जिसमें रामजीलाल सेठ ने चीनी मिल में काम करने को लिखा था। वे पत्नी को साथ चलने को कहते हैं, परन्तु वह तैयार नहीं होती। अन्त में गजाधर बाबू स्वयं चले जाते हैं।

कथानक का प्रारम्भ पात्र-परिचय से शुरू होकर वातावरण पर चला जाता है। आरोह की स्थिति उस समय आती है, जब वे अपने परिवार में अपने को अलग-सा पाते हैं। परिवार के लोगों के विचारों एवं कार्यों की स्वतन्त्रता उन्हें खटकती है। वे इन्हीं मानसिक संघर्षों में उलझे हुए हैं। बड़े पुत्र का अलग होने का कार्यक्रम कहानी की चरम सीमा है तथा वहीं से अवरोह की स्थिति प्रारम्भ हो जाती है। कहानी का अन्त उनके पुनः सेवाकार्य में आने पर होता है। इसे ही कहानीकार ने 'वापसी' कहा है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कथा-वस्तु में उन सभी तत्वों का समावेश है, जो एक कहानी के लिए होने चाहिए। अतः कथानक की दृष्टि से यह कहानी पूर्ण सफल हैं।

2. **पात्र तथा चरित्र-चित्रण**—गजाधर बाबू कहानी के प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त गनेशी, नरेन्द्र, बसन्ती, पत्नी एवं बहू आदि सहायक पात्र के रूप में कहानी में आये हैं। गजाधर बाबू के विचार पुराने हो गये हैं, परिणामस्वरूप वे अपने ही परिवार में अपने को नहीं मिला पाते। अपने ही मकान में वे पराये-से बन जाते हैं। उनके ही बच्चे उन्हें भय की दृष्टि से देखते हैं। अर्थात् वे समाज के परिवर्तन के समान अपने विचारों को परिवर्तित नहीं कर

पाते हैं। अत: मानसिक संघर्ष होता है तथा तनाव बढ़ता है। अन्त में वे रामजीलाल की मिल में काम करने चले जाते हैं। पूरे परिवार में प्रसन्नता की लहर दौड़ जाती है। गनेशी गजाधर बाबू का नौकर है, जिसने अपनी पत्नी के साथ बहुत दिनों तक उनकी सेवा की है। डिब्बे के विषय में पूछते समय अपने प्रेम का परिचय इस ढंग से देता है कि आँखें भर आती हैं।

"यह डिब्बा कैसा है गनेशी ?" उन्होंने पूछा। गनेशी बिस्तर बाँधता हुआ, कुछ गर्व, कुछ दुख, कुछ लज्जा से बोला, "घर-वाली ने साथ को कुछ बेसन के लड्डू रख दिये हैं। कहाँ, बाबूजी को पसन्द थे, अब वहाँ हम गरीब लोग आपकी कुछ खातिर कर पायेंगे।"

"कभी-कभी हम लोगों की भी खबर लेते रहियेगा।" गनेशी बिस्तर में रस्सी बाँधता हुआ बोला।

बसन्ती का चित्रण आधुनिक कॉलेज-छात्रा के रूप में कहानीकार ने किया है। वह पढ़ने में कम, सिनेमा एवं लड़कों से बातें करने में ज्यादा आनन्द लिया करती है। बहू का चित्रण भी आधुनिक बहू के रूप में किया गया है। काम में कम, परन्तु पति एवं उनके दोस्तों के साथ बैठकबाजी करने में ज्यादा आनन्द लेती है। भोजन पकाना शान के विरुद्ध समझती है। एक दिन भोजन पकाने की बात में अपने पति के साथ अलग रहने की धारणा बना ली थी। अमर की माँ का चित्रण एक ऐसी माँ के रूप में किया गया है, जो सब कुछ जानते-बूझते हुए भी अपने को सँभाले है। यद्यपि आधुनिक सभ्यता का यह विरोध करने वाली हैं, परन्तु जानती है कि उसका वश नहीं चल सकता। अत: मौन को स्वीकार कर लिया है। इस प्रकार आधुनिक आचार-विचार को यदि न अपना सकी तो उनकी अवहेलना की शक्ति भी उसमें न थी।

इस प्रकार पात्र तथा चरित्र-चित्रण की दृष्टि से यह कहानी पूर्ण सफल है।

3. कथोपकथन—प्रस्तुत कहानी के कथोपकथन पात्रों के मानसिक तनावों को स्पष्ट करते हैं। कथोपकथन संक्षिप्त एवं मार्मिक हैं। गजाधर बाबू के जाने के समय का वार्तालाप उदाहरणस्वरूप लिया जा सकता है—

"यह डिब्बा कैसा है गनेशी ?" उन्होंने पूछा।

गनेशी बिस्तर बाँधता हुआ, कुछ गर्व, कुछ दु:ख, कुछ लज्जा से बोला, "घरवाली ने साथ को कुछ बेसन के लड्डू रख दिए हैं। कहा—बाबूजी को पसन्द थे, अब कहाँ हम गरीब लोग आपकी कुछ खातिर कर पायेंगे।"

घर से जाने की खुशी में गजाधर बाबू ने एक विषाद का अनुभव किया, जैसे एक परिचित, स्नेह, आदरमय, सहज संसार से उसका नाता टूट रहा था।

"कभी-कभी हम लोगों की खबर लेते रहियेगा।" गनेशी बिस्तर में रस्सी बाँधता हुआ बोला।

"कभी कुछ जरूरत हो तो लिखना गनेशी ! इस अगहन तक बिटिया की शादी कर दो।"

गनेशी ने अँगोछे से आँखें पोंछीं, "अब आप लोग सहारा न दोगे, तो कौन देगा ! आप यहाँ रहते तो शादी में कुछ हौसला रहता।"

पति-पत्नी के बीच का वार्तालाप तनावपूर्ण स्थिति को प्रकट करता है—

वह (पत्नी) कह रही थी, 'सारा दिन इसी खिच-खिच में निकल जाता है। इस गृहस्थी का धन्धा पीटते-पीटते उमर बीत गई। कोई जरा हाथ भी नहीं बँटाता।"

"बहू क्या किया करती है ?" गजाधर बाबू ने पूछा।

"पड़ी रहती है। बसन्ती को तो, फिर कहो कि कॉलेज जाना होता है।"

गजाधर बाबू ने जोश में आकर बसन्ती को आवाज दी। बसन्ती भाभी के कमरे से

निकली तो गजाधर बाबू ने कहा—"बसन्ती आज से शाम का खाना बनाने की जिम्मेदारी तुम पर है। सुबह का भोजन तुम्हारी भाभी बनायेगी।"

बसन्ती मुँह लटकाकर बोली, "बाबू पढ़ना भी तो होता है।"

गजाधर बाबू ने प्यार से समझाया, "तुम सुबह पढ़ लिया करो। तुम्हारी माँ बूढ़ी हुई, उसके शरीर में अब वह शक्ति नहीं बची है, तुम हो, तुम्हारी भाभी है, दोनों को मिलकर काम में हाथ बँटाना चाहिए।"

4. भाषा-शैली—कहानी की भाषा अत्यन्त सरल खड़ी बोली है। तत्सम, तद्भव, देशज, अंग्रेजी, उर्दू के शब्द हैं। प्रसंग के अनुसार कहीं वह ओजस्वी तो कहीं निराशा का स्वर लेकर चलती है। भाषा में प्रसंगानुकूल व्यंग्य एवं आक्रोश है। वह प्रवाहमयी एवं सशक्त है। उसकी शैलियों में विवरणात्मक, भावात्मक, चित्रात्मक और व्यंग्यात्मक प्रमुख रूप में परिलक्षित होती है।

5. उद्देश्य—कहानी का मूल उद्देश्य दो पीढ़ियों के अन्तर का वैमनस्य है इसके साथ ही मनुष्य की भावनाओं का आकलन है जो व्यक्ति मुखिया है बूढ़ा हो जाने पर वह ही सबसे बेकार एवं सार हीन हो जाता है। कहानी के उद्देश्य में यह भी है कि परिस्थिति के अनुकूल व्यक्ति को कार्य करना चाहिये।

6. मनोरंजकता एवं समस्यायें—भाषा, संवाद, कथानक एवं वातावरण की दृष्टि से कहानी अत्यन्त रोचक है। उसकी भाषा में प्रवाह एवं कहानी में दम है, उसमें यथार्थ का चित्रण है एवं वातावरण का निर्वाह अत्यन्त कौशल से किया है। हर घटना एवं वस्तु स्पष्ट चल-चित्र की भाँति दिखाई पड़ती है। समस्याओं में दो पीढ़ियों के अन्तर एवं तज्जनित समस्याओं का आकलन किया गया है। साथ ही नई पीढ़ी की उद्दण्डता एवं अनुशासनहीनता की समस्या को उभारा गया है तथा वृद्ध व्यक्ति किस भाँति सम्पूर्ण परिवार की उपेक्षा का शिकार होता है इसको भी प्रकट किया गया है।

वातावरण का निर्वाह अत्यन्त सफल है एवं कुशलतापूर्वक किया गया है। ❑

प्रश्न 18. गजाधर बाबू का चरित्र-चित्रण कीजिए।

अथवा

गजाधर बाबू की चारित्रिक विशेषताएँ बताते हुए सिद्ध कीजिए कि स्वार्थी परिवार के लिए पुरुष केवल धन कमाने की मशीन है।

उत्तर— प्रस्तुत कहानी में गजाधर बाबू कहानी के केन्द्र बिन्दु हैं। वे रिटायर होकर अपने घर पहुँचते हैं और परिवार के स्वार्थ के कारण ही उनकी वापसी होती है। उनके चरित्र की विशेषताएँ निम्न हैं—

(1) **कर्त्तव्य-परायण**—गजाधर बाबू कर्त्तव्यपरायण व्यक्ति हैं। वे रेलवे में नौकरी करते हैं। वे अपनी नौकरी के उत्तरदायित्व को भी सफलतापूर्वक निभाते हैं और परिवार के प्रति उत्तरदायित्व को भी। वे स्वयं अकेले रहकर अपने परिवार को शहर में रखते हैं, जिससे कि उनके बच्चे उच्च शिक्षा पा सकें।

(2) **सीमित परिवार**—गजाधर बाबू का परिवार छोटा ही है। पत्नी के अतिरिक्त उनकी चार संतानें हैं। दो लड़के अमर और नरेन्द्र तथा दो लड़कियाँ कांति और बसंती।

(3) **स्नेहशील**—गजाधर बाबू बड़े स्नेहशील व्यक्ति हैं। वे अपनी पत्नी और बच्चों से प्यार करते हैं। जब भी पत्नी और बच्चों को उनके साथ रहने का अवसर मिल जाता था

तो वे बच्चों को खूब प्यार करते थे और पत्नी से भी [illegible] थे। पत्नी भी [illegible]
के साथ उनका स्वागत करती थी।

गजाधर बाबू की स्नेहशीलता इतनी बढ़ी हुई थी कि उनका नौकर गनेशी भी उन्हें [illegible]
करता है। गनेशी की घरवाली भी उनके प्रति बहुत आदर का भाव रखती है और रिटायर होने
अपने शहर जाते समय वह बेसन के लड्डूओं का डिब्बा भी रख देती है।

(4) संयुक्त परिवार के इच्छुक—गजाधर बाबू परिवार के साथ रहने की लालसा
रहते हैं। रिटायर होते ही वे घर पहुँचते हैं। उस समय घर के लोग नाश्ता कर रहे होते हैं।
और खुशी से कहकहे लगा रहे होते हैं। इस दृश्य को देखकर वे भी प्रसन्न हो जाते हैं।
परिवार की खुशी में ही वे अपनी खुशी मानते हैं।

(5) स्नेहाकांक्षी—गजाधर बाबू जिस तरह अपने परिवार से स्नेह करते हैं वैसा
स्नेह वे परिवार से अपने लिए भी चाहते हैं, लेकिन स्नेह के बदले उन्हें घोर उपेक्षा
उदासीनता मिलती है। साथ ही नौकर के निकालने पर उनकी पत्नी और बच्चों के मध्य
व्यंग्य भरा वार्तालाप होता है, उससे उनका दिल टूट जाता है। संक्षेप में, उन्हें परिवार से
के बदले घोर उपेक्षा मिलती है।

(6) अधिकार की भावना—गजाधर बाबू में अधिकार भावना भी है। वे बसंती को
शीला के घर जाने से रोक देते हैं। वे सुबह का खाना अमर की पत्नी को बनाने को कहते
हैं और शाम का खाना बनाने की जिम्मेदारी बसन्ती पर डालते हैं। बसन्ती अपनी पढ़ाई के
बहाना बनाकर उनकी आज्ञा का विरोध भी करती हैं, लेकिन वे नहीं मानते। वे अपने को घर
का स्वामी मानते हैं, जबकि परिवार का कोई सदस्य उन्हें स्वामी तो क्या, घर में देखना भी
पसंद नहीं करता।

इस प्रकार गजाधर बाबू के चरित्र में अनेक विशेषताएँ हैं। वे एक स्नेहशील और
समझदार व्यक्ति हैं। परिवारजनों के घोर स्वार्थ के कारण वे वापिस चले जाते हैं, लेकिन
किसी से शिकायत नहीं करते। इस प्रकार लेखिका ने उनका चरित्र उच्चकोटि का चित्रित
किया है। ❑

प्रश्न 19. 'वापसी' जीवन मूल्यों के बदलाव की कहानी है। स्पष्ट कीजिए।

अथवा

'वापसी' कहानी की संक्षिप्त समीक्षा करते हुए स्पष्ट कीजिए कि इसमें आधुनिक बोध स्पष्ट हुआ है।

उत्तर— **बदलाव की कहानी**—'वापसी' नई कहानी शिल्प की दृष्टि से एक सफल कहानी है। यह आज के यथार्थ का सजीव बिम्ब कर देती है। पुरानी शास्त्रीय कहानी की दृष्टि से इस कहानी के कथानक के गठन, घटनाओं की बहुलता, काव्यात्मकता, आरंभ, विकास एवं चरम सीमा में कोई चमत्कार होना उचित न होगा। प्रभाव की एकता ही इस कहानी में देखी जा सकती है। इसमें परिवार के छोटे-छोटे सजीव चित्र मिलेंगे। यह चित्र एकत्र होकर आधुनिक संदर्भ की पीड़ा और घुटन को स्पष्ट कर देते हैं।

आधुनिकता का जीवन पर प्रभाव—शहर की आधुनिकता ने जीवन के मूल्यों का विघटन कर दिया है। परस्पर के सम्बन्ध बिखर गए हैं, रूढ़ियों और परम्पराओं से मुक्ति पाने की छटपटाहट आज के मनुष्य में है। आज के संघर्ष में मनुष्य अजनबी-सा हो रहा है। उसे अकेलेपन की स्थिति व्यथित कर रही है। इसी आधुनिक बोध को 'वापसी' कहानी में व्यक्त किया गया है।

गजाधर बाबू की व्यथा—रिटायर्ड गजाधर बाबू अकेलेपन की व्यथा से ग्रस्त हैं। वर्षों तक परिवार से अलग रहने वाले गजाधर बाबू परिवार के साथ रहने के लिए लौट आते हैं, परन्तु बदले हुए नए परिवेश में अपने को असंगत पाते हैं। यहाँ एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में बदले सम्बन्धों की कहानी-लेखिका ने सच्चाई से व्यक्त की है। वर्षों के पश्चात् घर में प्रवेश करते ही गजाधर बाबू को अपने बदला वातावरण मिलता है। नरेन्द्र उल्लासित होकर नीचे खेल में लगा है। बसन्ती हँसती हुई इठला रही है। बहू बिना घूँघट के उन्मुक्त विचरण कर रही है। इस नए वातावरण को देखकर गजाधर बाबू सकपका जाते हैं। पत्नी में भी उनको अपनी व्यथा और झुँझलाहट दिखाई पड़ती है। उनको घर में कहीं भी अपना अधिकार नहीं दिखाई पड़ता। बहू उनका लिहाज किए बिना सिनेमा जाने का प्रस्ताव करती है, बसंती उछलती-फिरती है। पत्नी उनसे कमरे से चारपाई निकालने को कहती है। इन समस्त दृश्यों में मुख्य संवेदना ध्वनित हो उठती है।

गजाधर बाबू की उपेक्षा—इस कहानी की प्रमुख विशेषता यह है कि लेखिका अपनी ओर से कुछ कहकर तटस्थ भाव से गतिशील जीवन के दृश्य उपस्थित कर देती है। वापसी पर गजाधर बाबू को घर में आत्मीयता का कोई भाव नहीं मिलता। उनके असंगत होने का भाव चारपाई के सहज प्रतीक द्वारा व्यंजित किया गया है। बैठक में कुर्सियों के बीच पड़ी पतली-सी चारपाई घर में गजाधर बाबू की स्थिति का बोध कराती है। कमरे में स्थान कम होने से जिस प्रकार चारपाई निकाल दी जाती है, उसी प्रकार अपने घर में गजाधर बाबू भी उपेक्षित हो रहे हैं।

निष्कर्ष—'वापसी' कहानी की कथा में भावुकता, अलंकरण और चमत्कार नहीं है। इसमें बड़ी सहजता से आधुनिक बोध के अन्तर्गत परिवार के माध्यम से जीवन के अकेलेपन की पीड़ा को व्यंजित किया गया है। **धनंजय वर्मा**—ने सच ही कहा है—

''यह एक व्यक्ति की अपने ही द्वारा निर्मित अपने परिवार से वापसी की कहानी न होकर सारे पुराने मूल्यों से वापसी और एक नई दिशा में चलने की कहानी है।'' ❑

महत्वपूर्ण व्याख्याएँ

1. संकेत- ''गजाधर बाबू उस कमरे में पड़े-पड़े कभी-कभी अनायास ही इस अस्थायित्व को अनुभव करने लगते हैं। उन्हें याद हो आती है उन रेल-गाड़ियों की, जो आती और थोड़ी देर रुककर किसी और लक्ष्य की ओर चली जाती।''

संदर्भ—उपर्युक्त पंक्तियाँ सुविख्यात कथा-लेखिका उषा प्रियंवदा की बहुचर्चित कहानी 'वापसी' से अवतरित की गई हैं। प्रस्तुत कहानी में आधुनिक युग में हो रहे पारिवारिक विघटन और व्यक्ति की टूटन को मौलिक दृष्टिकोण से अंकित किया गया है—

व्याख्या—गजाधर बाबू अपनी रेलवे की सर्विस से रिटायर होकर बड़े आरमानों के साथ घर आते हैं, क्योंकि उन्होंने परिवार की सुख-सुविधा के लिए पूरे जीवन भर अपने को इधर-उधर भटकाए रखा, किन्तु अपने खून-पसीने से परिवार की बेल को सींचते रहे। आज जब उसी का फल चखने के लिए आए तो कड़वाहट से उनका रोम-रोम उन पर थू-थू करने लगा।

उन्हें बैठक में जैसे-तैसे जगह बनाकर डाली गई चारपाई पर पड़े-पड़े यह अहसास होता है कि वे इस घर के मुखिया नहीं है जिन्होंने ईंट-ईंट जोड़कर इसे खड़ा किया है, वरन् दो-चार दिन के मेहमान हैं, जिन्हें इस घर में सदैव के लिए रहना नहीं, वापस कहीं और चले जाना है।

तो वे बच्चों को खूब प्यार करते थे और पत्नी से भी हँसी-मजाक करते थे। पत्नी भी मुस्कान के साथ उनका स्वागत करती थी।

गजाधर बाबू की स्नेहशीलता इतनी बढ़ी हुई थी कि उनका नौकर गनेशी भी उन्हें प्रेम करता है। गनेशी की घरवाली भी उनके प्रति बहुत आदर का भाव रखती है और रिटायर होकर अपने शहर जाते समय वह बेसन के लड्डूओं का डिब्बा भी रख देती है।

(4) संयुक्त परिवार के इच्छुक—गजाधर बाबू परिवार के साथ रहने को लालायित रहते हैं। रिटायर होते ही वे घर पहुँचते हैं। उस समय घर के लोग नाश्ता कर रहे होते हैं और खुशी से कहकहे लगा रहे होते हैं। इस दृश्य को देखकर वे भी प्रसन्न हो जाते हैं। परिवार की खुशी में ही वे अपनी खुशी मानते हैं।

(5) स्नेहाकांक्षी—गजाधर बाबू जिस तरह अपने परिवार से स्नेह करते हैं वैसा ही स्नेह वे परिवार से अपने लिए भी चाहते हैं, लेकिन स्नेह के बदले उन्हें घोर उपेक्षा और उदासीनता मिलती है। साथ ही नौकर के निकालने पर उनकी पत्नी और बच्चों के मध्य जो व्यंग्य भरा वार्तालाप होता है, उससे उनका दिल टूट जाता है। संक्षेप में, उन्हें परिवार से स्नेह के बदले घोर उपेक्षा मिलती है।

(6) अधिकार की भावना—गजाधर बाबू में अधिकार भावना भी है। वे बसंती को शीला के घर जाने से रोक देते हैं। वे सुबह का खाना अमर की पत्नी को बनाने को कहते हैं और शाम का खाना बनाने की जिम्मेदारी बसन्ती पर डालते हैं। बसन्ती अपनी पढ़ाई का बहाना बनाकर उनकी आज्ञा का विरोध भी करती हैं, लेकिन वे नहीं मानते। वे अपने को घर का स्वामी मानते हैं, जबकि परिवार का कोई सदस्य उन्हें स्वामी तो क्या, घर में देखना भी पसंद नहीं करता।

इस प्रकार गजाधर बाबू के चरित्र में अनेक विशेषताएँ हैं। वे एक स्नेहशील और समझदार व्यक्ति हैं। परिवारजनों के घोर स्वार्थ के कारण वे वापिस चले जाते हैं, लेकिन किसी से शिकायत नहीं करते। इस प्रकार लेखिका ने उनका चरित्र उच्चकोटि का चित्रित किया है। ❑

प्रश्न 19. 'वापसी' जीवन मूल्यों के बदलाव की कहानी है। स्पष्ट कीजिए।

अथवा

'वापसी' कहानी की संक्षिप्त समीक्षा करते हुए स्पष्ट कीजिए कि इसमें आधुनिक बोध स्पष्ट हुआ है।

उत्तर— **बदलाव की कहानी**—'वापसी' नई कहानी शिल्प की दृष्टि से एक सफल कहानी है। यह आज के यथार्थ का सजीव बिम्ब कर देती है। पुरानी शास्त्रीय कहानी की दृष्टि से इस कहानी के कथानक के गठन, घटनाओं की बहुलता, काव्यात्मकता, आरंभ, विकास एवं चरम सीमा में कोई चमत्कार होना उचित न होगा। प्रभाव की एकता ही इस कहानी में देखी जा सकती है। इसमें परिवार के छोटे-छोटे सजीव चित्र मिलेंगे। यह चित्र एकत्र होकर आधुनिक संदर्भ की पीड़ा और घुटन को स्पष्ट कर देते हैं।

आधुनिकता का जीवन पर प्रभाव—शहर की आधुनिकता ने जीवन के मूल्यों का विघटन कर दिया है। परस्पर के सम्बन्ध बिखर गए हैं, रूढ़ियों और परम्पराओं से मुक्ति पाने की छटपटाहट आज के मनुष्य में है। आज के संघर्ष में मनुष्य अजनबी-सा हो रहा है। उसे अकेलेपन की स्थिति व्यथित कर रही है। इसी आधुनिक बोध को 'वापसी' कहानी में व्यक्त किया गया है।

गजाधर बाबू की व्यथा—रिटायर्ड गजाधर बाबू अकेलेपन की व्यथा से ग्रस्त हैं। वर्षों तक परिवार से अलग रहने वाले गजाधर बाबू परिवार के साथ रहने के लिए लौट आते हैं, परन्तु बदले हुए नए परिवेश में अपने को असंगत पाते हैं। यहाँ एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में बदले सम्बन्धों की कहानी-लेखिका ने सच्चाई से व्यक्त की है। वर्षों के पश्चात् घर में प्रवेश करते ही गजाधर बाबू को अपने बदला वातावरण मिलता है। नरेन्द्र उल्लासित होकर नीचे खेल में लगा है। बसन्ती हँसती हुई इठला रही है। बहू बिना घूँघट के उन्मुक्त विचरण कर रही है। इस नए वातावरण को देखकर गजाधर बाबू सकपका जाते हैं। पत्नी में भी उनको अपनी व्यथा और झुँझलाहट दिखाई पड़ती है। उनको घर में कहीं भी अपना अधिकार नहीं दिखाई पड़ता। बहू उनका लिहाज किए बिना सिनेमा जाने का प्रस्ताव करती है, बसंती उछलती-फिरती है। पत्नी उनसे कमरे से चारपाई निकालने को कहती है। इन समस्त दृश्यों में मुख्य संवेदना ध्वनित हो उठती है।

गजाधर बाबू की उपेक्षा—इस कहानी की प्रमुख विशेषता यह है कि लेखिका अपनी ओर से कुछ कहकर तटस्थ भाव से गतिशील जीवन के दृश्य उपस्थित कर देती है। वापसी पर गजाधर बाबू को घर में आत्मीयता का कोई भाव नहीं मिलता। उनके असंगत होने का भाव चारपाई के सहज प्रतीक द्वारा व्यंजित किया गया है। बैठक में कुर्सियों के बीच पड़ी पतली-सी चारपाई घर में गजाधर बाबू की स्थिति का बोध कराती है। कमरे में स्थान कम होने से जिस प्रकार चारपाई निकाल दी जाती है, उसी प्रकार अपने घर में गजाधर बाबू भी उपेक्षित हो रहे हैं।

निष्कर्ष—'वापसी' कहानी की कथा में भावुकता, अलंकरण और चमत्कार नहीं है। इसमें बड़ी सहजता से आधुनिक बोध के अन्तर्गत परिवार के माध्यम से जीवन के अकेलेपन की पीड़ा को व्यंजित किया गया है। **धनंजय वर्मा**—ने सच ही कहा है—

''यह एक व्यक्ति की अपने ही द्वारा निर्मित अपने परिवार से वापसी की कहानी न होकर सारे पुराने मूल्यों से वापसी और एक नई दिशा में चलने की कहानी है।'' ❑

महत्वपूर्ण व्याख्याएँ

1. संकेत- ''गजाधर बाबू उस कमरे में पड़े-पड़े कभी-कभी अनायास ही इस अस्थायित्व को अनुभव करने लगते हैं। उन्हें याद हो आती है उन रेल-गाड़ियों की, जो आती और थोड़ी देर रुककर किसी और लक्ष्य की ओर चली जाती।''

संदर्भ—उपर्युक्त पंक्तियाँ सुविख्यात कथा-लेखिका उषा प्रियंवदा की बहुचर्चित कहानी 'वापसी' से अवतरित की गई हैं। प्रस्तुत कहानी में आधुनिक युग में हो रहे पारिवारिक विघटन और व्यक्ति की टूटन को मौलिक दृष्टिकोण से अंकित किया गया है—

व्याख्या—गजाधर बाबू अपनी रेलवे की सर्विस से रिटायर होकर बड़े आरमानों के साथ घर आते हैं, क्योंकि उन्होंने परिवार की सुख-सुविधा के लिए पूरे जीवन भर अपने को इधर-उधर भटकाए रखा, किन्तु अपने खून-पसीने से परिवार की बेल को सींचते रहे। आज जब उसी का फल चखने के लिए आए तो कड़वाहट से उनका रोम-रोम उन पर थू-थू करने लगा।

उन्हें बैठक में जैसे-तैसे जगह बनाकर डाली गई चारपाई पर पड़े-पड़े यह अहसास होता है कि वे इस घर के मुखिया नहीं है जिन्होंने ईंट-ईंट जोड़कर इसे खड़ा किया है, वरन् दो-चार दिन के मेहमान हैं, जिन्हें इस घर में सदैव के लिए रहना नहीं, वापस कहीं और चले जाना है।

यह बोध उन्हें इसलिए नहीं होता कि घर में जगह की तंगी की वजह से यह व्यवस्था की गई है, यद्यपि घर में सबके लिए अपने कमरे भी थे, किन्तु वस्तुतः प्रश्न सुविधा का नहीं, इस बात का है कि अब परिवार में ही उनके लिए कोई स्थान नहीं था। हर सदस्य उनसे कटा हुआ था। यहाँ तक कि पत्नी भी बेगानों जैसा व्यवहार करती थी अर्थात् इस पारिवारिक जिन्दगी में उनका अस्तित्व अब कोई मायने नहीं रखता था।

इसीलिए इस संदर्भ में उन्हें वे रेलगाड़ियाँ याद आती हैं, जो स्टेशन पर आती हैं और कुछ देर रुककर चली जाती है। प्लेटफार्म उनका गंतव्य नहीं एक पड़ाव मात्र रहता है। इसी तरह यह परिवार जिसे वे अपना लक्ष्य मानने का भरम पाले हुए थे, वह सहज एक प्लेटफार्म निकला जो स्थायी रूप से टिकने की स्वीकृति नहीं दे सकता।

विशेष—इन पंक्तियों में लेखिका ने आधुनिक जीवन की विसंगति को स्वर दिया है, जिसमें व्यक्ति चाहे जिस मजबूरी में दूर रहे, किन्तु एक सीमा लाँघने के बाद वह उस वातावरण से, व्यक्तियों से सदैव के लिए कट-सा जाता है और वहाँ जाकर उसे कटु सत्य का बोध होता है।

2. संकेत- गजाधर बाबू ने आहत दृष्टि से पत्नी को देखा। उन्होंने अनुभव किया कि वह पत्नी और बच्चों के लिए धनोपार्जन के निमित्त मात्र हैं। जिस व्यक्ति के अस्तित्व से पत्नी माँग में सिन्दूर डालने की अधिकारी है। समाज में उसकी प्रतिष्ठा है, उसके सामने वह दो वक्त भोजन की थाली रख देने से सारे कर्तव्यों से छुट्टी पा जाती है। वह घी और चीनी के डिब्बों में इतनी रमी हुई है कि अब वही उसकी संपूर्ण दुनियाँ बन गई है। गजाधर बाबू उससे केन्द्र नहीं हो सकते।

प्रसंग—प्रस्तुत गद्यांश ऊषा प्रियंवदा की 'वापसी' शीर्षक कहानी से उद्धृत है। सेवा-निवृत्ति के अनन्तर गजाधर बाबू अपनी गृहस्थी के स्नेहिल वातावरण में जीवन के अवशेष दिन व्यतीत करने आए थे, किन्तु दुर्निवार नियतिवश परिवार की नई पीढ़ी के साथ उनका सामंजस्य न हो पाया। उनकी चारपाई तक बैठक से भण्डार गृह में डाल दी गई। जीवन अभिशापित हो गया। कभी भी पति-परायण पत्नी तक ने अब उनकी अन्तर्व्यथा को जानने का प्रयास नहीं किया। पत्नी द्वारा की गई यह उपेक्षा उन्हें सर्वाधिक सालने लगी। इन पंक्तियों में लेखिका ने उनकी मानोव्यथा का इस प्रकार चित्रण किया है—

व्याख्या—व्यथित हृदय गजाधर बाबू ने अत्यंत व्यथा भरे नेत्रों से अपनी पत्नी की ओर देखा जो उनकी व्यथा की ओर नितांत निरपेक्ष थी। कितनी भाव एवं स्नेह शून्य थी वह और उसके बच्चे भी। जैसे उनके प्रति उनका कोई कर्त्तव्यकर्म ही शेष न रहा हो। उन्हें अब यह स्पष्ट अनुभव हो गया कि वे केवल उनके भरण-पोषण के लिए तथा धन कमाने के ही एक मात्र साधन हैं। परिवार से उन्हें जो स्नेह और सम्मान मिलना चाहिए, उसका उनके हृदय में कोई स्थान नहीं है। बच्चे पिता के नाते और पत्नी पति के नाते उनसे आत्मीय जैसा व्यवहार नहीं करते। उन्हें गृहस्वामी नहीं स्वीकारते। उनकी भावना को अनाहत नहीं रहने देते। उनके दुःख-दर्द को जानने की भी कोशिश नहीं करते। उनका उनसे केवल अर्थ सम्बन्ध ही है, जो घोर स्वार्थ मूलक एवं घृणित है। उन्हें आश्चर्य तो अपनी पत्नी के व्यवहार से अधिक है।

प्रत्येक स्त्री पति के जीवित रहते ही अपनी माँग में सुहाग का चिन्ह सिंदूर सजाने की अधिकारिणी है। यदि पति ही न रहा तो उसकी माँग में सिंदूर सुहाग कैसा, पति से ही तो वह सधवा है। पति के कारण ही उसे सामाजिक सम्मान मिलता है। कितने दुःख का विषय है

कि उनकी पत्नी यह सब नहीं समझ पा रही। उसे उनके अस्तित्व की भी कोई चिन्ता नहीं है। कितनी ना समझ है कि पति के प्रति अपनी कर्तव्य भावना नहीं समझ पा रही। केवल दो वक्त पति के सामने भोजन की थाली रखकर ही पत्नी के कर्तव्य की इतिश्री नहीं हो जाती है। किन्तु यह तो ऐसा ही करके अपने सारे कर्तव्य कर्मों से मुक्त हो जाती है। इससे ऊपर उठकर पति की भावना को समझना, उसके दु:ख-सुख में सहभागिनी बनना भी तो पत्नी का परम पावन कर्तव्य है, किन्तु दुर्भाग्य से पत्नी यह सब नहीं समझ पा रही। वह तो घर के सामान घी, चीनी आदि के डिब्बों को ही उठाने-धरने में दिन-रात व्यस्त रहती है। इसके अतिरिक्त अन्य किसी बात की उसे चिन्ता ही नहीं है जैसे ये घरेलू सामान ही अब इसकी सारी दुनियाँ बन गए हों। क्या पति का मूल्य इन जड़ पदार्थों से भी कम है? इसके जीवन का केन्द्र मुझे होना चाहिए था, किन्तु अब यह तो मुझसे इतनी दूर भटक गई है कि अब ये अपना समग्र ध्यान मेरी ओर नहीं लगा सकती। पत्नी होकर भी अब यह मेरा सर्वाधिक ध्यान नहीं रख पाती। मुख्य कर्तव्य कर्म को भुलाकर भ्रांत हो गई है, भटक गई है, निरर्थक पदार्थों में रम गई है।

विशेष—1. गजाधर बाबू का यह चिन्तन बड़ा सारगर्भित है। इसमें पति के प्रति पत्नी के कर्तव्य कर्म की ओर इंगित किया गया है। पत्नी को बताया है कि वह पति केन्द्रित ही रहे। इसी में उसका कल्याण हैं।

2. वृद्ध नारी का चरित्रांकन है कि किस प्रकार वह नगण्य पदार्थों में रमी रहती हैं।

3. पत्नी प्रेम से प्रवंचित पति की आहत वेदना रूपायित है।

3. संकेत—''पर पत्नी, बाल बच्चों के साथ रहने की कल्पना में यह बिछोह एक दुर्बल लहर की तरह उठकर विलीन हो गया।''

प्रसंग—प्रस्तुत सूक्ति 'वापसी' कहानी से अवतरित की गई है। इसकी लेखिका ऊषा प्रियंवदा हैं। गृहस्थ जीवन के मानव की वे कल्पना का साकार चित्र हैं।

व्याख्या—मानव सदैव से अपनी गृहस्थी बनाता चला आ रहा है—उसी के साथ रहने में उसको आनन्द का अनुभव होता है। इसी प्रकार गजाधर बाबू को रेलवे क्वार्टर के पास रहने वाले व्यक्तियों, पौधों एवं मिट्टी आदि जैसी चीजों से बिछुड़ना एक दुर्बल लहर की तरह उठकर छिप गया। अर्थात् उनके प्रति मोह उमड़ा, परन्तु परिवार के प्रति अधिक आकर्षण था। इसलिए उन चीजों के मोह को त्यागते हुए उन्हें बहुत बड़े आकर्षण के मुकाबले में अधिक दु:ख नहीं हुआ।

4. संकेत—''ठीक ही है, आप बीच में न पड़ा कीजिए। बच्चे बड़े हु गए हैं, हमारा जो कर्तव्य था, कर रहे हैं। पढ़ा रहे हैं, शादी कर देंगे।

व्याख्या—प्रस्तुत गद्यांश ऊषा प्रियंवदा की 'वापसी' कहानी से उद्धृत किया गया है। गजाधर बाबू अपने परिवार में रेलवे की नौकरी की अवधि समाप्त हो जाने के पश्चात् परिवार एवं बच्चों के साथ रहने की कल्पना में आ गए हैं,परन्तु पुत्र, पुत्रवधु एवं लड़की ने उनके स्वभाव और पसंद के मुताबिक काम प्रारंभ नहीं किया है और जब कभी गजाधर बाबू हस्तक्षेप करते हैं, तो वे नाराज हो जाते हैं। यहाँ तक कि उनकी पत्नी भी उनको समझ नहीं पाई है और अन्त में पत्नी यही चाहती है कि परिवार में सुख शांति बनी रहे और कहती है जो हो रहा है, होने दीजिए। आप बीच में किसी भी काम में हस्तक्षेप न कीजिए। जो कर्तव्य था उसको पूरा कर रहे हैं—पढ़ा रहे हैं और समय आने पर शादी कर देंगे। ❑

1 हिन्दी नाटक : स्वरूप और विकास

प्रश्न 1. हिन्दी नाटक के उद्भव और विकास पर प्रकाश डालिए।

अथवा

'भारतेन्दुयुगीन हिन्दी नाटक' पर टिप्पणी लिखिए।

उत्तर–

हिन्दी नाटक का उद्भव एवं विकास

साहित्य के दृश्य और श्रव्य दो विभेद किए जाते हैं, जिनमें से दृश्य काव्य का आजकल माध्यम नाटक ही है। नाटक के उद्भव की दृष्टि से यद्यपि यह तथ्य उल्लेखनीय है कि संस्कृत के साहित्य में नाटकों की बड़ी समृद्ध परम्परा है, तथापि नाटक के अधुनाटक स्वरूप पर पाश्चात्य नाटकों का ही अधिक प्रभाव है। चौदहवीं से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी तक ब्रजभाषा में कुछ संस्कृत के नाटकों का अनुवाद किया गया तथा छुटपुट रूप में कुछ मौलिक नाटक भी लिखे गए। उदाहरण के लिए विद्यापति के रुक्मणी–हरण, कृष्ण जीवन चरित्र, प्राणचन्द का रामायण महानाटक, हृदय का हनुमन्नाटक, बनारसीदास का समयसार, निवाज का शकुन्तला तथा ब्रजभाषीदास का प्रबौध चन्द्रोम ऐसे ही नाटक हैं, जिनमें मौलिकता के साथ–साथ संस्कृत के नाटकों का प्रभाव परिलक्षित होता है। उपर्युक्त सभी नाटक पद्यबद्ध हैं।

हिन्दी गद्य में लिखा गया प्रथम नाटक कौन–सा है? यह तथ्य किंचित विवादास्पद है। कुछ विद्वान ब्रजभाषा गद्य में लिखा गया प्रथम नाटक भारतेन्दु के पिता गिरिधरदास रचित 'नहषु' नामक नाटक को मानते हैं। राजा लक्ष्मण सिंह ने कालिदास के शकुन्तला नामक नाटक का अनुवाद करते हुए उसके पद्य भाग के लिए ब्रजभाषा तथा गद्य भाग के लिए खड़ी बोली का प्रयोग किया है। कुछ विद्वान् सन् 1830 ई. में रचित महाराज विश्वनाथ सिंह के 'आनन्द-रघुनंदन' नामक नाटक को हिन्दी का प्रथम आधुनिक नाटक स्वीकार करते हैं। वास्तव में नहुष की भाँति आनन्द रघुनन्दन में भी नाटकीय तत्वों का सम्यक पुट नहीं मिलता। अधिकांश विद्वान् नाटकों के जन्मदाता भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को स्वीकार करते हैं, क्योंकि स्वयं उनके द्वारा अनुवादित और मौलिक रूप में लिखित नाटकों द्वारा ही हिन्दी के नाटक साहित्य का विकास आरम्भ होता है। विकास क्रम की दृष्टि से आधुनिक कालीन नाटक साहित्य को निम्नांकित तीन युगों में विभक्त किया जा सकता है—

1. भारतेन्दु युग, 2. प्रसाद युग, 3. प्रसादोत्तर युग।

1. भारतेन्दु युग—भारतेन्दु युगीन नाटकों के स्वरूप में भारतीय नाट्य शास्तर तथा पाश्चात्य नाटकों के स्वरूप के तत्वों का समन्वय दृष्टिगोचर होता है। एक ओर उनमें संस्कृत के नाटकों के समान नान्दी, प्रस्तावना, विदूषक, भरतवाक्य आदि की योजना की गयी है, तो दूसरी ओर अंग्रेजी और बंगला नाटकों के प्रभाव के कारण उनमें से इन तथ्यों की योजना के प्रति शिथिलता तथा अन्तर्द्वन्द के चित्रण पर अधिक बल दिये जाने की प्रवृत्ति दिखाई देती है। भारतेन्दु काल में तीन प्रकार के नाटक मिलते हैं—

(क) अनुवादित नाटक—अनुवादित नाटकों के वर्ग में बंगला और अंग्रेजी और संस्कृत के नाटकों का ही हिन्दी में रूपान्तरण आता है। पं. सत्यनारायण कविरत्न तथा भारतेन्दु जी ने संस्कृत के नाटकों का हिन्दी में अनुवाद किया। सन् 1861 में राजा लक्ष्मण सिंह द्वारा कालिदास के प्रसिद्ध नाटक, अभिज्ञान शाकुन्तलम का अनुवाद किया। अंग्रेजी नाटकों का हिन्दी में अनुवाद करने की दिशा में लाला सीताराम का नाम उल्लेखनीय है, जबकि बंगला नाटकों का अनुवाद करने की दृष्टि से रूपनारायण पांडेय का नाम उल्लेखनीय है। भारतेन्दु जी ने भी बंगला के विद्यासुन्दर नामक नाटक का हिन्दी में छायावाद प्रस्तुत किया।

(ख) पारसी कम्पनियों के लिए लिखे गए नाटक—इस वर्ग के नाटककारों में रौनक बनारसी अहसान लखनवी, विनायक प्रसाद तालिक बनारसी, नारायण प्रसाद बेताब, राधेश्याम कथावाचक तथा आगा-हश्र कश्मीरी के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इन नाटकों में साहित्यिकता के स्थान पर ऐसी सामग्री की प्रधानता रहती थी, जिससे जनता का सस्ता मनोरंजन करके पैसा बटोरा जा सके। प्रसिद्धि की दृष्टि से राधेश्याम कथावाचक का वीर अभिमन्यु तथा रौनक बनारसी का इन्साफे महमूद और गुल बकावली अपने समय के बड़े प्रसिद्ध नाटक थे।

(ग) मौलिक नाटक—मौलिक नाटक लिखने के क्षेत्र में सर्वप्रथम भारतेन्दु ही थे, जिनके सत्य हरिश्चन्द्र, नील देवी, भारत-दुर्दशा, चन्द्रावती और अंधेरी नगरी, पाखण्ड विडम्बना, वैदिकी हिंसा, हिंसा न भवति, प्रेम योगिनी आदि नाटक प्रसिद्ध हैं। अपने नाटकों के माध्यम से भारतेन्दु जी ने एक ओर जहाँ राष्ट्रवासियों को उद्‌बोधित करने की चेष्टा की है, वहीं सामाजिक कुरीतियों पर भी प्रहार किए हैं। भारतेन्दु काल में पौराणिक, ऐतिहासिक और राष्ट्रीय जागरण सम्बन्धी, सभी प्रकार के विषयों पर नाटक लिखे गए हैं—भारतेन्दु कृत नील देवी; राधाकृष्णदास कृत पद्मावती और महाराणा प्रताप; बैकुंठनाथ दुग्गल कृत श्री हर्ष; गोपालराव कृत यौवन-योगिनी आदि। राष्ट्रीय जागरण सम्बन्धी नाटकों में उल्लेखनीय हैं—भारतेन्दु कृत भारत-दुर्दशा; शरदकुमार मुखर्जी कृत भारतोद्धार; खड़ग बहादुर मल्ल कृत भारत-भारती आदि। पौराणिक नाटकों में उल्लेखनीय हैं—दामोदर सप्रेम का रामलीला; शीतल प्रसाद त्रिपाठी का रामचरितावली; अयोध्या सिंह उपाध्याय के प्रद्युम्न विजय और रुक्मणी परिणय; बद्रीनारायण चौधरी प्रेमधन का महादास आदि।

भारतेन्दु युग में अन्य अनेक नाटककार भी हुए जिनमें से विशेष उल्लेखनीय हैं—श्री बालकृष्ण भट्ट, जिनके लिखे छः नाटक मिलते हैं। 1. कविराज की सभा, 2. रेल का विकट खेल, 3. कलिराज की सभा, 4. बाल विवाह, 5. चन्द्रलेखा, 6. शर्मिष्ठा और देवयानी। भारतेन्दु युग के अन्य नाटककार और उनके नाटकों के नाम इस प्रकार हैं—श्रीनिवासदास—संयोगिता स्वयंवर, धर्मवीर, प्रेम मोहिनी, प्रहलाद चरित्र; प्रतापनारायण मिश्र—गौ संकट, हठी हमीर, कली प्रभाव, जुआरी-सुकुआरी; राधाचरण गोस्वामी—अमरसिंह राठौर, सती चन्द्रावती आदि। राधाकृष्णदास—महाराणा प्रताप, श्री दामा दुःखिनी बाला, बद्रीनारायण चौधरी प्रेमधन—प्रयाग रामागमन, भारत सौभाग्य, वीरांगना रहस्य वृद्ध विलाप आदि। इस युग के नाटक भाषा की सरलता, रोचकता और हास्य-व्यंग से ओत-प्रोत होने के कारण जन-रुचि को अपनी ओर आकृष्ट करने में सफल तो हुए किन्तु नाटक के विकास की दृष्टि से भारतेन्दु काल को उसका शैशव ही मानना चाहिए। उसका विकास तो प्रसाद काल में जाकर हुआ।

2. प्रसाद युग—प्रसाद जी बहुमुखी प्रतीभा के धनी साहित्यकार थे। जहाँ उन्हें आधुनिक युग का सर्वोत्कृष्ट कवि स्वीकार किया जाता है, वहीं उनको नाटक सम्राट भी स्वीकार किया जाता है। भारतेन्दु काल में हिन्दी नाटक का जो पादर्प (पौधा) आरोपित किया

गया, वह प्रसाद काल में जाकर ही पुष्पित एवं फलित हुआ। प्रसाद जी ने नाटकों की
वस्तु, शिल्प-विधान विषय के प्रतिपादन और भाषा के क्रान्तिकारी परिवर्तन किए। उ
नाटकों में भारतीयों की परम्परा शैली में सुखान्त नाटकों तथा पाश्चात्य के जगत दुःख
नाटकों का ऐसा गंगा-जमुना मिश्रण है कि उन्हें न तो सुखान्त कहा जा सकता है और
दुःखान्त ही, अपितु उनके नाटकों के लिए प्रसादान्त विशेषण का प्रयोग किया जाता है।

प्रसाद जी भारत के अतीत वैभव के प्रशंसक थे, अतः उन्होंने अपने नाटकों के
का चयन भी अधिकांशतया मौर्य और गुप्त काल से किया है। इसके साथ ही प्रसाद जी मूलतः
कवि थे, अतः उनके नाटकों में जहाँ गीतों का बाहुल्य है, वहीं उनकी भाषा में भी काव्यात्मक
का पुट है। प्रसाद जी ने तेरह नाटकों की रचना की है जो वर्ण्य विषय की दृष्टि से पौराणिक
और ऐतिहासिक हैं। उनके नाम हैं—1. सज्जन, 2. कल्याणी परिणय, 3. करुणालय,
प्रायश्चित, 5. राज्यश्री, 6. विशाख, 7. अज्ञातशत्रु, 8. जनमेय का नागयज्ञ, 9. स्कंदगुप्त, 10
एक घूँट, 11. कामना, 12. चन्द्रगुप्त, 13. ध्रुव स्वामिनी। प्रसाद जी के नाटकों में से कामना
और एक घूँट एकांकी नाटक हैं। उनका चन्द्रगुप्त शीर्षक नाटक कल्याणी परिणय नाटक का
ही परिवर्तित रूप था, अतः उनके लिखे नाटकों की संख्या बारह ही स्वीकार करनी चाहिए
प्रसाद जी के नाटकों में भारतीय नाट्य-शास्त्र के सिद्धान्तों को अपनाने के स्थान पर पाश्चात्य
नाटकों के तत्वों का अधिक प्रभाव है। उनके अधिकांश नाटकों में नान्दी, प्रस्तावना, विदूषक
और भरत वाक्य की योजना नहीं मिलती। श्री हरिकृष्ण प्रेमी, सेठ गोविन्ददास, उदयशंकर
भट्ट, लक्ष्मीनारायण मिश्र और गोविन्द बल्लभ पंत आदि नाटककारों ने यद्यपि प्रसाद काल में
ही नाटक रचना आरम्भ कर दी थी, किन्तु उन्हें प्रौढ़ता प्रसाद काल के पश्चात् ही उपलब्ध
हुई। अतः उनके नाटकों का प्रसादोत्तर काल के अन्तर्गत प्रकाश डालना ही उचित है।

3. प्रसादोत्तर काल—प्रसादोत्तर काल में नाटक साहित्य का द्रुत गति से अनेक रूपों
विकास हुआ जिसे स्थूलतया तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

(क) ऐतिहासिक पौराणिक नाटक,
(ख) समस्या प्रधान और सामाजिक नाटक,
(ग) एकांकी रेडियो रूपक, काव्य रूपक आदि नई नाट्य विधाएँ।

(क) ऐतिहासिक पौराणिक नाटक—ऐतिहासिक पौराणिक नाटकों में रचयिताओं
में श्री हरिकृष्ण प्रेमी का नाम विशेष उल्लेखनीय हैं, जिन्हें प्रतिशोध, शिवा साधना, उद्धार
शपथ, स्वप्न भंग, आहुति, प्रकाश-स्तम्भ, कीर्ति-स्तम्भ आदि लगभग बीस ऐतिहासिक
पौराणिक नाटकों की रचना की है। इस वर्ग के अन्य नाटककार और उनके प्रसिद्ध नाटक
के नाम हैं—

सेठ गोविन्ददास (इन्होंने लगभग 100 नाटक लिखे हैं)—शशि गुप्त और हर्ष
उदयशंकर भट्ट—शक विजय, मुक्ति पथ, दाहर, मत्स्यगंधा, अम्बा, विश्वामित्र; वृन्दावनलाल
वर्मा—पूर्व की ओर, झांसी की रानी, ललितविक्रम, बीरबल; लक्ष्मीनारायण मिश्र—वत्सराज,
गरुड़ध्वज, विरतता की लहरें; गोविन्द बल्लभ पंत—ययाति, अंतपुर का छिद्र, वरमाल,
राजमुकुट; देवराज दिनेश—प्रतिशोध, मानव प्रताप, यशस्वी भोज; मोहन राकेश—आषाढ़ का
एक दिन, लहरों का राजहंस; चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, सद्गुरुशरण अवस्थी, पांडेय, बेचन शर्म
उग्र, रामवृक्ष बेनीपुरी, चतुरसेन शास्त्री आदि ने भी ऐतिहासिक नाटकों की रचना की है।

(ख) समस्या प्रधान तथा सामाजिक नाटक—इस श्रेणी में नाटकों में नाना प्रकार
की सामाजिक समस्याओं को उभारा गया है। कुछ ऐसे नाटक भी लिखे गये हैं, जिनमें किसी

समस्या को प्रस्तुत करना ही नाटककार का मूल्य ध्येय रहता है। इन्हें समस्या प्रधान नाटक कहते हैं और इस प्रकार के नाटककारों में लक्ष्मीनारायण विशेष प्रसिद्ध हैं। इनके प्रसिद्ध समस्या नाटकों के नाम हैं—सन्यासी, राजयोग मुक्ति का रहस्य, राक्षस का मन्दिर, गरुड़ध्वज, नारद की वीणा, आधीरात, सिन्दूर की होली।

सामाजिक नाटकों में सेठ गोविन्दास, वृन्दावनलाल वर्मा, गोविन्द बल्लभ पंत और उपेन्द्रनाथ विशेष प्रसिद्ध हैं। इनके द्वारा नाटकों के नाम हैं—सेठ गोविन्ददास कृत सेवा-पथ, सन्तोष कहाँ, दु:ख क्यों, सिद्धान्त, स्वातन्त्र्य, त्याग या ग्रहण, कुलीनता, पाकिस्तान, गरीबी अमीरी आदि; वृन्दावनलाल वर्मा कृत राखी की लाज, केवट, विस्तार, खिलौने की खोज, बांस की फाँस, नीलकण्ठ, देखा-देखी आदि; गोविन्दवल्लभ पन्त कृति अंगूर की बेटी, सिन्दूर की बिन्दी आदि; उपेन्द्रनाथ अश्क कृत स्वर्ग की झलक, छठा बेटा, कैद, उड़ान, अलग-अलग रास्ते आदि।

(ग) एकांकी, रेडियो-रूपक, काव्य-रूपक आदि—एकांकी (एक अंक का नाटक) नाटककारों में डॉ. रामकुमार वर्मा का नाम सर्वोपरि है, जिसके पृथ्वीराज की आँखें, चारुमित्रा, ऋतुराज, रेशमी टाई, ध्रुवतारिका, दीपदान आदि एकांकी संग्रह प्रसिद्ध हैं। अन्य एकांकी नाटककारों में उल्लेखनीय हैं—उपेन्द्रनाथ अश्क (तूफान से पहले, देवताओं की छाहा, चरवाहे), सेठ गोविन्ददास (नानक की नमाज, बुद्ध कि एक शिष्या, युग, स्त्री का हृदय, पर्दे के पीछे), जगदीश चन्द्र माथुर (भोर का तारा, कलिंज विजय रीढ़ की हड्डी, मकड़ी का जाला, खण्डहर, बंदी तथा घोंसले, खिड़की की राह)। अन्य एकांकीकार हैं—भुवनेश्वरप्रसाद मिश्र, भगवतीचरण वर्मा, गिरिजाकुमार माथुर, चन्द्रगुप्त विद्यालिकार, सद्गुरु शरण अवस्थी आदि।

भाव-नाट्य या गीत नाट्यकारों में श्री उदयशंकर भट्ट का विशेष योगदान है जिनके राधा मत्स्यगंधा और विश्वामित्र उच्चकोटि के गीति नाट्य हैं। इनके अतिरिक्त मैथिलीशरण गुप्त—अनघ, उर्वशी; रामधारी सिंह दिनकर—उन्मुक्त आदि। ❑

2 लहरों के राजहंस
(श्री मोहन राकेश)

प्रश्न 2. 'लहरों के राजहंस' नाटक की कथावस्तु का सारांश लिखिए।

उत्तर- कथानक का आधार और मौलिक कल्पना—श्री मोहन राकेश द्वारा विरचित नाटक 'लहरों के राजहंस' की रचना का आधार संस्कृत कवि अश्वघोष का महाकाव्य 'सौंदरनन्द' है। इसी महाकाव्य में वर्णित नन्द-सुन्दरी के आख्यान को आधार मानकर नाटककार ने 'लहरों के राजहंस' की रचना की है। यह नाटक ऐतिहासिक है, परन्तु इसमें राकेशजी ने ऐतिहासिक आख्यान को वर्तमान सन्दर्भ में प्रस्तुत कर अपनी नवीन कल्पनाओं का समायोजन कर नाटक में नवीनता ला दी है। अत: इसमें कल्पनातत्व की ही प्रधानता है और ऐतिहासिकता गौण बन कर रह गई है।

नाटक 'लहरों के राजहंस' का कथानक कपिलवस्तु के राज्य परिवार से सम्बद्ध है। नाटककार ने राजकुमार नन्द द्वारा दीक्षा ग्रहण किए जाने की घटना का उल्लेख कर तत्कालीन सामाजिक स्थिति का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है। समाज में महात्मा बुद्ध के बढ़ते प्रभावों को बड़े ही सरल शब्दों में नाटककार ने प्रस्तुत किया है। नाटककार की प्रमुख घटना है, नन्द

समस्या को प्रस्तुत करना ही नाटककार का मूल्य ध्येय रहता है। इन्हें समस्या प्रधान नाटक कहते हैं और इस प्रकार के नाटककारों में लक्ष्मीनारायण विशेष प्रसिद्ध हैं। इनके प्रसिद्ध समस्या नाटकों के नाम हैं—सन्यासी, राजयोग मुक्ति का रहस्य, राक्षस का मन्दिर, गरुड़ध्वज, नारद की वीणा, आधीरात, सिन्दूर की होली।

सामाजिक नाटकों में सेठ गोविन्दास, वृन्दावनलाल वर्मा, गोविन्द बल्लभ पंत और उपेन्द्रनाथ विशेष प्रसिद्ध हैं। इनके द्वारा नाटकों के नाम हैं—सेठ गोविन्ददास कृत सेवा-पथ, सन्तोष कहाँ, दु:ख क्यों, सिद्धान्त, स्वातन्त्र्य, त्याग या ग्रहण, कुलीनता, पाकिस्तान, गरीबी अमीरी आदि; वृन्दावनलाल वर्मा कृत राखी की लाज, केवट, विस्तार, खिलौने की खोज, बांस की फाँस, नीलकण्ठ, देखा-देखी आदि; गोविन्दवल्लभ पन्त कृति अंगूर की बेटी, सिन्दूर की बिन्दी आदि; उपेन्द्रनाथ अश्क कृत स्वर्ग की झलक, छठा बेटा, कैद, उड़ान, अलग-अलग रास्ते आदि।

(ग) एकांकी, रेडियो-रूपक, काव्य-रूपक आदि—एकांकी (एक अंक का नाटक) नाटककारों में डॉ. रामकुमार वर्मा का नाम सर्वोपरि है, जिसके पृथ्वीराज की आँखें, चारुमित्रा, ऋतुराज, रेशमी टाई, ध्रुवतारिका, दीपदान आदि एकांकी संग्रह प्रसिद्ध हैं। अन्य एकांकी नाटककारों में उल्लेखनीय हैं—उपेन्द्रनाथ अश्क (तूफान से पहले, देवताओं की छाहा, चरवाहे), सेठ गोविन्ददास (नानक की नमाज, बुद्ध कि एक शिष्या, युग, स्त्री का हृदय, पर्दे के पीछे), जगदीश चन्द्र माथुर (भोर का तारा, कलिंज विजय रीढ़ की हड्डी, मकड़ी का जाला, खण्डहर, बंदी तथा घोंसले, खिड़की की राह)। अन्य एकांकीकार हैं—भुवनेश्वरप्रसाद मिश्र, भगवतीचरण वर्मा, गिरिजाकुमार माथुर, चन्द्रगुप्त विद्यालिंकार, सद्गुरु शरण अवस्थी आदि।

भाव-नाट्य या गीत नाट्यकारों में श्री उदयशंकर भट्ट का विशेष योगदान है जिनके राधा मत्स्यगंधा और विश्वामित्र उच्चकोटि के गीति नाट्य हैं। इनके अतिरिक्त मैथिलीशरण गुप्त—अनघ, उर्वशी; रामधारी सिंह दिनकर—उन्मुक्त आदि। ❑

2 लहरों के राजहंस
(श्री मोहन राकेश)

प्रश्न 2. 'लहरों के राजहंस' नाटक की कथावस्तु का सारांश लिखिए।

उत्तर- कथानक का आधार और मौलिक कल्पना—श्री मोहन राकेश द्वारा विरचित नाटक 'लहरों के राजहंस' की रचना का आधार संस्कृत कवि अश्वघोष का महाकाव्य 'सौंदरनन्द' है। इसी महाकाव्य में वर्णित नन्द-सुन्दरी के आख्यान को आधार मानकर नाटककार ने 'लहरों के राजहंस' की रचना की है। यह नाटक ऐतिहासिक है, परन्तु इसमें राकेशजी ने ऐतिहासिक आख्यान को वर्तमान सन्दर्भ में प्रस्तुत कर अपनी नवीन कल्पनाओं का समायोजन कर नाटक में नवीनता ला दी है। अत: इसमें कल्पनातत्व की ही प्रधानता है और ऐतिहासिकता गौण बन कर रह गई है।

नाटक 'लहरों के राजहंस' का कथानक कपिलवस्तु के राज्य परिवार से सम्बद्ध है। नाटककार ने राजकुमार नन्द द्वारा दीक्षा ग्रहण किए जाने की घटना का उल्लेख कर तत्कालीन सामाजिक स्थिति का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है। समाज में महात्मा बुद्ध के बढ़ते प्रभावों को बड़े ही सरल शब्दों में नाटककार ने प्रस्तुत किया है। नाटककार की प्रमुख घटना है, नन्द

का दीक्षित होना। इसी घटना को नाटककार ने तीन अंकों के इस नाटक में प्रभावपूर्ण ढंग से चित्रित किया है। नाटक का कथानक तीन अंकों का है। नाटक के प्रथम अंक में कथा का उद्घाटन किया गया है, दूसरे अंक में नन्द और सुन्दरी के विकसित अन्तर्द्वन्द्व की झलक प्रस्तुत की गई है, दूसरे अंक में नन्द और सुन्दरी के विकसित अन्तर्द्वन्द्व की झलक प्रस्तुत की गई है और तीसरे तथा अन्तिम अंक में कथानक नन्द की दीक्षा के साथ ही चरम सीमा की स्थिति में पहुँच जाता है और शीघ्र ही अन्त की ओर अग्रसर होता है। नाटक का कथानक संक्षेप में इस प्रकार है-

प्रथम अंक—नाटक का यह अंक सुन्दरी के कक्ष से प्रारम्भ होता है। राजसेवक श्वेतांग और श्यामांग साज-सज्जा में संलग्न हैं। आज सुन्दरी के आग्रह पर वर्षों पश्चात् कामोत्सव का आयोजन किया जा रहा है। अतिथियों की प्रतिक्षा है। राजकुमार नन्द मृगया से वापस लौट आए हैं। वे अधिक थके प्रतीत होते हैं। सुन्दरी उनके साथ आगन्तुक अतिथियों की प्रतीक्षा करती है, किन्तु केवल एक अतिथि आर्य मैत्रेय ही पधारते हैं। वह बोलते हैं कि आज अन्य कोई अतिथि उत्सव में भाग लेने नहीं आएगा, क्योंकि जो व्यक्ति उन्हें मिले, उन सबने अपनी असमर्थता प्रकट की। यह सुनकर सुन्दरी के मन पर आघात होता है और वह अधिक उद्विग्ध हो जाती है। आर्य मैत्रेय के सुझाव से वह सहमत नहीं कि उत्सव स्थगित कर दिया जाए। आर्य मैत्रेय कुछ समय पश्चात् जाने की आज्ञा माँगते हैं। नन्द उन्हें रोकना चाहते हैं, किन्तु सुन्दरी अपनी अव्यवस्थित मानसिक स्थिति में अति उद्विग्न होकर कह देती है।

"आर्य मैत्रेय यदि जाना चाहते हैं, तो इन्हें जाने दीजिए। कह दीजिए कि जिनके यहाँ से होकर आए हैं, जाते हुए भी एक बार उनके यहाँ होते जायें। उन सबसे कह दें कि मेरे यहाँ आने के लिए किसी कल की प्रतीक्षा में वे न रहें। वह कल अब उनके लिए कभी नहीं आएगा, कभी नहीं।"

यह कहकर सुन्दरी कक्ष से चली जाती है। आर्य मैत्रेय भी चले जाते हैं। शशांक 'व्यवस्था हो गई है' ऐसी सूचना देता है और नन्द उसे आज्ञा देते हैं- "जो आसन बिछाए हैं, उठा दो। अब उनकी कोई आवश्यकता नहीं।" नन्द के इसी कथन के साथ प्रथम अंक समाप्त हो जाता है।

द्वितीय अंक—नाटक के दूसरे अंक का प्रारम्भ भी सुन्दरी के कक्ष से ही होता है। अन्धकार में टहलते हुए नन्द की छायाकृति दिखलायी पड़ती है। अनिद्रा से उद्विग्न नन्द कक्ष में घूम रहे हैं और नेपथ्य से श्यामांग का ज्वर-प्रलाप सुनाई देता है।

"कोई स्वर नहीं है ..... कोई किरण नहीं है ..... सब कुछ ..... सब कुछ इस अँध कूप में डूब गया है। ..... मुझे सुलझा लेने दो ..... सुलझा लेने दो ..... नहीं तो अपने हाथों का मैं क्या करूँगा। कोई उपाय नहीं है ..... कोई मार्ग नहीं है ....., इन लहरों पर से ..... लहरों पर से ..... यह छाया हटा दो ..... मुझसे यह छाया नहीं ओढ़ी जाती .....।"

सुन्दरी गहरी निद्रा में निमग्न है। दिन भर की थकान और फिर गहरी निराशा ने सुन्दरी को इस स्थिति में ला दिया है। नन्द भी उद्विग्न है। श्यामांग के अनवरत प्रताप से उनकी उद्विग्नता और बढ़ती जा रही है। नन्द बुझते दीपकों को जलाने के लिए अलका से अग्नि-काष्ठ मँगाता है। अलका अग्नि काष्ठ लेकर दीपक जलाना चाहती है, किन्तु नन्द उसके हाथ से अग्नि-काष्ठ लेकर दीपक जलाने लगता है। इतने में सुन्दरी जग जाती है। वह नन्द से पूछते हैं कि 'ये दीपक रात भर जलते रहे बुझे नहीं।' इस पर नन्द अपने रात भर जगते रहने की

बात कहता है। यह जानकर कि नन्द रात भर सो नहीं सके, सुन्दरी को दु:ख होता है। वह रात के व्यवहार के लिए खेद व्यक्त करती है। वह अलका को बुलाती है ताकि वह प्रसाधन कर सके, किन्तु अलका की अनुपस्थिति में निहारिका वहाँ आती है और बतलाती है कि अलका कविराज के यहाँ गई है। सुन्दरी अलका की अनुपस्थिति में नन्द से श्रृंगार-प्रसाधन में सहयोग देने को कहती हैं। नन्द दर्पण उठाकर श्रृंगार में सहयोग देने को तत्पर है कि इसी समय नेपथ्य से 'धम्म शरणं गच्छामि' के समवेत स्वर उसके कान में पड़ते हैं और अन्यमनस्कता के कारण दर्पण हिल जाता है। प्रयत्न कर वह पुन: दर्पण उठाता है, किन्तु इस बार दर्पण उसकी उद्वेलित साँसों से धूमिल हो जाता है। सुन्दरी विशेषक (माथे पर चन्दन का टीका) बनाने से मना कर देती है। नन्द उसे मनाकर दर्पण उठाता है। अभी सुन्दरी माथे पर उँगली से विशेषक बनाना ही चाहती है कि पुन: नन्द के कानों में भिक्षुओं का समवेत गान 'धम्मं शरणं गच्छामि' गूँज उठता है। वह अव्यवस्थित हो उठता है और दर्पण टूट जाता है। इतने में अलका से गौतम के घर आकर लौट जाने की बात सुनकर नन्द गौतम के पास जाता है। जाते समय वह सुन्दरी के माथे पर एक चन्दन-बिन्दु लगाता है और लौटकर पूर्ण विशेषक बनाने की बात कहता है। सुन्दरी की सहमति पाकर वह विशेषक बनाना ही चाहता है कि हवा से किवाड़ खुल जाता है। नन्द को शंका होती है किसी के आने से किन्तु यह जानकर कि किवाड़ हवा से खुल गया था। वह पुन: आश्वस्त होकर विशेषक बनाने का उपक्रम करता है कि तभी अलका आकर सूचना देती है कि भवन के द्वार पर गौतम बुद्ध भिक्षा हेतु आए थे।

अपने भवन तक गौतम के आने की बात जानकर सुन्दरी से वहाँ जाने के बारे में पूछता है। सुन्दरी उसे वचन मुक्त करती हुई जाने को कह देती है। नन्द जाने लगता है, तब सुन्दरी माथे पर एक विशेषक बनाने का अनुरोध करती है। नन्द द्वारा माथे पर एक बिन्दु बनाने पर वह यह आश्वसन लेकर शीघ्र लौटेंगे तो, नन्द को स्वयं वहाँ भेजती है। सुन्दरी इस प्रतीक्षा में है कि नन्द शीघ्र लौटेंगे, तभी उसे श्यामांग का प्रलाप सुनाई देता है- "पानी ..... पानी नहीं हैं ..... लहरों में पानी नहीं हैं ..... कोई एक किरण ला दो ..... अँधेरे मुझसे हटा दो ..... कोई एक किरण .....।" श्यामांग के इस प्रलाप के साथ ही द्वितीय अंक समाप्त हो जाता है।

तृतीय अंक—इस अंक का प्रारम्भ भी नन्द के भवन और सुन्दरी के कक्ष से होता है। वह नन्द की प्रतीक्षा में आकुल है। इसी समय अलका यह सूचना देती है कि कमल ताल के राजहंस उड़ गए। सुन्दरी का दु:ख और बढ़ जाता है। वह नन्द के लिए और व्याकुल हो उठती है। अलका उसे प्रयत्न करके सुलाती है। इतने में श्वेतांग अलका को नन्द तथा मैत्रेय के दीक्षित होने की बात बतलाता है और राजकुमार के वन की ओर चले जाने की बात भी कहता है। कुछ समय पश्चात् नन्द भिक्षु आनन्द के साथ कक्ष में प्रवेश करता है। अलका सुन्दरी को जगाना चाहती है। नन्द के मना करने पर वह बाहर चली जाती है। भिक्षु को बिदाकर जब नन्द सुन्दरी के माथे पर चन्दन से विशेषक बनाना चाहता है, तभी सुन्दरी अर्ध निद्रावस्था से चौंक उठती है। अलका द्वारा कहे जाने पर कि राजकुमार लौट आए हैं सुन्दरी व्यथित भाव से कह उठती है- "जो आया हैं, वह कोई दूसरा ही है।"

नन्द इस वाक्य से आहित होकर बाहर चला जाता है और श्वेतांग से कह जाता है कि वह अपने केश लौटाने जा रहा है। इधर सुन्दरी को यह ज्ञात होता है कि कुमार बाहर गए थे, तो वह अत्यन्त आहत हो जाती है। जब श्वेतांग से उसको पता चलता है कि कुमार दीक्षा लेने गौतम के पास गए हैं, तो उसका हृदय अधिक आहत होता है कि उसका पति उसे समझ

न पाया, उसके कथन का मर्म समझ न पाया और तब उसके मुख से निकल पड़ता है, "
ही तो समझ पाते हैं लोग! बस इतना ही तो इनकी समझ में आ पाता है।" और तभी नेपथ्य
से श्यामांग का प्रलाप सुनाई पड़ता है- "नहीं ..... किसी की समझ में नहीं आता .....
पत्थर ..... पानी में पत्थर मैंने नहीं फेंके ..... जिसने पत्थव फेंके ..... वह भी .....
छाया थी ..... यह अंधेरा मुझसे नहीं ओढ़ा जाता ..... मुझे एक किरण ला दो .....
एक किरण।" श्यामांग के इस प्रलाल के साथ ही नाटक समाप्त हो जाता है।

प्रश्न 3. 'लहरों के राजहंस' नाटक के वस्तु विधान के विषय में अपने विचार व्यक्त कीजिए।

अथवा

"नाटककार ने 'लहरों के राजहंस' नाटक के वस्तु-विधान का गठन पाश्चात्य नाट्यशैली के आधार पर किया है।" इस कथन की समीक्षा कीजिए।

उत्तर- नाटककार 'मोहन राकेश' ने अपने नाटक 'लहरों के राजहंस' के विषय में लिखा है- "प्रस्तुत नाटक का आधार ऐतिहासिक है, परन्तु उतने ही अर्थ में जितना इस व्याख्या में आता है। कथा का आधार अश्वघोष का काव्य 'सोदरनन्द' है, परन्तु समय के विस्तार में स्थितियों का परिक्षेपण करने के कारण काल्पनिक भी है।"

वास्तव में नाटककार ने कथानक में नाटकीयता का समायोजन करने के लिए नए पात्रों एवं प्रसंगों की कल्पना की है। कामोत्सव का आयोजन, दीक्षा लेने के पश्चात् नन्द का एक बार घर लौट आना तथा अलका और श्यामांग का पूरा प्रसंग नाटककार की कल्पना पर ही आधारित है। इस नवीन काल्पनिक प्रसंगों ने ऐतिहासिक कथावृत्त को एक नवीन एवं युगीन अर्थ-व्यंजना प्रदान की है।

कथानक को नवीन संदर्भों में प्रस्तुत करने की ही भाँति नाटककार ने कथानक की वस्तु-योजना अथवा वस्तु-संगठन के विषय में भी अत्यधिक आधुनिक नाट्यशैली का सहारा लिया है। प्रस्तुत नाटक का वस्तु-विधान पाश्चात्य नाट्यशैली के अनुसार ही है। वह वस्तु-गठन में भारतीय शैली से सर्वथा भिन्न है।

'लहरों के राजहंस' नाटक की वस्तु-विधान की योजना तीन अंकों में नियोजित की गई है। वस्तु गठन का यह पाश्चात्य ढंग है। वहाँ क्रिया के व्यापार की तीन अवस्थाएँ कल्पित की गई हैं। प्रारम्भ या उद्घाटन, विकास और चरम सीमा। नाटकीय कला के इन तीन प्रमुख संचरणों के आधार पर ही इस शैली के नाटकों में तीन अंकों का विधान रहता है। 'लहरों के राजहंस' का वस्तु-विधान भी तीन अंकों की नवीन शैली के अनुरूप किया गया है।

नाटक का प्रथम अंक क्रिया-व्यापार का पहला संचरण माना जाता है। 'लहरों के राजहंस' का प्रथम अंक क्रिया-व्यापार की दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण है, क्योंकि इस अंक में व्यापार और भाव की अन्वति का पूर्ण निर्वाह हुआ है। नाटककार ने नाटक के प्राय: सभी प्रमुख अथवा गौण पात्रों को तथा कथानक के प्रसंगों को भी इसी अंक में प्रस्तुत कर दिया है। नाटक का पहला अंक सुन्दरी के कक्ष से प्रारम्भ होता है। राजसेवक श्वेतांग और श्यामांग साज-सज्जा में संलग्न हैं। आज सुन्दरी के आग्रह पर वर्षों पश्चात् कामोत्सव का आयोजन किया जा रहा है। अतिथियों की प्रतीक्षा है। राजकुमार नन्द मृगया से वापस लौट आए हैं। वे अधिक थके प्रतीत होते हैं। सुन्दरी उनके साथ आगन्तुक अतिथियों की प्रतीक्षा करती है, किन्तु केवल एक अतिथि आर्य मैत्रेय ही पधारते हैं। वे बोलते हैं कि आज अन्य कोई अतिथि

उत्सव में भाग लेने नहीं आएगा। कुछ क्षण पश्चात् स्वयं भी चले जाते हैं। सुन्दरी अपने अपमान से विक्षुब्ध हो उठती है।

यही तीव्र और गहन स्थिति में अंक समाप्त हो जाता है। अंक की समाप्ति पर हम इसके प्रभाव के विषय में विचार करते हैं तो ज्ञात होता है कि नाटककार बड़े ही सहज ढंग से कथन का उद्घाटन करता है। नाटककार ने कामोत्सव के आयोजन की तीव्र व्यंजना प्रदान करने के लिए कमलताल पर उतरती बुद्ध की छाया की कल्पना की है और आदृत राजहंसों के कलख को चित्रित किया है। कामोत्सव की योजना भी अपना विशेष महत्व रखती हैं। हम देखते हैं कि सुन्दरी ईर्ष्या से प्रेरित होकर ठीक उस समय कामोत्सव का आयोजन करती है, जब प्राय: देवी यशोधरा परिव्रज्या लेने वाली हैं। आयोजन की असफलता यह सिद्ध करती है कि कपिलवस्तु में गौतम का प्रभाव उत्तरोत्तर बढ़ रहा है। प्रथम अंक को देखकर दर्शक इस बात को सहज ही समझ लेते हैं। कथावस्तु के अन्तिम लक्ष्य की रूपरेखा उनके मन-पटल पर स्पष्ट होने लगती है। वे सभी पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं से भी परिचित हो जाते हैं। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि प्रथम अंक वस्तु-विधान को दृष्टि से पूर्ण सुगठित और प्रभावशील है।

नाटक के द्वितीय अंक को हम क्रिया-व्यापार का द्वितीय संचरण कह सकते हैं। इसका प्रारम्भ भी सुन्दरी के कक्ष से होता है। अंक के प्रारम्भ में नैपथ्य से श्यामांग का प्रलाप सुनाई देता- "कोई स्वर नहीं है ..... कोई किरण नहीं है ..... मुझसे यह छाया नहीं ओढ़ी जाती।" यह प्रलाप नन्द के अन्तरतम में विद्यमान द्वन्द्व की सघनता को तीव्रता प्रदान करता है और भावी घटनाओं की ओर सूक्ष्म संकेत करता है। इस अंक में नाटककार ने नन्द द्वारा सुन्दरा के श्रृंगार किए जाने के कोमल प्रसंग को लिया है। इस प्रसंग का आयोजन शायद इसीलिए किया गया है कि भविष्य में घटित घटनाओं को और अधिक व्यंजना प्रदान की जा सके। संयोग के ये श्रेष्ठ क्षण वियोग में स्मृति के माध्यम से अधिक घनीभूत वेदना का संचार करते हैं। इस दृष्टि से इस अंक का यह श्रृंगार-प्रसंग नाटककार की वस्तु-योजना-विषयक विलक्षण प्रतिभा का परिचायक है। इस अंक में भी व्यापार-अन्वति का पूर्ण निर्वाह हुआ है। इस अंक की कथा संक्षेप में इस प्रकार है- नन्द सोचकर उठी सुन्दरी से वार्तालाप करता दिखाई देता है। सुन्दरी अलका की अनुपस्थिति में नंद से श्रृंगार-प्रसाधन में सहयोग देने को कहती है। नन्द दर्पण उठाकर श्रृंगार में सहयोग देने को तत्पर है कि इसी समय नेपथ्य से 'धम्मं शरणं गच्छामि' के समवेत स्वर उसके कान में पड़ते हैं और अन्यमनस्कता के कारण दर्पण हिल जाता है। प्रयत्न कर वह पुन: दर्पण उठाता है किन्तु इस बार दर्पण उसकी उद्वलित साँसों से धूमिल हो जाता है। सुन्दरी विशेषक बनाने से मना कर देती है। नन्द उसे मनाकर दर्पण उठाता है। अभी सुन्दरी माथे पर उँगली से विशेषक बनाना ही चाहती है कि पुन: नन्द के कानों में भिक्षुओं का समवेत गान 'धम्मं शरण गच्छामि' गूँज उठता है।

वह अव्यवस्थित हो उठता है और दर्पण टूट जाता है। इतने में अलका से गौतम के घर आकर लौट जाने की बात सुनकर नंद गौतम के पास जाता है। जाते समय वह सुन्दरी के माथे पर एक चन्दन-बिन्दु लगाता है और लौटकर पूर्ण विशेषक बनाने की बात कहता है। हम देखते हैं कि इस अंक में 'श्रृंगार-प्रसंग' का आयोजन नाटककार ने नन्द और सुन्दरी के पारस्परिक प्रेम की प्रगाढ़ता अंकित करने की दृष्टि से किया है। वस्तु गठन की दृष्टि से यह अति अद्भुत है। इसी अंक में नन्द का द्वन्द्व और गहन हो जाता है। मृत-मृग का स्मरण पुन: उसकी भावनाओं में तीव्रता ला देता है। सुन्दरी के चरित्र की रूप-रेखाएँ और अधिक

स्पष्ट हो गई हैं। अंक के अन्त में श्यामांग का प्रलाप पुनः सुनाई देता है- "पानी ..... पानी नहीं है ..... लहरों में पानी नहीं है ..... कोई एक किरण ला दो।" यह प्रलाप नंद की भटकन का ही प्रतीक बन जाता है। वस्तु गठन की दृष्टि से इस अंक की रचना सर्वथा उपयुक्त व प्रभावपूर्ण है।

नाटक का तीसरा अंक चरमोत्कर्ष और अन्त की अवस्था का परिचायक है। इस अंक का प्रारम्भ भी सुन्दरी के कक्ष से होता है। वह नन्द की प्रतीक्षा में आकुल है। इसी समय अलका यह सूचना देती है कि कमल ताल के राजहंस उड़ गए। सुन्दरी का दुःख और बढ़ जाता है। वह नन्द के लिए व्याकुल हो उठती है। अलका उसे प्रयत्न करके सुलाती है। इतने में श्वेतांग अलका को नन्द तथा मैत्रेय के दीक्षित होने की बात बतलाता है और राजकुमार के वन की ओर चले जाने की बात भी कहता है। कुछ समय पश्चात् नन्द भिक्षु आनन्द के साथ कक्ष में प्रवेश करता है। अलका सुन्दरी को जगाना चाहती है। नन्द के मना करने पर वह बाहर चली जाती है। भिक्षु को बिदाकर जब नन्द सुन्दरी के माथे पर चन्दन से विशेषक बनाना चाहता है, तभी सुन्दरी अर्ध निद्रावस्था में चौंक उठती है। अलका द्वारा कहे जाने पर कि राजकुमार लौट आए हैं सुन्दरी व्यथित भाव से कह उठती है- "जो आया है, वह कोई दूसरा ही है।" - नन्द इस वाक्य से आहत होकर बाहर चला जाता है और श्वेतांग से कह जाता है कि वह अपने केश लौटाने जा रहा है। जब सुन्दरी को यह पता चलता है कि नन्द केश देने गए हैं, तो वह मर्माहत होकर कह उठती है- "इतना ही तो समझ पाते ये लोग"- और फिर अन्त में हमें श्यामांग का प्रलाप सुनाई पड़ता है- "बस एक किरण ..... केवल एक किरण ....." हम देखते हैं कि यह अंक कथानक को तीव्र गति से लक्ष्य की ओर गतिमान करता है। इसमें नन्द का द्वन्द्व और गहन हो जाता है- "मैं चौराहे पर खड़ा एक नंगा व्यक्ति हूँ, जिसे सभी दिशाएँ लील लेना चाहती हैं और अपने को ढँकने के लिए जिसके पास कोई आवरण नहीं।" -यह कथन नन्द की मनःस्थिति का आकलन करने में सहायक होता है। इस अंक में ऐसी घटनाएँ घटित होती हैं, जो कथानक को चरमोत्कर्ष पर पहुँचा देती है और कथा के चरम बिन्दु पर पहुँचकर नाटक समाप्त हो जाता है। वस्तु-गठन की दृष्टि से यह अंक महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसी अंक में कथावस्तु तीव्रता से अपने-अपने अन्तिम लक्ष्य की ओर अग्रसर होकर एक कौतूहल के साथ समाप्त हो जाती है। इस अंक में द्वन्द्व भी अपनी चरम स्थिति में चित्रित हुआ है।

नाटक की वस्तु-योजना से श्यामांग-प्रसंग नन्द के दीक्षित होने का प्रसंग व भिक्षु आनन्द विषयक प्रसंग विशेष उल्लेखनीय भूमिका निभाते हैं। अतः इन प्रसंगों के विषय में संक्षेप में कुछ कह देना आवश्यक प्रतीत होता है। नाटक का श्यामांग-प्रसंग कई प्रकार से मुख्य कथा मूल संघर्ष से सम्बद्ध है। वास्तव में यह प्रसंग प्राचीन-पद्धति के नाटकों में आयोजित गौण कथाओं (प्रासंगिक कथाओं) से सर्वथा भिन्न हैं। वह नाटक के मुख्य वृत्त से ही सम्बन्धित है और उसी का एक पूरक प्रसंग है। वह मुख्य कथा और मूल संघर्ष को ही अधिक तीव्रता प्रदान करता है। यद्यपि अभिनय की दृष्टि से यह प्रसंग कुछ दुर्बल व नाटक के सहज प्रभाव में बाधक सिद्ध होता है फिर भी वस्तु-गठन की दृष्टि से यह क्षम्य है। वास्तव में नन्द की द्वन्द्व-ग्रस्त चेतना को अधिक स्पष्ट बनाने तथा तीव्रता प्रदान करने के लिए ही नाटककार ने इस प्रसंग की कल्पना की है। नाटक का दूसरा प्रसंग (नन्द के दीक्षित होने विषयक प्रसंग) भी वस्तु-विधान की दृष्टि से एक दुर्बल कड़ी है। डॉ. सुरेश अवस्थी ने नाटक की भूमिका में एक स्थान पर लिखा है कि अच्छा यह होता कि नन्द का दीक्षित होना रंगमंच

पर दिखाया जाता, इनसे न केवल अभिनय के प्रभाव में वृद्धि होती वरन् वस्तु-विधान भी अधिक प्रभावशील बन जाता। इसी प्रकार भिक्षु आनन्द की नन्द के साथ रंगमंच पर आना भी निष्प्रयोजन ही सिद्ध होता है। अच्छा तो यह होता कि नन्द को स्वतन्त्र छोड़ दिया जाता। इसके मनोविकार स्वत: ही अपनी गति निर्धारित कर लेते।

नाटक के गहन अध्ययन के पश्चात् यह बात स्पष्ट हो जाती है कि नाटककार ने सर्वथा नवीन दृष्टिकोण से कथानक का गठन किया है। वस्तुविधान की दृष्टि से यह योजना पूर्ण स्वाभाविक और प्रभावशाली है। ❑

प्रश्न 4. राजकुमार नन्द का चरित्र-चित्रण कीजिए।

उत्तर- नाटककार का उद्देश्य युग की द्वन्द्व-ग्रस्त चेतना को ही चित्रित करना है। यह कार्य उसने राजकुमार नन्द के माध्यम से पूर्ण किया है। राजकुमार नन्द महात्मा बुद्ध के भाई हैं। यह कपिलवस्तु में रहकर जीवन के आनन्द का उपभोग कर रहे हैं। सौभाग्य से उनकी पत्नी सुन्दरी केवल नाम की ही सुन्दरी नहीं वरन् वास्तव में अनुपम रूपवती है। पत्नी के रूपपाश में निबद्ध नन्द प्रवृत्ति मार्ग पर धीरे-धीरे संचरण करते दृष्टिगोचर होते हैं, किन्तु वे चाहते हुए भी पूर्ण मन से सुन्दरी को प्यार नहीं कर पाते। इसका कारण है कि भौतिक सुखों की निस्सारता का भान उनके अन्तर में कहीं एक कोने में बौद्ध दर्शन का मूल तत्व विद्यमान है, जो उन्हें तथागत की ओर आकृष्ट करता रहता है। प्रियतमा के अनुपम सौन्दर्य तथा गौतम बुद्ध के प्रति सहज आकर्षण दोनों ही उन्हें समय-समय पर अपनी ओर खींचते हैं और वह अनायास ही कभी इधर खींचे चले जाते हैं। लहरों के राजहंस की ही भाँति। राजकुमार नन्द के चरित्र की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

1. पत्नी के प्रति सम्मान की भावना—वह पत्नी के प्रत्येक आदेश का पालन करना चाहते हैं, ताकि सुन्दरी के प्रेम-प्रसाद से वंचित न रहें। सुन्दरी के सौन्दर्य से अभिभूत होने के कारण वह सुन्दरी से दबते प्रतीत होते हैं। कामोत्सव की विफलता से पूर्व परिचित होते हुए भी वह सुन्दरी का दिल दुखाना नहीं चाहते। वे केवल संकेत द्वारा अपना मत व्यक्त करते हैं- "हाँ मैं कह रहा था कि सम्भव है। उतने लोग न भी आएँ जितने लोगों के आने की हम आशा कर रहे हैं।" इसी प्रकार देवी यशोधरा से मिलकर आने की बात भी वह सहमे-सहमे हुए करते हैं।

2. विलासिता—राजकुमार नन्द सुन्दरी के मोहपाश में इस प्रकार बँधे हुए हैं कि पत्नी की प्रसन्नता के अतिरिक्त उन्हें कुछ दिखता नहीं। समय-समय पर वह पत्नी से क्षमा-याचना करते रहते हैं। पत्नी को प्रसन्न रखना ही उन्हें इष्ट हैं। "तुम बुरा तो नहीं मान गई" - कहकर उन्हें रिझाने का उपक्रम करते हैं। जब कामोत्सव की विफलता से त्रस्त सुन्दरी अपना सन्तुलन खो देती है, तब वह उसे सान्त्वना प्रदान करते हैं। दिनभर की थकान व कामोत्सव की विफलता से उत्पन्न निराशा से ग्रस्त सुन्दरी जब सो जाती है तो नन्द रात भर जागकर उसकी देखभाल करते हैं। इसमें नन्द के विलासी स्वरूप के ही दर्शन होते हैं। विलासी नन्द प्रात: सुन्दरी के जग जाने पर उसे प्रसन्न करने का उपक्रम करते हैं। विलासी नन्द कभी अपनी पत्नी की चाटुकारिता कर अपने को गौरवान्वित समझते हैं, तो कभी भोगों के प्रति उनके मन में वितृष्णा जाग उठती है। रात्रि जागरण के पश्चात् प्रात: के सुरम्य वातावरण में भी उनका मन वितृष्णा से भर जाता है। वह पुन: मृत मृग की स्मृति कर उद्विग्न हो जाते हैं।

3. अस्थिरता एवं संशय—नन्द के हृदय में हीनता की भावना का उदय होता है। वह कभी सुन्दरी के सौन्दर्य का स्मरण करता है और कभी गौतम के प्रभाव से अभिभूत हो जाता

है। वह गौतम से क्षमा-याचना करना चाहता है, किन्तु गौतम चुपचाप अपना भिक्षा पात्र उसकी ओर बढ़ा देते हैं। उस समय नन्द का मन स्थिर हो उठता है। उसे लगता है कि शायद सुन्दरी का रूपाकर्षण अपना प्रभाव खोता जा रहा है और बुद्ध का प्रभाव बढ़ता जा रहा है। वह घर लौटने का उपक्रम करता है ताकि बुद्ध के प्रभाव से मुक्त हो सके, किन्तु बुद्ध द्वारा विहार में चलने का आदेश पाकर वह उधर चले जाते हैं। अगले कुछ क्षण नन्द की उलझन के सबसे आघातक क्षण सिद्ध होते हैं। वह गौतम के कथन का विरोध न करके केश कटवा लेता है। अगले ही क्षण वह पुन: इस कार्य को असंगत व अन्याय मानकर उसका विरोध करना चाहता है और इसी उलझन में वह बिना भिक्षा पात्र लिए तथा गौतम को प्रणाम किए बिना वन की ओर चल देता है। वह पुन: उस मृत मृग को देखने जाता है। वहाँ मृग की ठठरी देखकर उसका मन दु:ख से भर जाता है। अपनी इस मानसिक स्थिति में वह व्याघ्र से भिड़ जाता है। नन्द के मन को वह झुंझलाहट इसलिए है कि उसे अनायास और बलात् दीक्षा क्यों दे दी गई। केश कटवाने के पश्चात् वन जाकर व्याघ्र से भिड़ जाने वाली घटना उससे संशय ग्रस्त अन्तर्द्वन्द्व का ही परिणाम है। इतने संघर्ष और द्वन्द्व के पश्चात् भी नन्द किसी एक भाग पर बढ़ने में अपने को असमर्थ पाता है।

निष्कर्ष—उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर हम कह सकते हैं कि नन्द का चरित्र अन्तर्द्वन्द्व से ग्रसित है, उनके मन में संशय है, अस्थिरता है, चंचलता है। वह किसी भी निर्णय पर पहुँचने में सक्षम नहीं है। कभी उनका मन निवृत्ति मार्ग पर अग्रसर होता है तो कभी वह प्रवृत्ति मार्ग की ओर उन्मुख होते दिखलाई पड़ते हैं। उनकी स्थिति विचित्र है। वह दो आकर्षणों के मध्य उलझे हुए निरीह प्राणी हैं। अन्त तक वह निर्णय नहीं कर पाते कि उन्हें किस मार्ग को चुनना हैं। चयन में असमर्थ उनका जीवन एक प्रश्न चिन्ह बनकर रह जाता है। ❑

प्रश्न 5. श्वेतांग एवं आर्य मैत्रेय का चरित्र चित्रण कीजिए।

उत्तर-

श्वेतांग का चरित्र चित्रण

'लहरों के राजहंस' नाटक में श्वेतांग को एक आज्ञाकारी व कर्तव्य परायण राज-कर्मचारी के रूप में प्रस्तुत किया गया है। वह अपने कर्तव्य को पूर्ण निष्ठा से सम्पादित करता है। नाटक प्रारम्भ होते ही हम उसे राजरानी, सुन्दरी के केश की साज-सज्जा में लगा हुआ देखते हैं। वह अपने कर्तव्य को प्राथमिकता प्रदान करता है। उसका व्यवहार सामान्य व अनुभव मुक्त हैं। कामोत्सव के आयोजन में उसे दीपक जलाने का काम सौंपा गया है, वह अपने कार्य में लगा हुआ है। दर्शक सर्वप्रथम उसे इसी कार्य में लगा हुआ देखते हैं। वह स्वामी या स्वामिनी के आदेश का सदैव तत्परता से पालन करता है। वह एक आज्ञाकारी और विश्वसनीय सेवक है। राजरानी सुन्दरी की आज्ञा प्राप्त कर वह शीघ्र ही तद्नुसार कार्य करने लगता है। दीपक जलाने का कार्य श्यामांग को सौंपकर वह तुरन्त पत्तियाँ सुलझाने लगता है और कुछ क्षण पश्चात् ही दूसरी आज्ञा पाकर वह शशांक को बुलाने दौड़ पड़ता है। कार्य में उसकी रुचि स्वामी की इच्छा पर निर्भर - स्वयं की कोई इच्छा नहीं।

विश्वास पात्र—श्वेतांग पर सुन्दरी को पूर्ण विश्वास है। यही कारण है कि वह श्यामांग को अंधकूप में डालने का कार्य उसे ही सौंपती है। श्वेतांग भी पूर्ण निष्ठा से उस कार्य को करता है। अपने ही सहयोग को अंधकूप की व्यथा सहने के लिए वह उसे कूप में अकेला छोड़ देता है और आज्ञा का पालन करता है। वह राज कर्मचारी की स्थिति से पूर्णत: अवगत है। वह जानता है कि राज कर्मचारी को कुछ भी सोचने का अधिकार नहीं। श्यामांग के प्रति

उसका यह कथन इसी दृष्टिकोण को स्पष्ट करता है- "सोचना छोड़ दिया ..... आदमी काम करना चाहे तो उपाय यही है राज-कर्मचारी के लिए विशेष रूप से।" यह कथन श्वेतांग की विवेकशीलता व अनुभव की पुष्टि करता है।

कार्य-निष्ठा—श्वेतांग अपने कार्य को तो निष्ठापूर्वक करता ही हैं, साथ ही सहयोगी श्यामांग की सहायता करता है। यह उसके चरित्र की भी एक प्रमुख विशेषता है। वह ऐसा करके सुख का ही अनुभव करता है। जब श्यामांग पत्तियों की रस्सी नहीं सुलझा पाता तो वह श्यामांग को दीपक जलाने का कार्य सौंप देता है और स्वयं पत्तियाँ सुलझाने लगता है। यह घटना बतलाती हैं कि वह अपने सहयोगी श्यमांग के प्रति सहानुभूति रखता है।

श्वेतांग सुन्दरी के समान ही अलका की बात भी मानता है। वह स्थिति के अनुकूल कार्य करता है। वह अलका के कहने पर राजकुमार नन्द की खोज में जाता है और नन्द के समाचार लाकर अलका को देता है, साथ ही राजकुमार को रक्षार्थ सैनिक भेजने की युक्ति भी बतलाता है। यह उसकी तत्पर बुद्धि का ही द्योतक है।

निष्कर्ष—इस उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर यही कहा जा सकता है कि श्वेतांग एक आज्ञाकारी व कर्तव्य परायण राजकर्मचारी हैं। उसका चरित्र पूर्ण रूप से स्वाभाविक है। उसके चरित्र में कुछ भी असमान्य नहीं। वह एक स्थिर मन एवं विचारशील सेवक में उसके चरित्र में सभी कुछ स्पष्ट और उजागर है। उसमें कोई रहस्य नहीं। उसका चरित्र उसके व्यक्तित्व की ही भाँति सामान्य व व्यवहारिक है।

आर्य मैत्रेय का चरित्र चित्रण

वर्ग-चेतना के प्रतीक—आर्य मैत्रेय नाटक में कपिलवस्तु के सम्भ्रान्त जनों के प्रतिनिधि बन कर आते हैं। नाटक में उसकी कोई महत्वपूर्ण भूमिका नहीं हैं। नाटककार ने उनके माध्यम से तत्कालीन समाज के प्रबुद्ध एवं सम्भ्रान्त वर्ग की चेतना का चित्रण किया है। वह समय ऐसा था, जबकि सभी राजपुरुष, सामन्त सम्राट व राजवर्ग के सदस्य महात्मा बुद्ध के प्रभाव से अभिभूत हो बौद्ध धर्म में दीक्षित हो रहे थे। नाटककार ने आर्य मैत्रेय का चित्रण उसी वर्ग चेतना के प्रतीक के रूप में किया है।

चरित्र की विशेषताएँ—आर्य मैत्रेय एक सम्भ्रान्त पुरुष हैं। राज्य-परिवार में उनका सम्मान है। राजकुमार नन्द को राजरानी सुन्दरी दोनों ही उनको सच्चा मित्र मानते हैं। यही कारण है कि वह न चाहते हुए भी निमन्त्रण पाकर कामोत्सव में सम्मिलित होने के लिए आते हैं, क्योंकि वह नहीं चाहते कि उनके कारण किसी का दिल दुखे। वह राजकुमार नन्द का आतिथ्य ग्रहण करते हैं। कुछ क्षण प्रसाद में रुकते हैं, मदिरा पान करते हैं और अवसर आने पर एक सच्चे मित्र की भाँति कामोत्सव की निस्सारता प्रदर्शित करते हुए कहते हैं कि आयोजन का समय उचित नहीं रहा। देखिए उनका यह कथन- "मैं दिन भर सोचता रहा कि आपसे कहूँ, परन्तु कह नहीं पाया। कामोत्सव का आयोजन यदि आज स्थगित करके कल रखा जा सकता .....।"

आर्य मैत्रेय हृदय से तो यही चाहते थे कि आज यह उत्सव न हो, किन्तु सामाजिक मर्यादा का पालन करने हेतु वह उत्सव को सफल बनाने के लिए प्रयत्नशील रहे। वे अपने इष्ट मित्रों और आमन्त्रित सदस्यों के घर गये और उन्हें कामोत्सव में चलने के लिए आग्रह भी किया।

"जिन-जिन से मैं मिला हूँ, उनमें से हर एक ने किसी न किसी कारण अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए क्षमा-याचना की है, रविदत्त अग्निवर्मा, नीलवर्मा ईषाण, शैवाल सभी ने।"

बुद्ध से प्रभावित—आर्य मैत्रेय महात्मा बुद्ध से प्रभावित थे। वह धीरे-धीरे सांसारिक आडम्बरों से हट रहे थे। कामोत्सव में वह एक मित्र के नाते सम्मिलित होने के लिए अवश्य गए, किन्तु वहाँ अधिक रूक न सके और शीघ्र वापस चले गए, क्योंकि राग-रंग से वह ऊब चुके थे। उनका अन्तिम लक्ष्य बौद्ध धर्म में दीक्षा लेना था। समय आने पर उन्होंने दीक्षा ग्रहण ही कर ली। नाटक के अन्त में श्वेतांग अलका को सूचना देता है कि, "सूना है आर्य मैत्रेय आज दीक्षित हो गये हैं।"

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि आर्य मैत्रेय एक सच्चे मित्र व हितैषी हैं। अत्यन्त छोटी भूमिका होने पर भी नाटक में मैत्रेय का बड़ा प्रभाव है। ❑

प्रश्न 6. "सुन्दरी का चरित्र-चित्रण यथार्थ पर आधारित है उसमें पूर्ण व्यावहारिकता है।" इस कथन के सन्दर्भ में सुन्दरी का चरित्र-चित्रण कीजिए।

अथवा

'लहरों के राजहंस' नामक नाटक के आधार पर सुन्दरी का चरित्र-चित्रण कीजिए।

अथवा

"सुन्दरी एक रूप गर्विता अहंवादी नारी है।" इस कथन की समीक्षा कीजिए।

उत्तर- नायिका सुन्दरी 'लहरों के राजहंस' नाटक की नायिका है। वह राजकुमार नन्द की पत्नी है। सुन्दरी केवल नाम की ही सुन्दरी नहीं वरन् वास्तविक सुन्दरी है। उसका रूप और अनुपम सौन्दर्य दूसरी स्त्रियों के लिए ईर्ष्या क़ा विषय है। अपनी सुन्दरता के कारण ही वह राजकुमार नन्द को अपने संकेत पर चलने पर विवश कर देती है। राजकुमार भी उसके रूप-पाश में निवद्ध रहना ही अपना परम सौभाग्य मानते हैं। नन्द सुन्दरी के सौन्दर्य में खो जाना ही अपने जीवन का लक्ष्य मानते हैं। स्वयं सुन्दरी भी अपने सौन्दर्य से अवगत है। उसे अपने रूप पर अभिमान है। नन्द के प्रति उसका कथन इसी ओर संकेत करता है- "कहते हैं, आपका ब्याह एक यक्षणी से हुआ, जो हर समय आपको अपने जादू से चलाती है।" इस कथन में आत्म-प्रशंसा की एक झलक हमें मिलती है। लेकिन इसमें अत्युक्ति नहीं कि सुन्दरी यक्षिणी सदृश्य सुन्दर है, यदि यक्षिणी नहीं तो वह मानवी से तो अधिक सुन्दर है। नन्द का कथन इसी बात को प्रमाणित करता है- "यक्षिणी हो या नहीं, यह तो मैं नहीं कह सकता पर मानवी तुम नहीं हो। ऐसा रूप मानवी का नहीं होता।"

रूप-गर्विता एवं अहं—रूप-गर्विता सुन्दरी के चरित्र में अहं का प्राबल्य है। सौन्दर्य व एकाधिकार के कारण वह कुछ अहंवादी बन गई है। इसका एक कारण यह भी है कि वह अपने पर बहुत अधिक विश्वास रखती है। इस तथ्य का आभास हमें उसकी इस उक्ति से मिल जाता है- "शायद अपने पर बहुत निर्भर करती हूँ कि वह मन में आने से ही पूरी हो जाती है।" उसे अपने अनुपम सौन्दर्य ने और अधिक अभिमानिनी बना दिया है। उसे इस बात पर अभिमान है कि वह अपने पति को अपने संकेत पर नचाती है, उस पर शासन करती हैं, घर से बाहर विना आज्ञा नहीं जाने देती, सेवक की भाँति शासित करती व हँसी-हँसी में दण्डित भी करती है। अपने इसी एकाधिकार के कारण वह अधिक अहंवादी हो गई है। अपने इसी अहं से वशीभूत होकर वह बुद्ध एवं यशोधरा के सम्बन्धों में कह देती है- "देवी यशोधरा का आकर्षण यदि राजकुमार सिद्धार्थ को बाँध कर अपने पास रख सकता, तो क्या वे आज राजकुमार सिद्धार्थ न होते? गौतम बुद्ध बनकर नदी-तट पर लोगों को उपदेश दे रहे होते?" इतना ही नहीं वह अपने दर्प भरे शब्दों में कहती हैं- "नारी का आकर्षण पुरुष बनाता है, तो

उसका आकर्षण उसे गौतम बुद्ध बना देता है।'' इस कतन में अहं छिपा हुआ है, क्योंकि सुन्दरी राजकुमार नन्द को अपने आकर्षण में पूर्ण रूप से जकड़े हुए हैं।

त्याग की अपेक्षा भोग में विश्वास—सुन्दरी जीवन को भोगना चाहती है। वह त्याग की अपेक्षा भोग में अधिक विश्वास रखती है। वह जीवन के प्रतिक्षण को रंगीन बनाना चाहती है। उसका दृष्टिकोण उपभोगतावादी है। उसकी दृष्टि में नृत्य, पान और भोज के अतिरिक्त अधिक सत्य कुछ नहीं। उसका जीवन-दर्शन बौद्ध-दर्शन से सर्वथा भिन्न है, वह चार्वाक सिद्धान्त के अति निकट है। वह कपिलवस्तु में आमोद-प्रमोद का वातावरण निर्मित करना चाहती है, ताकि कपिलवस्तु के क्षितिज पर उदित बौद्ध-दर्शन का सूर्य अपनी उष्मा से जन-जीवन को झुलसा न सके। वह निवृत्ति-मार्ग को अवरुद्ध करना चाहती है। ऐसा वह क्यों चाहती है? बात स्पष्ट है कि वह नन्द को बुद्ध के आकर्षण से मुक्त रखता चाहती है। वह राजकुमार को अपने रूप के आकर्षण से मुक्त करना नहीं चाहती। कपिलवस्तु के जनजीवन में आमोद-प्रमोद का वातावरण निर्मित करने के लिए वह कामोत्सव का आयोजन करती है। इस उत्सव का आयोजन उस रात किया जाता है, जब प्रातः होते ही देवी यशोधरा भिक्षुणी बन रही थी। सुन्दरी ने इस उत्सव को चिरस्मरणीय बनाने का प्रत्येक सम्भव प्रयत्न किया है। प्रासाद की साज-सज्जा और भिन्न-भिन्न आपानकों से मिश्रित पेय के अतिरिक्त और भी कुछ है, इस उत्सव में। सुनिए सुन्दरी के ही मुख से, ''रात भर नगर वधू चन्द्रिका के चरणों की गति से इस कक्ष की हवा काँपती रहेगी। हवा काँपती रहेगी और ढुलकती रहेगी मदिरा, उसकी आँखों से, उसके एक-एक अंग की गोराई से।''

इच्छा को सर्वोपरि मानने वाली—सुन्दरी अपनी इच्छा को सर्वोपरि मानती है। वह एकाधिकार चाहती है। वह अपने किसी कार्य में बाधा पसन्द नहीं करती। वह अपने मार्ग की प्रत्येक बाधा को दूर करने में संकोच नहीं करती। वह कामोत्सव का आयोजन करती है। साज-सज्जा से लेकर बैठक-व्यवस्था व खान-पान तक की पूर्ण व्यवस्था वह स्वयं देखती है। समय-समय पर सेवकों को निर्देश देती है। अपने कार्य में वह बाधा सहन नहीं करती। आर्य मैत्रेय के मुख से कामोत्सव का आयोजन एक दिन के लिए स्थगित कर देने की बात सुनकर वह कहती हैं-

''कामोत्सव कामना का उत्सव है, आर्य मैत्रेय। मैं अपनी आज की कामना कल के लिए टाल रखूँ ..... क्यों? मेरी कामना मेरे अन्तर की है। मेरे अन्तर में उसकी पूर्ति भी हो सकती है। बाहर का आयोजन उसके लिए उतना महत्व नहीं रखता, जितना कुछ लोग समझ रहे हैं।''

यह सुन्दरी का स्वाभाविक कथन है। वास्तव में अपनी बात को पूर्ण करने के प्रति वह हठी है। वह अपनी इच्छा को मूर्त रूप देना चाहती है। उसे विश्वास है कि वह अपनी प्रत्येक इच्छा को पूर्ण करने की शक्ति रखती है। उसे यह बिल्कुल सहन नहीं है कि किसी की कृपा पर उसे निर्भर होना पड़े। जब उसे ज्ञात होता है कि नन्द अनेक लोगों के पास आयोजन में उपस्थित रहने का अनुरोध लेकर गए थे और निराश होकर लौटे हैं तो वह आवेश और उद्वेग से विक्षुब्ध हो जाती है और कहती है- ''मेरे उत्सव में लोग अनुरोध करने से आएँ इससे उनका न आना ही अच्छा।'' उसके ये शब्द उसके विक्षोभ के द्योतक है। सुन्दरी एक नारी है, वह श्रेष्ठ सुन्दरी व अमित ऐश्वर्य की स्वामिनी होने पर भी नारी ही है, अतः नारी स्वभावगत दम्भ व प्रदर्शन की भावना से सर्वथा मुक्त नहीं। वह अपनी इच्छी की पूर्ति चाहती है।

कोमल प्रेम भावना—सुन्दरी के व्यक्तित्व का सबसे प्रभावशाली तत्व है, उसका नन्द के प्रति असली प्रेम। वह प्रेम की कोमल भावना से सर्वथा परिचित है। नन्द तो पति है, अतः उनके प्रति प्रेम-प्रदर्शन करना कर्तव्य की सीमा में ही आता है। पति-पत्नी में कितना प्रेम है, इसका आभास हमें श्रृंगार प्रसंग से मिलता है। नन्द प्रसन्नतापूर्वक दर्पण उठाकर सुन्दरी के प्रसाधन में सहयोग देता है। सुन्दरी चाहती है कि उसका पति रूठे, उसके साथ कठोर व्यवहार करे ताकि वह पति के अधिक निकट आ सके और उसे अपनी ओर अधिक आकृष्ट कर सके।

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर यही कहा जा सकता है कि सुन्दरी एक रूप-गर्विता अहंवादी नारी है। उसे अपने पर अधिक विश्वास है। उसके चरित्र में नारी सुलभ ईर्ष्या व प्रेम की कोमल भावनाएँ हैं। उसमें पूर्ण स्वाभाविकता है।

प्रश्न 7. 'लहरों के राजहंस' नामक नाटक के आधार पर निम्नलिखित का चरित्र-चित्रण कीजिए- (अ) अलका, (ब) निहारिका।

अथवा

(अ) ''अलका सुन्दरी की बौद्धिकता का प्रतीक पात्र है।'' इस कथन के सन्दर्भ में अलका का चरित्र-चित्रण कीजिए।

(ब) ''निहारिका के चरित्र का सबसे बड़ा गुण है तत्परता।'' -इस कथन के आधार पर निहारिका का चरित्र-चित्रण कीजिए।

उत्तर-

(अ) अलका का चरित्र-चित्रण

अलका 'लहरों के राजहंस' नाटक के स्त्री पात्रों में सुन्दरी के पश्चात् द्वितीय स्थान रखती है। अलका को सर्वप्रथम हम नायिका सुन्दरी से वार्तालाप करते हुए देखते हैं। अलका के चरित्र में बुद्धित्व की अपेक्षा हृदयत्व की प्रधानता है, तर्क की अपेक्षा सहानुभूति की गहनता है। यह सुन्दरी के मत से सर्वथा सहमत नहीं रहती। इसके चरित्र का उल्लेख करते हुए डॉ. सुरेश अवस्थी ने लिखा है, "आरम्भ में लगता है कि श्यामांग और अलका अत्यन्त सहज, कोमल और मौन पारस्परिक आकर्षक सुन्दरी और नन्द के उद्दाम, मुखर और कामसक्त प्रेम का ही प्रतिरूप है।" नाटक के स्त्री पात्रों में अलका का अपना विशेष स्थान है, उसका अपना अलग ही महत्व है। उसके चरित्र की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

1. एक प्रेमिका का रूप—अलका के हृदय में कहीं प्यार का बीजारोपण हो चुका है। वह श्यामांग के प्रति अनुरक्त है। राजरानी सुन्दरी के ये शब्द ..... पर तू किसी से प्रेम करती है ..... इसी ओर संकेत करते प्रतीत होते हैं। कमलताल में पाषाण-खण्ड फेंकने पर जब सुन्दरी श्यामांग को अंधकूप में डाल दिए जाने का आदेश देती है, उस समय भी वह श्यामांग को भूल स्वीकार कर लेने की प्रेरणा देती हुई कहती है " ..... क्यों नहीं स्पष्ट कह देते कि तुम्हारा मन कहीं ओर था और तुम्हें पता नहीं चला कि कब तुमने पत्थर कब उठाए और कब फेंकने लगे।" साथ ही वह सुन्दरी के समक्ष श्यामांग को निर्दोष सिद्ध करती हुई एक अन्य अवसर पर कहती है, " ..... पर मैं कई दिन से देख रही हूँ कि धीरे-धीरे उसे कुछ होता जा रहा है ..... अपनी मानसिक शक्तियों पर से उसका अधिकार उठता जा रहा है .....।" उसका यह कथन यही सिद्ध करता है कि श्यामांग के प्रति उसके हृदय में प्रेम और सहानुभूति है। देखिए उसका यह कथन भी इसी भावना का उद्घाटन करता है, " ..... और उसे सहानुभूति और उपचार की आवश्यकता है, देवी! मैं कितना चाहती थी कि मैं उसे- कि उसके लिए कुछ किया जा सके .....।"

2. सेवा-भावना—अलका सेवा-भावना की साकार प्रतिमा है। राजरानी सुन्दरी द्वारा श्यामांग को उसकी देखरेख में रखने का आदेश दिए जाने पर वह सुन्दरी के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करती है और श्यामांग की सेवा में लग जाती है। वह वैद्य के पास जाकर औषधि लाती है, रात-रात भर जागकर उसकी सेवा करती है। वह हृदय से चाहती है कि श्यामांग किसी प्रकार ठीक हो जाए।

3. कर्तव्य-परायणता—अलका अपने कर्तव्य के प्रति जागरूक है। श्यामांग की परिचर्या में लगी रहने पर भी, वह अपने कर्तव्य राज्य ..... सेवा ..... विमुख नहीं होती। राजरानी से प्रसाधन हेतु अनुरोध करना तथा प्रसाधन में सहायता करना वह अपना कर्तव्य मानती है। राजरानी उसकी स्थिति से अवगत है। तभी तो वह कह उठती है- "तू स्वयं इतनी थकी है, फिर भी क्यों ऐसी हठ कर रह रही है?"

राजरानी सुन्दर के मन को प्रसन्न रखना ही अलका का प्रमुख काम है। राजकुमार नन्द के आगमन में विलम्ब होने पर जब सुन्दरी आहत हो जाती है और मानसिक उद्वेग से तड़प उठती हैं, उस समय अलका सुन्दरी के मन को सान्त्वना प्रदान करती है। राजकुमार के न आने के कई काल्पनिक कारण प्रस्तुत कर सुन्दरी को आश्वस्त करती है। यथा- "न आने का एक कारण यह भी हो सकता है कि समय पर न आ पाने से उनका संकोच ही उन्हें रोके हो ..... या मैत्रेय के साथ आखेट पर निकल गए हों।" केवल शाब्दिक सान्त्वना प्रदान करना ही। उसका कार्य नहीं। वह अनेक यत्न करके राजरानी को सुलाने का प्रयत्न करती है और श्वेतांग को राजकुमार का समाचार लाने के लिए भेजती है। श्वेतांग द्वारा राजकुमार नन्द के दीक्षित होने का समाचार जान लेने पर भी वह सुन्दरी को बताना नहीं चाहती, क्योंकि वह जानती है कि इससे सुन्दरी का दिल टूट जाएगा।

4. वचन का पालन—अलका अपने वचन का पूर्णत: पालन करती है। राजरानी सुन्दरी को उसने वचन दिया था कि वह राजकुमारी के भवन में आ जाने पर तुरन्त सूचना देगी, अत: जब राजकुमार नन्द भवन में प्रविष्ट होते हैं, तो वह सुन्दरी को जगाने की चेष्टा करती है। नन्द द्वारा रोके जाने पर वह कहती है- "पर ..... पर ..... पर ..... परन्तु ..... मैंने उनसे कहा था कि ..... आपके लौटकर आते ही ..... आते ही मैं उन्हें जगा दूँगी।"

5. सूझ-बूझ—अलका समय की गम्भीरता समझती है। जब वह मुण्डित तथा आहत और अस्त-व्यस्त राजकुमार को देखती है, तो वह श्वेतांग को स्नान करवाने और वस्त्र परिवर्तन करवाने का आदेश देती है, ताकि राजरानी राजकुमार को देखकर अधिक दु:ख का अनुभव करे और इसी प्रकार राजकुमार से मिलने को आतुर राजरानी सुन्दरी से वह प्रसाधन हेतु अनुरोध करता है ताकि सुन्दरी के आकर्षक रूप में और अभिवृद्धि हो सके और वह राजकुमार को आकर्षित करने में सफल हो सके। इस प्रकार वह पति-पत्नी को पुन: पास लाने का असफल प्रयास करती है।

निष्कर्ष—उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर हम कह सकते हैं कि अलका का चरित्र उज्जवल और आदर्श है। उसने एक सेविका और एक अनुरक्ता नारी की भूमिका को कुशलतापूर्वक निभाया है। अलका का चरित्र यथार्थ पर आधारित होते हुए भी आदर्शोन्मुख हैं। उसमें कर्तव्य-परायणता सेवा की भावना तथा सहानुभूति व सांत्वना की उदात्त भावनाओं के साथ अनुराग की भी भावना है। वह सेविका होते हुए भी प्रखर बुद्धि व तर्क-शक्ति की अधिकारिणी है।

(ब) निहारिका का चरित्र चित्रण

राजप्रसाद की दासी—निहारिका नाटक के गौण पात्रों की पंक्ति में एक सेविका के रूप में अपने स्थान पर दृढ़तापूर्वक खड़ी है। यद्यपि नाटक में निहारिका की कोई विशेष महत्वपूर्ण भूमिका नहीं, तथापि वह अपने व्यक्तित्व की ओर दर्शकों के मन को आकर्षित करती ही हैं। राजप्रसाद की मुख्य दासी अलका के अभाव (अनुपस्थिति) या व्यस्तता में राजरानी सुन्दरी की सेवा हेतु वह सदैव तत्पर रहती है। वह राजरानी सुन्दरी की सेवा का कोई अवसर हाथ से नहीं जाने देती। सर्वप्रथम दर्शकों के समक्ष वह उस समय उपस्थित होती हैं, जब वह अलका को पुकार रही है। अलका श्यामांग की सेवा में निरत होने के कारण राजरानी के समक्ष उपस्थित नहीं हो सकती, अत: निहारिका स्वयं राजरानी के समक्ष उपस्थित होकर सेवा-कार्य कराना चाहती है, किन्तु राजरानी द्वारा कहे जाने पर कि, "मैं अपना प्रसाधन स्वयं कर लूँगी" वह वहाँ से चली जाती है। दूसरी बात वह अलका के कहने पर श्वेतांग को ढूँढने में व्यस्त दिखलाई पड़ती है।

सेवा में तत्परता—निहारिका के चरित्र का गुण है सेवार्थ तत्परता। वह किसी भी समय सेवार्थ तत्पर रहती है। वह राजरानी सुन्दरी ही की भाँति मुख्य सेविका अलका की आज्ञा का पालन भी पूर्ण निष्ठा से करती है। वह अलका को कोई कार्य करने देना नहीं चाहती। जब अलका राजरानी सुन्दरी के मुख-प्रक्षालन के लिए पानी लेने हेतु प्रस्थित होती है, तो निहारिका "मैं लेकर आती हूँ" -ऐसा कहकर शीघ्र चली जाती है।

निष्कर्ष—यद्यपि नाटक में निहारिका की कोई विशेष भूमिका नहीं है, तथापि उसका अस्तित्व अनिवार्य-सा लगता है। "निहारिका की उपस्थिति नाटक में आवश्यक नहीं", ऐसा कुछ आलोचकों का मत है, किन्तु निहारिका का चरित्र अपनी कुछ अलग ही विशेषता लिए हुए है। श्यामांग की देखरेख में अधिक व्यस्त रहने के कारण अलका राजरानी की सेवा में समय-समय पर उपस्थित नहीं रह पाती और कभी-कभी परिश्रम की शिथिलता के कारण उपस्थित रहते हुए भी कार्य शीघ्रतापूर्वक सम्पादित नहीं कर पाती। हमारी दृष्टि में नाटक में निहारिका का होना आवश्यक और उचित ही है, क्योंकि यदि निहारिका नाटक में नहीं होती, तो अलका का कर्त्तव्य और बढ़ जाता और हो सकता है कि श्यामांग की देखरेख में अधिक व्यस्त रहने के कारण वह राजरानी की सेवा में निष्ठापूर्वक उपस्थित नहीं रह पाती। ❑

प्रश्न 8. देश और काल की दृष्टि से 'लहरों के राजहंस' नाटक की समीक्षा कीजिए।

अथवा

"लहरों के राजहंस नाटक की देशकाल-वातावरण योजना पूर्ण सफल है।" -इस कथन की सत्यता प्रतिपादित कीजिए।

उत्तर- 'लहरों के राजहंस' के नाटककार ने नाटक को यथार्थता प्रदान करने के लिए देशकाल के तत्व को पर्याप्त महत्व प्रदान किया है। नाटक में उस ऐतिहासिक काल का चित्र प्रस्तुत किया गया है, जब कपिलवस्तु के आकाश पर बुद्ध का प्रभाव सूर्य अपनी पूर्ण आभा से दीप्तमान हो रहा था। भोग विलास की ध्वनिमयी, तिमिरमयी रात्रि अपना अस्तित्व समेटे बिदा हो चुकी थी। सर्वसाधारण नागरिक नदी-तट पर गौतम के चरणों में अपनी श्रद्धा के सुमन अर्पित कर रहे थे, किन्तु अभी अभिजात्य सामन्त वर्ग व तथाकथित उच्च वर्ग के लोग अपने को विलास के आकर्षण से सर्वथा मुक्त नहीं कर पाए थे। इसका एकमात्र कारण था, उनका वह आडम्बर और विलासपूर्ण जीवन क्रम जिसे जीने के वे अभ्यस्त हो चुके थे। रूप-

सौन्दर्य व मदिरा का मोहक प्रभाव अभी उन्हें जकड़े हुआ था। फिर भी बुद्ध के प्रभाव से उनका मोह क्रमशः भंग हो रहा था। सुन्दरी जैसे अहंवादी व्यक्तित्व बुद्ध के उस प्रभाव को नकारा करने के लिए कामोत्सव का आयोजन कर रहे थे, ताकि नन्द अथवा कपिलवस्तु के गणमान्य सामन्त बुद्ध के प्रभाव से सर्वथा अछूते बने रहें, किन्तु श्यामांग जैसे लोगों को कमलताल में बुद्ध की छाया दृष्टिगत होने लगी थी।

राजहंस उस छाया से त्रस्त होकर उड़ने को पंख फड़फड़ रहे थे। कामोत्सव के आयोजन की विफलता ने यह सिद्ध कर दिया कि बुद्ध का प्रभाव बढ़ता जा रहा है। प्रत्यक्ष जीवन के रूपाकर्षण और बुद्ध का प्रभाव दोनों नागरिकों को अपनी-अपनी ओर आकर्षित कर रहे थे। नन्द और अन्य सामन्त इसी द्विधा की स्थिति में द्वन्द्व-ग्रस्त जीवन जी रहे थे। किसी एक मार्ग को चुनने में असमर्थ होने के कारण उनके मन का यह द्वन्द्व और भी अधिक घनीभूत होता जा रहा था। नन्द के मन के द्वन्द्व को सफलतापूर्वक चित्रित करके तथा कपिलवस्तु में बुद्ध भगवान के बढ़ते प्रभाव को अंकित करके नाटककार ने तत्कालीन वातावरण को चित्रित करने का सफल प्रयास किया है। नाटककार ने उस ऐतिहासिक वातावरण को यथार्थता व स्वाभाविकता प्रदान करने के लिए तत्कालीन सामाजिक आयोजनों का भी उल्लेख किया है। सुन्दरी का कामोत्सव वास्तव में तात्कालीन विलासपूर्ण जीवन की ओर ही इंगित करता है। कामोत्सव मूर्त रूप तो नहीं ले पाया, किन्तु उसका काल्पनिक रूप कोई कम आकर्षक नहीं। सुन्दरी अलका को कामोत्सव का कार्यक्रम बतलाती हुई कहती है।

"रातभर नगरवधू के चरणों की गति से इस कक्ष की हवा काँपती रहेगी। हवा काँपती रहेगी और ढलती मदिरा उसकी आँखों से, उसके एक-एक अंग की गोराई से।" कपिलवस्तु के राजपुरुष रातभर उस मदिरा में और अन्यान्य मणि-मदिराओं में डूबते-उतराते रहेंगे। यह चित्र है कपिलवस्तु के उच्च वर्ग के जीवन का और दूसरी ओर बुद्ध के बढ़ते प्रभाव और यशोधरा की प्रवज्या का उल्लेख भी नाटककार ने किया है। इस प्रकार तत्कालीन समाज की द्वन्द्व-ग्रस्त जीवन-पद्धति का अत्यन्त मार्मिक चित्रण किया गया है, जो देशकाल के अनुरूप वातावरण निर्मित करने में पूर्णतः सहायक सिद्ध हुआ है। इसी सन्दर्भ में हम देखते हैं कि नाटककार ने देशकाल के अनुरूप ही भाषा का प्रयोग किया है। इससे तात्पर्य सिर्फ इतना है कि नाटककार ने कुछ पारिभाषिक तत्कालीन शब्दावली का प्रयोग किया है। 'विशेषक', 'आपानक', 'कक्ष', 'गवाक्ष', 'अग्नि-काष्ठ' आदि ऐसे ही शब्द हैं। इसके अतिरिक्त बुद्ध-मत का नारा 'धम्मं शरणं गच्छामि' भी नाटक में प्रयुक्त हुआ है। इस प्रकार हम देखते हैं कि नाटककार ने देश काल के अनुरूप वातावरण निर्माण करने का प्रत्येक सम्भव प्रयत्न किया है।

उपर्युक्त ऐतिहासिक परिवेश के यथार्थ चित्रण के साथ ही नाटककार ने वर्तमान के द्वन्द्व-ग्रस्त समाज का भी यथातथ्य चित्रण प्रतीक-विधान द्वारा किया है। नाटककार ने एक स्थान पर नाटक की प्रस्तावना में लिखा है, "यहाँ नन्द और सुन्दरी की कथा एक आश्रय मात्र है, क्योंकि मुझे लगा कि उसे समय में परिक्षेपित किया जा सकता है। नाटक का मूल अन्तर्द्वन्द्व उस अर्थ में यहाँ भी आधुनिक है, जिस अर्थ में आषाढ़ का एक दिन के अन्तर्गत है।" -इस कथन को यहाँ उद्घृत करने से हमारा तात्पर्य केवल यह सिद्ध करना है कि नाटककार ने ऐतिहासिक कथानक को नवीन परिवेश में प्रस्तुत करने व वर्तमान जीवन के अन्तर्द्वन्द्व को चित्रित करने का सही प्रयास किया है। इससे यह ध्वनि निकलती है कि नाटककार ऐतिहासिक परिवेश में अपने देशकाल और वातावरण को चित्रित करना चाहता था। नाटककार ने यह कार्य बड़ी कुशलता से किया है ताकि नाटक की ऐतिहासिकता भी अक्षुण्ण बनी रहे और वर्तमान

जन-जीवन की सहज स्थिति भी स्पष्ट हो सके। इस हेतु नाटककार ने प्रतीक विधान स्वीकार
किया है। वैसे द्वन्द्व किसी काल विशेष की वस्तु नहीं उसका सम्बन्ध तो मानव से है, उसकी
परिस्थितियों से है और उसके मन से है। द्वन्द्व का अस्तित्व मानव के अस्तित्व से जुड़ा हुआ
है। अत: द्वन्द्व कोई नई बात नहीं। जब भी दो आदर्श आमने-सामने होते हैं, मानव मन दुविधा
में पड़ जाता है। वह निश्चित नहीं कर पाता कि कौनसा आदर्श उसके हित में है। चुनाव की
यही विशेषता द्वन्द्व का निर्माण करती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि नाटककार ने वर्तमान जीवन की द्वन्द्व-ग्रस्त स्थिति को
ऐतिहासिक परिवेश में बड़े ही सहज ढंग से चित्रित किया है। नाटककार का यह प्रयास उसकी
सजगवृत्ति का ही परिचायक है। अन्त में हम यही कह सकते हैं कि नाटककार ने 'लहरों के
राजहंस' नाटक में देशकाल नामक तत्व का पूर्ण सावधानी से सफल निर्वाह किया है।
नाटककार ने तत्कालीन परिस्थितियों का सम्यक् चित्रण कर अपनी विशेष प्रतिभा का तो परिचय
दिया ही है, साथ ही नाटक को स्वाभाविक बनाने का भी सफल प्रयास किया है। इस प्रकार
यह स्पष्ट ही है कि नाटक की देश काल योजना नितान्त स्वाभाविक तथा सर्वथा सफल है।

प्रश्न 9. नाटक 'लहरों के राजहंस' के उद्देश्य को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर- 'लहरों के राजहंस' नाटक की रचना पाश्चात्य शैली के अनुसार की गई है। अत
इसका उद्देश्य भारतीय शैली में लिखे प्राचीन नाटकों से सर्वथा भिन्न है। आधुनिक काल के
हिन्दी नाटक प्राय: पाश्चात्य शिल्प का अनुसरण करते प्रतीत होते हैं, अत: इनका उद्देश्य
धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति न होकर वर्तमान जीवन की समस्याओं का चित्रण ही होता
है। समस्या-प्रधान नाटकों में संघर्ष की समाप्ति ही उद्देश्य प्राप्ति के रूप में प्रदर्शित की जाती
है। लहरों के राजहंस की रचना, जैसा कि हमने बताया है, "पाश्चात्य शिल्प के अनुसार हुई
है, अत: इसका उद्देश्य समस्या-प्रधान नाटकों की भाँति संघर्ष का चित्रण करना ही है। हाँ
इस नाटक में यह संघर्ष बाह्य रूप में इतना स्पष्ट नहीं, जितना आन्तरिक रूप में है।"

दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि मानव की द्वन्द्व-ग्रस्त चेतना का चित्रण करना
ही इस नाटक का प्रमुख उद्देश्य है। नन्द और सुन्दरी की ऐतिहासिक कथा को आधार बनाकर
नाटककार ने मानव-चेतना की द्वन्द्व-ग्रस्त स्थिति को चित्रित करने का प्रयास किया है।
नाटककार ने प्रस्तावना में एक स्थान पर लिखा है-

"यहाँ नन्द और सुन्दरी की कथा एक आश्रय मात्र है, क्योंकि मुझे लगा कि उसे समग्र
में परिक्षेपित किया जा सकता है। नाटक का मूल अन्तर्द्वन्द्व उसमें यहाँ भी आधुनिक है। जिस
अर्थ में 'आषाढ़ का एक दिन' के अन्तर्गत।"

नाटककार के इस कथन से यही ध्वनि निकलती है कि नाटककार ऐतिहासिक परिवेश
में वर्तमान के अन्तर्द्वन्द्व को चित्रित करना चाहता है।

नाटक में नन्द, जो नायक है, द्वन्द्व-ग्रस्त स्थिति में जीवन जी रहा है। नाटक के अन्य
पात्र श्यामांग व सुन्दरी की भी यह स्थिति है। श्यामांग के चरित्र को कई समीक्षकों ने नन्द
की द्वन्द्व-ग्रस्त चेतना के प्रतीक रूप में स्वीकार किया है और सुन्दरी के मन का द्वन्द्व अधिक
स्पष्ट नहीं हो सका है। हाँ, उसके मन में खिंचाव अवश्य है। वह नन्द को बुद्ध के प्रभाव
से मुक्त रखना चाहती है। इस प्रयत्न में लिप्त रहने के कारण वह परिस्थितियों से संघर्ष करती
है, किन्तु सफल नहीं हो पाती है। नाटककार ने प्रमुखत: नन्द की द्वन्द्व-ग्रस्त चेतना के चित्रण
को ही अपना लक्ष्य बनाया है। नाटककार को इस दिशा में पर्याप्त सफलता मिली है। नन्द

सुन्दरी के रूप-पाश में निबद्ध विलास प्रिय राजकुमार है। उसकी द्वन्द्व-ग्रस्त मनः स्थिति का चित्रण करते हुए आलोच्य नाटक के समीक्षक डॉ. सुरेश अवस्थी ने भूमिका में लिखा है- "कामा ..... कामासक्त नन्द अपनी परम रूपवती प्रियतमा सुन्दरी के साथ विहार में लीन रहता था। लेकिन नन्द का मन स्थिर भाव से सुन्दरी का रूपभोग नहीं कर पाता, क्योंकि कहीं भीतर उसके मन में अस्थूल और असंसारी तत्वों के प्रति भी आकर्षण है। उसके मन का यही संस्कार और उसे पोषित करने वाली बाह्य परिस्थितियाँ ही नाटक के द्वन्द्व का आधार है। वह घर से लौटे हुए उपेक्षित बुद्ध से क्षमा-याचना करने के लिए जाने को विफल हो जाता है। जिस समय वह हाथ में दर्पण लिए सुन्दरी के श्रृंगार में लीन है, उसी समय 'धम्मं शरणं गच्छामि' का स्वर उठता है और सहसा उसके हाथ का दर्पण गिरकर टूट जाता है। दर्पण का टूटना और कमल ताल में डोलती हुई बुद्ध की कल्पित छाया ऐसे ही प्रतीक हैं, जो नन्द की अस्थिर और दुविधा-ग्रस्त मनोदशा का संकेत करते हैं। अपनी ही क्लान्ति से भरे हुए मृग की बात बार-बार सोचना और दीक्षा के पश्चात् व्याघ्र से लड़ना उसकी इसी मनोदशा की प्रतीकात्मक अभिव्यक्तियाँ हैं।"

डॉ. सुरेश अवस्थी का उपर्युक्त नाटक में वर्णित नन्द की द्वन्द्व-ग्रस्त चेतना का वस्तु चित्र हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है। नाटक में श्यामांग का यह कथन भी नन्द को द्वन्द्व-ग्रस्त चेतना की ही ओर इंगित करता है- "..... मैं इस अँधेरे में नहीं रहना चाहता ..... मैं अकेला नहीं रहना चाहता, मुझे एक किरण ला दो, एक किरण ..... कोई नहीं लायेगा? कोई एक भी किरण नहीं लायेगा।" ..... और लीजिये स्वयं नन्द के मुख से ही उसकी स्थिति के विषय में सुनिए- "तब नहीं लगा था, पर अब लगता है कि केश काटकर उन्होंने मुझे बहुत अकेला कर दिया है। घर से ..... और अपने आपसे भी अकेला! जिस सार्मथ्य और विश्वास के बल पर जी रहा था, उसी के सामने मुझे असमर्थ और असहाय बनाकर फेंक दिया है।"

उपर्युक्त उद्धरणों के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि नाटककार ने नन्द की द्वन्द्व-ग्रस्त चेतना का बड़ा ही मार्मिक व प्रभावपूर्ण वर्णन किया है।

नाटक का शीर्षक 'लहरों के राजहंस' शीर्षक भी नन्द की द्वन्द्व-ग्रस्त चेतना की ही ओर संकेत करता है। लहरों पर डोलने वाले राजहंस के समान ही नन्द का मन चंचल है। वह न तो सुन्दरी के रूप-पाश से ही मुक्त हो पाता है और न सच्चे और निर्विकार मन से भगवान बुद्ध की शरण में ही आ पाता है। वह द्वन्द्व की स्थिति में जी रहा है। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि नाटक का शीर्षक उद्देश्य को स्पष्ट करने में पूर्णतः सहायक हुआ है।

अन्त में हम यह कह सकते हैं कि नन्द की द्वन्द्व-ग्रस्त चेतना का चित्रण ही 'लहरों के राजहंस' नाटक की रचना का उद्देश्य है। नाटक की भूमिका के प्रारम्भ में ही लिखे गए ये शब्द इसी ओर संकेत करते हैं। ❑

प्रश्न 10. अभिनेयता व रंगमंचीयता की दृष्टि से 'लहरों के राजहंस' नाटक की समीक्षा कीजिए।

अथवा

"लहरों के राजहंस एक अभिनेय नाटक हैं।" इस कथन की सत्यता प्रतिपादित कीजिए।

उत्तर- नाटककार मोहन राकेश के नाटक जन-मानस को प्रभावित करने में पूर्णतः सफल रहे हैं। इसका एकमात्र कारण यह है कि मोहन राकेश ने अपने नाटकों की रचना, अभिनय कला एवं रंगमंच की समस्त सम्भावनाओं को ध्यान में रखकर ही की है। उनका नाटक

'आषाढ़ का एक दिन' देश के विभिन्न अंचलों में सफलतापूर्वक रंगमंच पर प्रस्तुत किया जा चुका है। प्रस्तुत नाटक 'लहरों के राजहंस' भी इसी कड़ी का दूसरा नाटक है, जिसका सफल अभिनय कई संस्थाओं द्वारा सफलतापूर्वक किया जा चुका है। यह बात नाटक की अभिनेयता का पुष्ट प्रमाण है।

अभिनय की दृष्टि से एक सफल नाटक में जो विशेषताएँ होनी चाहिए, वे सभी इस नाटक 'लहरों के राजहंस' में विद्यमान है। इस नाटक का कथानक अत्यन्त संक्षिप्त व सुलझा हुआ है। इसमें मुख्य कथा के अतिरिक्त कोई गौण या प्रासंगिक कथा नहीं है। 'श्यामांग का प्रसंग' मुख्य कथानक का ही एक अंग है, वह उससे स्वतन्त्र सत्ता नहीं रखता। नाटक की कथा कपिलवस्तु के राज परिवार से सम्बन्धित है। कपिलवस्तु में गौतम का प्रभाव दिनोंदिन बढ़ता चला जा रहा था। सुन्दरी के अनेक प्रयत्न करने पर भी राजकुमार नन्द ने किसी प्रकार शिक्षा ग्रहण कर ही ली। इस इतिहास प्रसिद्ध घटना को नाटककार ने बड़े ही सहज व प्रभावशाली ढंग से रंगमंच पर प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है।

नाटक की भूमिका में डॉ. सुरेश अवस्थी ने नाटक के स्वरूप विधान के विषय में अपना मत व्यक्त करते हुए लिखा है।

'लहरों के राजहंस' आधुनिक यथार्थवादी नाट्य-रचना पद्धति पर लिखा गया है और उसमें इसी पद्धति के व्यवहारों और रूढ़ियों का पालन किया गया है। एक ही दृश्य बन्ध (set) पर नाटकीय कथा घटित होती है और कथा का विभाजन तीन अंकों में किया गया है। अंकों को दृश्यों में नहीं विभाजित किया गया। यथार्थवादी नाट्य-रचना पद्धति में एक दृश्य-बंध और तीन अंकों वाले नाटकों का विकास आधुनिक रंगमंच के स्वरूप और प्रदर्शन की परिस्थितियों तथा साधनों के कारण हुआ है और उसके पीछे एक शिल्पगत अनिवार्यता है।

इस कथन से सिद्ध हो जाता है कि नाटककार ने रंगमंच की अनिवार्यता को ध्यान में रखकर ही दृश्य-योजना की है। नाटक में सुन्दरी के कक्ष को ही मुख्य दृश्य बनाकर समस्त घटनाओं का अंकन किया गया है। अत: निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि दृश्य योजना-पट परिवर्तन की दृष्टि से नाटक पूर्णत: अभिनेय है।

नाटक की दृश्य-योजना को स्वाभाविकता प्रदान करने के लिए नाटककार ने स्थान-स्थान पर रंगमंच सम्बन्धी आवश्यक निर्देश भी दिए हैं, जिससे मंच सज्जा में स्वाभाविकता आ जाती है। नाटक के प्रथम अंक में पात्रों के रंगमंच पर आने से पूर्व ही नाटककार ने प्रारम्भ में रंगमंच की साज-सज्जा की ओर संकेत किया है।

नाटककार ने नाटक की मुख्य-संवेदना को दृश्य के परिपार्श्व में पट पर एक चित्र के द्वारा प्रस्तुत कर एक नया प्रयोग किया है, जो सर्वथा स्तुत्य है। देखिए, "दायीं ओर गोलाकार चबूतरा। सुन्दर बिछावन, तकिए। पीछे एक ऊँचा दीपाधार, शिखर पर पुरुष मूर्ति- बाहें फैली हुई हैं तथा आँखें आकाश की ओर उठी हुई हैं। दायीं ओर एक झूला और उससे थोड़ा हटकर एक मत्स्याकार आसन। आसन के पास ही मदिराकोष्ठ। इसी ओर मंच के आगे के भाग में एक छोटा-सा दीपाधार शिखर पर नारी मूर्ति, बाँहें सवलित तथा आँखें धरती की ओर झुकी हुई।"

इसके अतिरिक्त मंच को स्वाभाविकता प्रदान करने तथा अभिनय को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए नाटककार ने रंग और प्रकाश के साथ संगीत स्वरों की भी सहायता ली है। साथ ही रंग-संकेत व ध्वनि-योजना के द्वारा पात्रों के हाव-भाव को प्रदर्शित किया है। कमलताल के हंसों का कूजना प्रत्यूप की शंख-ध्वनि भिक्षुओं के समवेद स्वर ऐसे ही ध्वनि-संकेत हैं।

गम्भीर भाव से आगे आता हुआ कुछ व्यंग्यपूर्ण स्वर में मत्स्याकार आसन की ओर जाता हुआ आदि रंग-संकेत है, जो पात्रों के हाव-भाव प्रकाशित करते हैं।

नाटक की पात्र योजना अभिनय के सर्वथा अनुकूल है। नाटक में कुल 9 पात्र हैं जिनमें नायक-नायिका के अतिरिक्त 2 दास, 2 दासियाँ, एक गृह-प्रबन्धक, एक नायिका का मित्र और एक भिक्षु। इसके अतिरिक्त गौतम बुद्ध व देवी यशोधरा का भी उल्लेख नाटक में किया गया है। वास्तव में रंगमंच पर अधिक समय तक रहने वाले पात्र 2-3 ही हैं- नन्द, सुन्दरी और अलका। पात्र संख्या सीमित होने के कारण दर्शक सरलता से उनसे अपना रागात्मक सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं। उनके चरित्र में भी पूर्ण स्वाभाविकता है। उनकी वेशभूषा का यद्यपि कोई उल्लेख नहीं किया गया, तथापि ऐतिहासिक पात्रों की युगानुकूल वेशभूषा में सर्वथा उपयुक्त रहेगी। वैसे पात्र प्रारम्भ प्रारम्भ में जिस वेशभूषा में आते हैं, उसी में अन्त तक अभिनय करते हैं। समग्रत: हम यह कह सकते हैं कि नाटक की पात्र-योजना अभिनय की दृष्टि से सर्वथा सफल है।

'लहरों के राजहंस' नाटक की भाषा भी अभिनय के अनुकूल है। वह शुद्ध साहित्यिक भाषा होते हुए भी प्रवाहयुक्त एवं भावानुकूली है। उसमें सरसता है, सरलता है और चित्रात्मकता है। यद्यपि उसमें कुछ पारिभाषिक शब्द-विशेषक, आपानक आदि का प्रयोग हुआ है, तथापि उसमें दुरूहता नहीं आने पाई। ये शब्द हाव-भाव द्वारा स्वत: स्पष्ट हो जाते हैं। नाटककार ने पूर्ण व्यावहारिक भाषा का प्रयोग किया है। दर्शक उसे भली-भाँति समझ सकते हैं। उसकी साहित्यिकता प्रवाह में बाधक नहीं, भाषा दर्शकों का मन रमाने में सक्षम है। यहाँ मैं नाटक की भाषा का एक उद्धरण प्रस्तुत करने का लोभ संवरण नहीं कर सकता।

"रात बीतने दे, फिर अपने मन से पूछना। रात भर नगर वधू चन्द्रिका के चरणों की गति में इस कक्ष की हवा काँपते रहेगी और ढुलती रहेगी मदिरा, उसकी आँखों से, उसके एक-एक अंग की गौराई से। कपिलवस्तु के राजपुरुष रात भर उस मदिरा में और अन्यान्य मणि मदिराओं में डूबते उतराते रहेंगे। तू देखेगी और विश्वास नहीं कर सकेगी। जो नहीं देखेंगे, वे तो कल्पना भी नहीं कर पायेंगे।"

दर्शकों का यह सुन कर रस विभोर हो जाना स्वाभाविक ही है। अत: यह कह सकते हैं कि नाटक की भाषा उसके अभिनय में सहायक है।

नाटककार ने नाटक में दर्शकों की रुचि बनाए रखने के लिए कुछ ऐसे प्रसंगों का समायोजन किया है कि दर्शक मुग्ध भाव से देखते ही रह जाते हैं। प्रथम अंक में 'कामोत्सव' के प्रसंग में नाटककार ने रोचक, सरस और प्रभावपूर्ण शब्दावली का प्रयोग किया है। इसी प्रकार द्वितीय अंक में नन्द सुन्दरी का प्रणय प्रसंग श्रृंगार प्रसंग दर्शकों के मन में रस घोल देता है। इसके अतिरिक्त दर्शकों के मन में उत्सुकता और रहस्य की भावना जागृत करने में श्यामांग के प्रलाप विशेष से सहायक हुए हैं।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि 'लहरों के राजहंस' मोहन राकेश का एक अभिनय नाटक है। 'आषाढ़ का एक दिन' की भाँति यह नाटक भी दर्शकों का मनोरंजन करने में, उनकी रुचि परिष्कृत में सहायक सिद्ध हुआ है। इसके साथ ही हम यहाँ यह भी कहना चाहते हैं कि श्यामांग प्रसंग, नन्द के दीक्षित होने का प्रसंग तथा आनन्द भिक्षु के मंच पर उपस्थित होने का प्रसंग अभिनय की दृष्टि से विवादास्पद होते हुए भी बाधक नहीं है, बल्कि नाटककार ने कुछ विशेष प्रयोजन की सिद्धि के लिए इनका आयोजन किया है। ❑

प्रश्न 11. 'लहरों के राजहंस' नाटक के नामकरण की सार्थकता प्रतिपादित कीजिए।

उत्तर- नाटक 'लहरों के राजहंस' के नामकरण के विषय में नाटककार ने अपनी स्वतन्त्र चेतना का परिचय दिया है। यह नाटक ऐतिहासिक कथानक को आधार मानकर लिखा गया है, किन्तु नाटककार ने इस नाटक का नामकरण करते समय पुरातन परम्परा को ध्यान में नहीं रखा है। नाटककार ने नायक व नायिका के नाम को आधार न बनाकर, नाटक के मूल संघर्ष या द्वन्द्व को ही नामकरण के लिए चुना है। यहाँ उसने अपने ऐतिहासिक नाटक के नामकरण के विषय में इतिहासेत्तर नाटकों के नामकरण की परम्परा का निर्वाह किया है अर्थात् 'लहरों के राजहंस' नामक नाटक का नामकरण नायक व नायिका के नाम पर आधारित न होकर नाटक में व्यंजित मूलभाव द्वन्द्व को ही आधार मानकर किया है। नाटक की भूमिका में नाटककार ने प्रस्तुत नाटक की रचना के आधार को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि इस नाटक की रचना प्रेरणा संस्कृत के महाकवि अश्वघोष के महाकाव्य 'सौंदरनन्द' से मिली। 'सौंदरनन्द' में कपिलवस्तु के राजकुमार नन्द के चंचल व अस्थिर मन की उपमा लहरों पर डोलने वाले राजहंस से दी गई है। नाटक का अध्ययन करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि लहरों पर डोलने वाले राजहंस के समान ही नन्द का मन भी चंचल है। वह न तो सुन्दरी के रूप पाश से ही मुक्त हो पा रहा है और न सच्चे निर्विकार मन से बुद्ध की शरण में जाता है। उसकी मन स्थिति लहरों के थपेड़ों से कभी इधर कभी उधर डोलने वाले राजहंस के समान ही अस्थिर है। इस दृष्टि से नाटक का शीर्षक सर्वथा उपयुक्त व सार्थक है।

नाटककार ने नाटक में कमलताल के राजहंस का भी उल्लेख किया है। वह दो प्रसंगों में इन राजहंसों का उल्लेख करता है। एक प्रसंग में श्यामांग के द्वारा पत्थर फैंकने से त्रस्त राजहंस असमय ही कूज उठते हैं और दूसरे प्रसंग में न जाने कब वे कमलताल को छोड़कर उड़ जाते हैं। नाटककार ने व्यर्थ ही कमलताल के राजहंस की चर्चा नहीं की। इसके पीछे इसका विशेष प्रयोजन है। इन राजहंसों का सम्बन्ध सीधे नाटक के मुख्य पात्र व मूल द्वन्द्व के साथ जुड़ा हुआ है। कमलताल के राजहंसों का कूजन कितना प्रभावशाली है, यह सुन्दरी के आकर्षित मन से पूछो। वह कामोत्सव के आयोजन में व्यस्त है कि संध्या के झुटपुटे में उसे राजहंसों के कल कूजन के स्वर सुनाई पड़ते हैं। सुन्दरी राजहंसों से कितनी प्रभावित है, यह उसके इस कथन से स्पष्ट हो जाता है।

"इस स्वर की कहीं तुलना है? कह नहीं सकती क्या अधिक सुन्दर है- ओस से लदे कमलों के बीच राजहंसों के इस जोड़े की किलोल या झुटपुटे अंधेरे में दूर सुनाई देता इनका कूजन! आज पहली बार इन्हें इस समय बोलते सुना है। कोई गौतम बुद्ध से कहे कि कभी कमलताल के पास आकर इससे भी वे निर्वाण और अमरत्व की बात कहें। ये एक बार चकित दृष्टि से उनकी ओर देखेंगे, फिर काँपती हुई लहरें जिधर ले जायेंगी, उधर को तैर जायेंगी।" इस उद्धरण का अन्तिम अंश- 'फिर काँपती लहर जिधर ले जायेगी, उधर को तैर जायेंगी भी नाटक के शीर्षक की सार्थकता प्रदान करता है। यदि हम गम्भीरतापूर्वक विचार करें, तो हमें स्पष्टत: ज्ञात हो जाता है कि कमलताल के राजहंसों का प्रसंग एक अन्य महत्व भी रखता है, वह है इसकी प्रतीकात्मकता। कमलताल के राजहंस राजकुमार नन्द के ही प्रतीक बनकर चित्रित हुए हैं। गौतम को इंगित कर कहा गया सुन्दरी का यह वाक्य- "कोई गौतम बुद्ध से कहे कि कभी कमलताल के पास आकर इनसे भी वे निर्वाण और अमरत्व की बात करें।" उस स्थिति में अधिक सार्थक हो उठा है, जब राजभवन में सुन्दरी के रूप-सरोवर में निरन्तर क्रीड़ा करने वाले राजहंस की क्रीड़ा में महात्मा बुद्ध के भिक्षा न पाकर लौटने से बाधा पड़

जाती है और वह महात्मा बुद्ध की ओर आकर्षित होता हुआ प्रासाद से चला जाता है।

सुन्दरी उस राजहंस नन्द को अपनी प्रेमाकुल-रूप तरंगों में बाँध रखने का प्रयत्न करती ही रह जाती हैं। कमलताल से उड़ गए राजहंसों की बात सुनकर उसे आश्चर्य होता है कि वे सरोवर के आकर्षण-पाश से सर्वथा मुक्त होकर कैसे उड़ गए।

"क्या उसके पंखों में इतनी शक्ति रही होगी कि अपनी इच्छा से उड़कर कहीं चले जाते ? और जिस ताल में इतने दिनों से थे, उसका अभ्यास, उसका आकर्षण क्या इतनी आसानी से छूट सकता था।"

किन्तु छूट गया वह आकर्षण न जाने क्यों और कैसे ? तभी तो नन्द सुन्दरी के रूप-पाश से मुक्त होकर गौतम के पास चला गया, क्योंकि राज-भोग और सुन्दरी के रूप-तरंगों पर चलते-चलते उसका मन ऊब गया और फिर गौतम के प्रभाव की तरंगें उसे अपनी ओर खींच ले गयी, वह चला गया और फिर भूल गया उन लहरों को। वास्तव में वह छाया जो श्यामांग ने कमलताल पर उतरती देखी थी- "बुद्ध की छाया राजहंसों को लील गई" और इस प्रकार श्यामांग का कथन- "मुझे लगा कि वह छाया अब उन सबको लील जाएगी, ताल में तैरते हुए राजहंसों के जोड़े का भी मुझे डर लगा।" सत्य ही सिद्ध हुआ। इस प्रकार हम देखते हैं कि कमलताल के राजहंसों का प्रतीक विधान प्रभावपूर्ण है। नाटककार ने इस प्रतीक के द्वारा नन्द के अस्थिर मन का ही चित्रण किया है। लहरों के राजहंस वास्तव में द्वन्द्व ग्रस्त चेतना वाले नन्द का ही प्रतीक है।

नाटककार ने श्यामांग को भी नन्द के अन्तर्मुखी व्यक्तित्व के प्रतीक रूप में चित्रित किया है। वह नाटक में दुहरा अभिनय कर रहा है- एक स्वयं का और दूसरे नन्द की द्वन्द्व-चेतना का श्यामांग के प्रलाप में भी एक रहस्य है। वास्तव में यह प्रलाप नन्द के मन के द्वन्द्व को ही स्पष्ट करता है। श्यामांग ने 'लहरों के' प्रतीक प्रयोग के द्वारा नन्द के मन पर पड़ती हुई बुद्ध की छाया की बात की ओर भी संकेत किया है। लहरों का यह प्रतीक प्रयोग नाटक के शीर्षक की सार्थकता प्रदान करने में सहायक सिद्ध होता है। देखिए ..... "..... इन लहरों पर से ..... लहरों पर से ..... यह छाया हटा दो ..... मुझमें ..... मुझसे वह छाया नहीं ओढ़ी जाती .....।" ..... "लहरों में पानी नहीं ..... कहीं भी पानी नहीं है ....." "वास्तव में लहरों का पानी सूख गया है तभी तो राजहंस नन्द भोग में अनिच्छा सी प्रकट करता हुआ गौतम के पास चला जाता है।"

अन्त में हम यही कह सकते हैं कि नाटक का शीर्षक 'लहरों के राजहंस' सर्वथा सार्थक और उपयुक्त है वह नाटक के नायक नन्द की ओर संकेत करता है। वास्तव में लहरों के राजहंस नन्द ही है। कमलताल के राजहंसों की भाँति वह भी लहरों के हिंडोले पर झूलता हुआ कभी इधर कभी उधर चला जाता है। वह भोग और निवृत्ति के मध्य भटकता रहता है। उसे कोई निश्चित दिशा नहीं मिल पाती, पर कमलताल पर पड़ती हुई छाया से वह त्रस्त हो उठता है। वह बिना कुछ विचार किए उड़ जाता है। नाटककार ने लहरों के राजहंस की द्वन्द्व ग्रस्त मनः स्थिति का बड़ा ही सजीव चित्र नाटक में प्रस्तुत किया है। हम देखते हैं कि आरम्भ से लेकर अन्त तक नन्द अपनी दुविधा से त्रस्त ही रहा है। उसका मन लहरों के राजहंस की भाँति इधर-उधर भटकता ही रहा है। उसे अन्त तक शान्ति नहीं मिली। नाटक के अन्त में उस भटकते राजहंस को उड़कर जाते हुए ही चित्रित किया गया है। अन्त क्या हुआ नाटककार ने पाठकों पर छोड़ दिया हैं। अन्त में हम इस विवेचन के आधार पर यही कह सकते हैं कि नाटक का शीर्षक सर्वथा उपयुक्त है। ❑

महत्वपूर्ण व्याख्याएँ

लहरों के राजहंस

1. संकेत- ''किसी के बाण से आहत नहीं हुआ। अपनी ही थकान से मर गया। बाण से क्षत-विक्षत मृग को देखकर मन में कभी कोई अनुभूति नहीं होती। होती भी है, तो केवल प्राप्ति की हल्की-सी अनुभूति। परन्तु बिना घाव अपनी ही क्लान्ति से परे मृग को देखकर जाने कैसा लगा।''

सन्दर्भ—प्रस्तुत अवतरण 'लहरों के राजहंस' नाटक से अवतरित है। इसके रचियता श्री मोहन राकेश हैं। प्रस्तुत अवतरण में नाटककार ने नन्द के मन को क्लान्त और उद्विग्नता का सजीव चित्रण किया है।

व्याख्या—अपनी क्लान्ति से मृत मृग के दर्शन से उत्पन्न ग्लानि के विषय में अपने विचार व्यक्त करते हुए नन्द अपनी पत्नी सुन्दरी से कहता है कि मेरे द्वारा निरन्तर अनुसरण किये जाने पर वह मृग दौड़ते-दौड़ते थककर गिर गया और उसकी इहलीला समाप्त हो गई। उस मृत मृग को देखकर मेरा मन ग्लानि से भर गया। आखेट में अपने बाण से क्षत-विक्षत मृग को देखकर मुझे ग्लानि नहीं होती, वरन् लक्ष्य-बेध की सफलता पर गर्व का ही अनुभव है, किन्तु बिना प्रहार के थककर गिर गए मृग को देखकर मेरा मन बैठ गया। मैं अवाक् कुछ क्षण तक उस मृत मृग को देखता रहा और अपनी असफलता पर खीजता रहा। मेरा मन करुणा-द्रवित हो मूक भाव से रो पड़ा तब मैं उस मृत मृग की ओर अधिक समय तक नहीं देख सका और उदास मन लेकर घर को लौट पड़ा।

विशेष—इस अवतरण में नाटककार ने नन्द के मन की परिवर्तित स्थिति का चित्रण किया है और संकेत द्वारा यह बताने का यत्न किया है कि बुद्ध की करुणा अप्रत्यक्ष रूप से नन्द के अर्न्तमन में प्रवेश कर गई है।

2. संकेत- ''मैं कभी सोचता नहीं था कि एक मरा हुआ मृग भी इतना सजीव लग सकता है। लग रहा था जैसे हाथ लगाते ही वह आशंका से काँप जायेगा और उठकर भाग खड़ा होगा। ..... आखेटकों ने उसे उठा लाना चाहा, तो मैंने उन्हें मना कर दिया। कहा कि उसे वहीं पड़ा रहने दो, उसी रूप में, मृत और जीवित!''

सन्दर्भ—इस अवतरण में राकेशजी ने नन्द के मन की विचित्र स्थिति का सजीव चित्रण किया है।

व्याख्या—मृत मृग के दर्शन से उत्पन्न अपनी मानसिक उद्विग्नता एवं खिन्नता का वर्णन करते हुए नन्द अपनी पत्नी सुन्दरी से कहता है कि थककर गिरे हुए उस मृग को देखकर मेरे मन में एक टीस उठी। वह मृत मृग भी मुझे सजीव-सा प्रतीत हो रहा था। मेरे लिए यह सब कल्पनातीत था। वह मृत मृग ऐसा लग रहा था मानो गहरी निद्रा में निमग्न सुख-स्वप्न देख रहा था और जो अभी हाथ का स्पर्श पाकर उठ खड़ा होगा और भाग जायेगा। मैं चाहते हुए भी उसे स्पर्श न कर सका। मेरा मन आशंकाओं से भर उठा। मेरे अनुचार उस मृग को साथ लाना चाहते थे, किन्तु मैंने उनसे मना कर दिया और आदेश दिया कि उस मृग को वहीं पड़ा रहने दो, ताकि यह भ्रम ही बना रहे कि वह मृत है अथवा जीवित।

3. संकेत- ''कामोत्सव कामना का उत्सव है, आर्य मैत्रेय! मैं अपनी आज की कामना कल के लिए टाल रखूँ क्यों? मेरी कामना मेरे अन्तर की है। मेरे अन्तर में ही

उसकी पूर्ति भी हो सकती है। बाहर का आयोजन उसके लिए उतना महत्व नहीं रखता, जितना कुछ लोग समझ रहे हैं।''

सन्दर्भ—प्रस्तुत अवतरण श्री मोहन राकेश के नाटक 'लहरों के राजहंस' से अवतरित है। इस अवतरण में नाटककार ने आयोजन की विफलता की आशंका से उद्विग्न सुन्दरी की खीज भरी मनः स्थिति को चित्रित किया है।

व्याख्या—आर्य मैत्रेय द्वारा यह कहे जाने पर कि 'कामोत्सव' का आयोजन यदि आज स्थगित करके कल रखा जा सकता, सुन्दरी झुँझला उठती है। उसका मन इस समय अत्यधिक उद्विग्न है। फिर भी वह अपने को संयत करके सेत्र से कहती है- ''आर्य मैत्रेय! कामोत्सव कामना का उत्सव होता है, कामना की पूर्ति समय पर ही होती है। आज की कामना को कल के लिए टाला नहीं जा सकता। हाँ, इसके आयोजन के बाह्य स्वरूप को स्थगित किया जा सकता, किन्तु इसके आन्तरिक स्वरूप की पूर्ति तो आवश्यक है। मेरी कामना की पूर्ति अवश्य होगी चाहे कामोत्सव का आयोजन हो अथवा न हो। कामना की पूर्ति होना आवश्यक है। कामना का समुद्भव मन से होता है और मन से ही इसकी पूर्ति हो सकती है। मेरी कामना की पूर्ति का स्वरूप बाह्य समारोह कामोत्सव भले ही न हो सके, किन्तु मैं अपने मन के किसी कोने में तो अपनी कामना को साकार होते हुए देख सकती हूँ। कामोत्सव का आयोजन न होने पर मैं अपनी प्रसन्नता को समाज के समक्ष व्यक्त नहीं कर सकूँगी, किन्तु मन की प्रसन्नता तो मेरे वश में है। अतः मुझे इस बात की चिन्ता नहीं कि कामोत्सव का आयोजन हो या न हो।''

4. संकेत- '' ..... वहाँ पड़ा कल वह कैसा लग रहा था .....। और इस समय प्रभात का फीका चाँद भी मुझे कुछ वैसा ही लगा- कोमल, अक्षत और निर्जीव।''

सन्दर्भ—यह अवतरण 'लहरों के राजहंस' नामक नाटक से लिया गया है। इसके रचियता है श्री मोहन राकेश। इस अवतरण में लेखक ने नंद की अव्यवस्थित मनःस्थिति का चित्रण किया है।

व्याख्या—क्लान्ति से मृत-मृग वाली घटना नन्द के मर्म को छू गई है। वह चाहते हुए भी उस घटना को नहीं भूला सकता, कामोत्सव न होना था और न हुआ, परिणामतः सुन्दरी की खिन्नता बढ़ती ही गई, खोज में उसने कुछ बर्तन भी फेंक दिए गए, किसी प्रकार उसे नींद आ गई, किन्तु नन्द नहीं सो सका। किसी प्रकार रात्रि निःशेष हुई और चन्द्र पश्चिम दिशा में अस्त होने लगा। उस कान्तिहीन चन्द्रमा को देखकर नन्द को उस मृत-मृग का स्मरण हो आता है। वह उस दृश्य को स्मरण कर कह उठता है कि वन प्रदेश में पड़ा वह मृत मृग बरबस मेरे मन को आकृष्ट कर रहा था। वह कान्तिहीन और फीका चाँद इस समय मुझे वैसा ही लग रहा है, जैसा वह मृग-कोमल, अक्षत और निर्जीव। जिस प्रकार वह अनाहत मृत अक्षत होते हुए भी अपनी सजीवता खो चुका था, इसी प्रकार यह पूर्ण और चन्द्र भी कान्तिहीन होने के कारण निर्जीव-सा हो रहा है।

5. संकेत- ''नहीं अभी मदिरा नहीं लूँगा, भिक्षु! तुम्हारी मुस्कराती हुई भौंहे जिससे यह न कह सकें, स्मृति से इतना डर क्यों लगता है, नन्द? अपनी स्मृति को मदिरा की विस्मृति में डुबो क्यों देना चाहते हो? (मदिरा कोष्ठ के पास से हटता हुआ) यद्यपि इसका उत्तर मैं तुम्हें दे सकता था। कह सकता था कि स्मृति से बचने के लिए तुमने जो स्वांग रचा है, वह मैंने नहीं रचा, इसलिए।''

सन्दर्भ—प्रस्तुत अवतरण श्री मोहन राकेश के नाटक 'लहरों के राजहंस' से अवतरित

है। इस अवतरण में नाटककार ने राजकुमार नन्द की द्वन्द्व-ग्रस्त व्यक्तित्व का एक पहलू चित्रित किया है।

व्याख्या—राजकुमार नन्द मदिरा कक्ष की ओर जाता है, मदिरा-पात्र उठाता है किन्तु शीघ्र ही वापस रख देता है और मदिरा-पान न करने का अपना निश्चय व्यक्त करता है। वह भिक्षु आनन्द की दृष्टि में अपने को दुर्बल सिद्ध नहीं करना चाहता। आनन्द के चले जाने पर भी वह मदिरा-पान करना नहीं चाहता ताकि कोई उससे यह न कह सके कि स्मृति की मदिरा द्वारा विस्तृत करना भी मन की दुर्बलता का ही प्रतीक है। नन्द आनन्द की दृष्टि में अपने को दुर्बल सिद्ध नहीं करना चाहता। वह यह भी जानता है कि आनन्द भी मन की दुर्बलता से सर्वथा मुक्त नहीं। यदि नन्द मदिरा पान के द्वारा यथार्थ को भुलाने का उपक्रम करता है तो क्या अनुचित है? क्या आनन्द ने भी दीक्षा ग्रहण कर यथार्थ को भुलाने का यत्न नहीं किया? मदिरापान द्वारा स्मृत करना और भिक्षु बनकर संसार से मुख मोड़ लेना दोनों बातों का एक ही उद्देश्य है, यथार्थ को भुला देना।

6. संकेत- ''क्यों मैंने जान-बूझकर आत्मविनाश को निमन्त्रित किया और फिर स्वयं ही आत्मरक्षा के लिए उस तरह लड़ गया? आत्मरक्षा और आत्मविनाश इन दो प्रवृत्तियों के बीच मैं एक साथ जिया कैसे और क्यों? ..... और क्या उस तरह जीकर सुख मिला? वह क्या सुख की ही खोज थी जिसने उस तरह जीने के लिए विवश किया?''

सन्दर्भ—प्रस्तुत अवतरण 'लहरों के राजहंस' नामक नाटक से लिया गया है। इसके रचयिता श्री मोहन राकेश हैं। इस अवतरण में नाटककार ने द्वन्द्व-ग्रस्त राजकुमार नन्द की अव्यवस्थित मनोदशा को मार्मिक ढंग से चित्रित किया है।

व्याख्या—राजकुमार नन्द अतीत की घटना का स्मरण करते हुए कहता है कि तथागत द्वारा केश कटवा दिए जाने पर में अपना संयम खो बैठा। मेरा मन ग्लानि से भर उठा और उसी दशा में वन में व्याघ्र से मुठभेड़ हो गयी। मैंने उस व्याघ्र से भिड़कर आत्म विनाश का मार्ग क्यों चुना, इसको मैं अभी तक नहीं समझ पाया? फिर आत्मरक्षा की प्रवृत्ति ने मुझे बचने का उपाय बतलाया। मैं वहाँ से भाग खड़ा हुआ। आज मैं अपनी उस दशा के विषय में सोचता हूँ तो मन आश्चर्य से भर उठता है। समझ में नहीं आता मैं व्याघ्र से क्यों लड़ा और फिर क्यों भाग खड़ा हुआ। शायद यह मैंने सुख की खोज की प्रेरणा से ही किया। पहले अपनी ग्लानि को मिटाने के लिए मैंने व्याघ्र से संघर्ष किया और फिर अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए वहाँ से भाग खड़ा हुआ। इस प्रकार कुछ क्षणों में आत्म विनाश और आत्म-रक्षा दोनों प्रवृत्तियों के बीच जीवन जिया। शायद सुख की खोज से प्रेरित होकर ऐसा किया ही था? मनुष्य प्रति पल सुख-प्राप्ति की लालसा से प्रेरित होकर ऐसा ही कार्य करता है।

7. संकेत- ''या यह केवल मन का विद्रोह था- बिना विश्वास एक विश्वास के अपने ऊपर लादे जाने के लिए? या इसलिए कि उस समय मैं इतना सत्वहीन क्यों हो गया कि भिक्षु आनन्द के कर्तनी उठाने पर चिल्ला नहीं सका, नहीं यह विश्वास मेरा नहीं है- मैं तुम्हारा या किसी का विश्वास ओढ़कर नहीं जी सकता, नहीं जीना चाहता।''

सन्दर्भ—प्रस्तुत अवतरण श्री मोहन राकेश कृत नाटक 'लहरों के राजहंस' से अवतरित है। इस अवतरण में नाटककार ने नन्द के असामान्य व्यवहार का विश्लेषण उसी के मुख से करवाया है।

व्याख्या—तथागत गौतम द्वारा बरबस केश कटवा दिए जाने के पश्चात् नन्द का मन ग्लानि, विद्रोह और वितृष्णा से भर उठा। वह अपनी इस मानसिक अस्थिरता की अवस्था में वन में जाकर व्याघ्र से भिड़ गया और पुनः चेतन्य होने पर प्रासाद को लौट आया। भवन में प्रविष्ट होने पर भिक्षु आनन्द के साथ कुछ क्षण वार्तालाप किया, तदन्तर नन्द अपनी पूर्व मानसिक स्थिति का विश्लेषण करते हुए कहता है कि मेरा असामान्य व्यवहार शायद मेरे मन के विद्रोह की ही परिणति थी। मेरा मन बरबस किसी आदर्श को स्वीकार नहीं कर सका। यही कारण है कि महात्मा बुद्ध द्वारा बलात् मुंडन करवा दिए जाने पर मेरा मन विद्रोह कर उठा। अनास्था पूर्वक किसी आदर्श के आरोपित किए जाने पर ऐसा होता ही है। या मेरे मन का यह विद्रोह मेरी दुर्बलता का प्रतिकरण था। आज तब मैं उन क्षणों के विषय में सोचता हूँ तो मेरा मन तड़प उठता है। उन क्षणों में न जाने क्या हो गया था? मेरे केश कटवा दिए गए और मैं विरोध नहीं कर सका। मुझे उसी समय उनके आदेश का विरोध करना चाहिए था कि 'यह मार्ग मेरा नहीं, यह विश्वास मेरा नहीं। मैं तुम्हारे आदर्शों को ग्रहण कर जीना नहीं चाहता।' किन्तु उस समय मैं वैसा नहीं कर सका। शायद इसलिए बाद में मुझे पश्चाताप हुआ और मैं अपनी उसी मानसिक उद्वेग की स्थिति में वन में जाकर व्याघ्र से भिड़ गया, आज सोचता हूँ तो पाता हूँ कि मेरा वह व्यवहार उपहासास्पद एवं विवेकहीन था।

8. संकेत- ''इतना समझ में आता है कि जिये जाने से जीवन धीरे-धीरे चुक जाता है। फिर हर उन्मेष का परिणाम एक निमेष है और काल के विस्तार में उन्मेष और निमेष दोनों अस्थायी हैं कि सुख सुख नहीं, काई पर फिसलते पाँव का स्पन्दन-मात्र है, मात्र रेत में डूबती बूँदी की अकुलाहट। परन्तु वह स्पन्दन, वह अकुलाहट ही क्या जीवन का पूरा अर्थ, जी लेने का कुल पुरस्कार नहीं है? आकाश में लटकते नीले-काले बिन्दु- कोरे सिद्धान्तों के वे अधिक स्थायी, अधिक सत्य, कैसे हैं?''

सन्दर्भ—प्रस्तुत अवतरण श्री मोहन राकेश रचित नाटक 'लहरों के राजहंस' से अवतरित है। इस अवतरण में नाटककार ने समय की अस्थिरता, गतिशीलता और सुखों की निस्सारता के विषय में अपने विचार राजकुमार नन्द के माध्यम से व्यक्त किए हैं।

व्याख्या—राजकुमार नन्द जीवन की विषमता के विषय में चिन्तन करते हुए कहता है कि जीवित रहने का स्वांग भरने से धीरे-धीरे जीवन की अवधि पूर्ण हो जाती है। भाव यह है कि यदि कोई मनुष्य संसार में जीवित रहने की लालसा व्यक्त करता है, जीने का उपक्रम करता है तो धीरे-धीरे उसका जीवन समाप्त हो जाता है। पल-पल कर समय व्यतीत होता जाता है। उन्मेष और निमेष समय की गति के सूचक हैं, ये दोनों ही अस्थायी हैं, जीवन भी तो अस्थायी ही है। जीवन का सुख-सांसारिक सुख अस्थायी है, क्षण भंगुर है। जीवन सुख की व्याख्या करते हुए राजकुमार नन्द कहता है कि काई पर फिसलते हुए पाँव का जो स्पन्दन होता है या रेत में मिलते समय बूँद को जो क्षणिक अकुलाहट होती है, वही सुख है। अर्थात् सुख पद स्पन्दन और बूँद की अकुलाहट से बढ़कर और कुछ भी नहीं। जीवन के सुखों को ही वास्तविक जीवन जीने की कला मानते हैं। उसकी दृष्टि में जीवन-पथ की यह फिसलन, यह स्पन्दन, यह अकुलाहट जीवन जीने का पुरस्कार ही है। आकाश-मण्डल को अपनी प्रभा से विभूषित करने वाले ये नक्षत्र भी उस पग-स्पन्दन से उस अकुलाहट से भिन्न नहीं। ये उनकी अपेक्षा अधिक विश्वसनीय और स्थायी नहीं। तात्पर्य यह है कि आकाश के नक्षत्रों की ही भाँति रेत में गिरी बूँद और पग-स्पन्दन की ध्वनि अस्थायी होते हुए भी मोहक और आकर्षक होती है। ❑

1 हिन्दी एकांकी : स्वरूप और विकास

प्रश्न 1. हिन्दी एकांकी की परिभाषा दीजिए व उसके रचना विज्ञान का संक्षेप में परिचय दीजिए।

अथवा

एकांकी और नाटक में अन्तर स्पष्ट कीजिए। एकांकी के प्रमुख लक्षण क्या हैं?

अथवा

नाटक और एकांकी में अन्तर स्थापित कीजिए।

उत्तर-

एकांकी की परिभाषा

"एकांकी एक अंक का दृश्य काव्य है जिसमें एक ही कथा और कुछ ही पात्र होते हैं। उनके माध्यम से एक विशेष उद्देश्य की अभिव्यक्ति करते हुए केवल एकांकी ही प्रभाव की सृष्टि की जाती है।" दूसरे शब्दों में "एक ही अंक में समाप्त होने वाला नाटक एकांकी कहलाता है।"

रचना विधान—एकांकी के रचना विधान को कुछ इस प्रकार समझा जा सकता है। जिस प्रकार उपन्यास में सम्पूर्ण जीवन चित्रित होता है और एकांकी में केवल एक घटना। जिस प्रकार कहानी अपनी सीमा में बंधी होती है उसी प्रकार एकांकी की भी होती है। यही सीमा एकांकीकार की रचना प्रक्रिया की मर्यादा भी होती है। नाटककार को सुविधा है कि वह जीवन को चाहे जितना फैला सकता है। उसके कण-कण या प्रत्येक अंश का विशद् वृहद् चित्र प्रस्तुत कर सकता है, किन्तु एकांकीकार को यह सुविधा नहीं है। उसके सामने होती है एक मार्मिक घटना, एक विशेष परिस्थिति या एक उत्तेजना भरा क्षण। अतः एकांकीकार का कार्य नाटककार के कार्य की अपेक्षा अधिक कठिन अधिक सूक्ष्म तथा अत्यधिक मर्यादित होता है। एकांकी में विस्तार की आवश्यकता नहीं है, उस तार की आवश्यकता होती है जो क्षण के अपने अंशों को जोड़-तोड़ कर उसे किसी एक संज्ञा या नाम में ढाल देता है। इसलिए एकांकी का शिल्प तथा कृतित्व नाटक के शिल्प तथा कृतित्व से अधिक परिष्कृत होता है। एकांकी की कला नाटक की कला से भिन्न है। नाटक कलाकार को अपनी कला दर्शाने का, विशेष अवसर होता है। उसका रचना क्षेत्र, चूँकि विशाल होता है अतः उसके रंग भी एक से नहीं होते। उसके शिल्प में भी एकरूपता तो होती है, परन्तु उसका प्रवाह या सम्पादन या कृतिकर्म एक-सा नहीं होता। उसमें उतार-चढ़ावों की दूरियाँ अधिक होती हैं। उनका फासला अधिक होता है। अतः नाटक की बनावट में समरसता अपने फैलाव में कई बार विविध हो जाती है, किन्तु एकांकी में कृतिकार को समरसता, विचार सम्पादन, घटना प्रवाह, शिल्प तथा कृतित्व को समेटकर चलना होता है। जीवन के प्रति उसकी निष्ठा अतिशय सहज रूप से अपने पात्रों के माध्यम से पाठक के निकट आती-जाती है और उस छोटे से घटना चक्र में पाठक स्वयं को भी एक पात्र मानकर जीने लगता है। उसका अनुभव एकाएक पात्र का अनुभव बन जाता है और वे दोनों शनैः-शनैः एकाकार हो जाते हैं। यही रचनाकार के कृतित्व व शिल्प अथवा रचना विधान की सफलता है।

सफल रचना की दृष्टि से एकांकी का कैनवास छोटा हो, उसका आकार सीमित अवधि का हो (35 से 45 मिनट) उसमें अभिनय तत्व की सहजता हो तथा उसके रंग निर्देश में कोई कठिनाई या आपत्तिजनक कार्य न हो। इन सभी रेखाओं का ध्यान रखकर यदि एकांकी रचना की रचना की जाती है तो यह सफलता की ओर बढ़ने वाला प्रगतिशील तथा मर्यादित चरण होगा तथा एकांकी के रचना विधान के अनुसार होगा।

एकांकी की मूल विशेषताएँ अथवा लक्षण—एकांकी की निम्नलिखित मूल विशेषताएँ होती हैं—(1) एकांकी एक ही घटना, परिस्थिति या समस्या प्रधान होती है। (2) एकांकी का प्रारम्भ और अन्त दोनों ही आकस्मिक होते हैं। (3) एकांकी का लक्ष्य सदैव निश्चित रहता है। (4) एकांकी जीवन या समाज के एक विशिष्ट पहलू का चित्र होता है। (5) एकांकी में संकलन त्रय का निर्वाह सफलता का मापदण्ड होता है। (6) इसमें पात्र सीमित और कथा से सुसम्बद्ध होते हैं। (7) एकांकी में कुतूहल एवं अन्तर्द्वन्द्व की प्रधानता होती है। (8) एकांकी में अप्रधान प्रसंग के लिए कोई स्थान नहीं है।

एकांकी और नाटक में अन्तर—रचना शिल्प और कथावस्तु की दृष्टि से जो अन्तर कहानी और उपन्यास में है लगभग वैसा ही अन्तर एकांकी और नाटक में भी है।

(1) नाटक में एक से अधिक अंक होते हैं, जबकि एकांकी में एक ही अंक होता है। (2) नाटक में मुख्य कथा के साथ-साथ अन्य गौण कथाएँ भी चलती है, जबकि एकांकी में केवल एक कथावस्तु होती है। (3) नाटक में बड़ी संख्या में पात्र और अनेक प्रसंग होते हैं, जबकि एकांकी में बहुत सीमित पात्र और प्रसंग होते हैं। (4) अनेक कथानकों के कारण नाटक का प्रभाव बहुआयामी होता है, जबकि एकांकी का कथानक केवल एक ही प्रभाव की सृष्टि करता है। ❑

प्रश्न 2. हिन्दी एकांकी के उद्भव और विकास पर नीतिदीर्घ निबन्ध लिखिए।

अथवा

एकांकी का जन्म, उद्भव और विकास पर संक्षेप में अपने विचार प्रस्तुत कीजिए।

अथवा

आधुनिक एकांकी का जन्म किन परिस्थितियों में हुआ और उसका विकास किस प्रकार हुआ? संक्षेप में लिखिए।

उत्तर-

आधुनिक एकांकी का जन्म

आधुनिक एकांकी एक स्वतन्त्र विधा के रूप में प्रगति कर रही है। वैसे तो भारत के प्राचीन काव्य में इसका संकेत मिलता है। जैसे अंक, वीथी, प्रहसन आदि किन्तु आधुनिक एकांकी को इनसे जन्मी विधा नहीं माना जाता। दोनों में अन्तर यह है कि भारतीय काव्य से अंक, वीथी, प्रहसन तथा अन्य विधाओं को जिस प्रकार प्रस्तुत किया गया है वह आधुनिक एकांकी के प्रस्तुतीकरण, उसके कथ्य तथा शिल्प से भिन्न है।

आधुनिक एकांकी का जन्म 'मिरेकल्स' और 'मॉरेलिटीज' जैसे नाटक रूपों से माना जाता है। ये नाटक धर्म-प्रचार के लिए खेले जाते थे। अंग्रेजी साहित्य में शेक्सपीयर के लम्बे नाटक अपने यौवन पर थे। इन नाटकों के बीच-बीच में विनोद पूर्व 'इन्टरल्यूड' (अन्तर्नाटक) खेले जाते थे। इन्हीं इन्टरल्यूडों में आधुनिक एकांकी के जन्म की झलक मिलती है। उन्नीसवीं शताब्दी में लम्बे नाटकों के प्रस्तुतीकरण के मध्य दर्शकों के मनोरंजन के लिए एक प्रकार के प्रहसन खेले जाते थे। इन प्रहसनों को 'कर्टन रेजर' (पट उत्थानक) कहा जाता था। सच तो यह है कि इसी 'कर्टन रेजर' को आधुनिक एकांकी का जन्मदाता कहा जाता है। सन् 1903 में 'मंकीज पॉ' (बन्दर का पंजा) कर्टन रेजर के रूप में खेला गया था जो बहुत सफल हुआ।

इसके पश्चात् इब्सन, शॉ तथा ओ नील जैसे अंग्रेज नाटककारों ने इस विधा में पर्याप्त सुधार किया तथा इसे प्रहसन से हटाकर गम्भीर विषयों के लिए उपर्युक्त सिद्ध किया।

उद्भव और विकास—अध्ययन की सुविधा के लिए आधुनिक हिन्दी एकांकी को तीन भागों में बाँटा जा सकता है—

(1) प्रारम्भ काल (2) विकास काल और (3) स्वातंत्र्योत्तर काल।

प्रारम्भ काल—इस काल का आरम्भ भारतेन्दु युग से माना जाता है। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के रूप में एक ऐसे व्यक्तित्व ने जन्म लिया जिसने हिन्दी को प्रत्येक क्षेत्र में आगे बढ़ाया। उसका जीवन दर्शन एकदम नवीन था। उनकी हिन्दी के प्रति सेवाएँ अविस्मरणीय हैं। उन्होंने "वैदिकी हिंसा, हिंसा न भवति" लिखकर हिन्दी एकांकी के जन्म का प्रारम्भ किया। तो भी इस एकांकी की रचना में संस्कृत नाटक की झलक है, तथापि इसमें एक नयेपन का भी समावेश है जो पुरानी परिपाटी को त्याग कर नवीन मार्ग का अनुसरण करने को आतुर था। न तो ये नाटक संक्षिप्त थे, न इसमें संकलन क्रय का निर्वाह था, न ये नाटक आरम्भ, संघर्ष तथा चरम-सीमा के शिल्प विधान का स्पर्श करते थे, किन्तु तो भी ये नाटक प्राचीन लोक से (परम्परा से) हटकर चलने का संकेत देते थे। इस युग के नाटककारों में भारतेन्दुजी, प्रतापनारायण मिश्र, राधाकृष्णदास, बद्रीनारायण चौधरी, अम्बिकादत्त व्यास तथा बालकृष्ण भट्ट आदि का नाम प्रमुख है।

विकास कला—बीसवीं शताब्दी का आरम्भ हिन्दी के विविध विकास का काल माना जाता है। बीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण में एकांकी लिखे तो गये, किन्तु या तो वे कोरे अनुवाद थे या भावानुवाद थे। उन पर बंग तथा मराठी और सबसे अधिक अंग्रेजी का प्रभाव था। धीरे-धीरे हिन्दी से यह प्रभाव हटता गया। सन् 1939 में बाबू जयशंकर प्रसादजी का "एक घूँट" प्रकाशित हुआ। यह एकांकी के एकदम निकट की वस्तु थी। कथावस्तु में प्रभाव था। संकलन त्रय की स्थिति भी स्पंष्ट थी तथा प्रस्तुति का दृष्टिकोण भी भारतेन्दु युग से भिन्न तथा विकसित था।

इसी काल में गुरुदेव रवीन्द्र के एकांकी प्रकाश में आये। उनकी "मुक्तधारा" ने एक नये मार्ग के खुल जाने तथा विकास के नये आयामों का संकेत दिया। इसी समय इब्सन, शॉ, सिंज, बेरी, ओ नील तथा गाल्सवर्दी व एकांकी के क्षेत्र में नये प्रयोग किये । इन प्रयोगों के लिये स्थान खोजने में कठिनाई नहीं उठानी पड़ी। स्कूलों, कॉलेजों व युनिवर्सिटियों में मंच तैयार थे। रचनाकारों के सामने एक विशाल और उपयोगी क्षेत्र था। अत: एकांकी की कला शनैः शनैः निखरती चली गई। इसी काल में रेडियों ने भी एकांकी के विकास में अभूतपूर्व योगदान दिया। फीचर तथा रिपोर्ताज को ध्वनि के माध्यम से अपने पाठकों तक पहुँचाने में इस काल का अद्‌भुत सहयोग है। इस काल में सत्येन्द्र का 'कुणाल', पृथ्वीनाथ शर्मा का 'दुविधा', राजकुमार वर्मा का 'पृथ्वीराज की आँखें' व भुवनेश्वर का 'कारवाँ' प्रसिद्ध है। इन्हीं के साथ-साथ श्री अश्क, श्री विष्णु प्रभाकर, श्री उदयशंकर भट्ट, श्री जगदीशचन्द्र माथुर, श्री एस. पी. खत्री आदि ने अपनी कृतियाँ हिन्दी में भेंट कीं।

स्वातंत्र्योत्तर काल—स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् एकांकी में नये परिवर्तन आये। आज का एकांकी अपने शिल्प विधान में अपने चरम की ओर पूर्ण सफलता के साथ बढ़ता जा रहा है। वह प्रगति के नये आयामों का स्पर्श कर रहा है। उसमें हास्य के साथ मानव-मन का गहन विश्लेषण भी सम्मिलित हो गया है। आज का लेखक मनोविज्ञान, घुटन तथा आदमी की रोजमर्रा (नित्य प्रति) की जिन्दगी से जूझ रहा है। उसके सामने आदमी अपनी सम्पूर्ण विविधताओं के

साथ रचनाकार के सामने हैं। आज का एकांकीकार पश्चिमी विद्या 'एब्सर्ड' के साथ-साथ चल रहा है। इस क्षेत्र में श्री धर्मवीर भारती, मोहन राकेश, मुद्राराक्षस, विनोद रस्तोगी, शंभुनाथसिंह, नरेश मेहता, विपिन अग्रवाल, शान्ति मेहरोत्रा अपना पूरा सहयोग दे रहे हैं। ❑

प्रश्न 3. एकांकी के तत्वों पर प्रकाश डालिए।

अथवा

एकांकी की रचना-प्रक्रिया में किन-किन तत्वों की आवश्यकता होती है?

उत्तर- **एकांकी के तत्व**—उपन्यास, कहानी व नाटक में जो तत्व होते हैं—वे ही तत्व एकांकी के भी होते हैं। क्योंकि उपन्यास, कहानी व नाटक से एकांकी का पारिवारिक सम्बन्ध है। तत्वों की दृष्टि से नाटक, कहानी व उपन्यास की परम्परा एक ही है।

एकांकी को तत्व-दृष्टि से 6 भागों में बाँटा गया है जो इस प्रकार हैं— 1. कथानक, 2. पात्र, 3. संवाद, 4. अभिनय तथा रंग-निर्देश, 5. देशकाल, 6. उद्देश्य।

1. कथानक—जो स्थान शरीर में मेरूदण्ड (रीढ़ की हड्डी) का है, वही स्थान एकांकी के कथानक का होता है । एकांकी के लिए कथानक चुनते समय सावधानी से काम लेना होता है, क्योंकि कथानक के माध्यम से ही रचनाकार अपने आपको समाज के सामने प्रस्तुत करता है। कथानक यदि समय की माँग पूरी करने में सफल हो तो वह अधिक उपयोगी होगा। वैसे कथानक को चुनते समय, इतिहास, पुराण व लोक को ध्यान में रखना चाहिए। कथानक इतिहास, पुराण, धर्म, समाज, राजनीति अथवा लोक प्रसिद्धि के आधार पर भी हो सकता है, किन्तु उसका सम्बन्ध जीवन की यथार्थ स्थिति से होना चाहिए। केवल कल्पना से कथानक का निर्वाह नहीं हो सकता। उसमें जीवन की सच्चाई, उसके सुख-दुःख तथा उसकी भोगी हुई इकाई का समावेश होना चाहिए। एकांकी के कथानक में बूंद-समुद्र का नाता होना चाहिए। चूँकि एकांकी यदि किसी एक घटना की झलक है—बिम्ब है—विजिन है—अतः कथानक इतना सशक्त, सुघड़, सहज और प्रभाववान होना चाहिए कि उसका वाचन अथवा उसे देखते समय-एक अनिवार्य या एक विशिष्ट आत्मीयता का अनुभव करे। यह माने कि जो कुछ पढ़ देख या सुन रहा है—वह उसके या उस जैसे अनेक मनुष्य के साथ घटता है बीतता है—और वह जीवन की अपनी सीमा में होने वाली-बीतने वाले या वैसे ही सम्भावित सत्य का एक अंश है। सूर्य को यदि सम्पूर्ण जीवन के कुहासों, कुण्ठाओं, संघर्षों तथा उसकी सफलता अथवा असफलता, उसके आनन्द अथवा उसके रुदन की प्रतीक है। एकांकी में निहित कथानक एक ऐसी खुराक है—जो बीमार समाज या व्यक्ति के आन्तरिक या बाह्य रोग की ताकतवर औषधि का एक घूँट है।

कथानक के प्रवाह को अथवा उसके प्रस्तुतीकरण को तीन अंगों में विभक्त किया जा सकता है—1. आरम्भ, 2. संघर्ष, 3. चरम सीमा।

आरम्भ—कथानक का आरम्भ बड़ी सावधानी से होना चाहिए। ध्यान रखना चाहिए कि एकांकी का केनवास (क्षेत्र या धरती) बहुत छोटा होता है। आरम्भ में कथानक में त्वरा, तेजी या गति की तीव्रता नहीं होनी चाहिए। उसमें उत्सुकता, जिज्ञासा, कौतूहल की सृष्टि होना चाहिए। आरम्भ का रूप एक हल्की-सी धारा के रूप में हो-जो जन्म लेकर अपने प्रवाह-मार्ग का निर्माण स्वयं करे। उसमें रचनाकार की ओर से इतनी शक्ति होना चाहिए कि वह प्रवाह के मार्ग में आने वाले संघर्षों को झेल जाय और अपने चरम की ओर बढ़ जाय। अतः एकांकी के कथानक का आरम्भ सहज, धीर तथा घटना के प्रति अग्रसर होने वाला होना चाहिए। उसमें लहरों की गति हो पर तूफान का आवेग न हो अन्यथा संघर्ष का निर्वाह नहीं हो सकेगा और चरम की पूर्ति असम्भव हो जायेगी।

संघर्ष—संघर्ष ही एकांकी की गति है, प्रवाह है, शक्ति है। यह एकांकी का वह भाग है—जहाँ पात्रों के हृदय मंथन, उसके संलाप, प्रलाप, घुटन, कुण्ठा, चाह, असफलता, हास्य, विनोद अथवा आत्मीयता के क्षण का चित्रण होता है। घमासान युद्ध से जो स्थिति एक वीर, कुशल योद्धा की होती है—वह स्थिति संघर्ष को उपस्थित करते समय कृतिकार की होती है। उसके पात्र जिस आन्तरिक या बाह्य परिस्थिति से जूझते हैं उसका चित्रण एकांकीकार को सावधानी से करना होता है, क्योंकि इस परिस्थिति के चित्रण के ठीक पश्चात् एकांकी की चरम सीमा आ जाती है। जहाँ से आगे राह नहीं है। संघर्ष की स्थिति का चित्रण ही एकांकीकार की सफलता का द्योतक होता है।

चरम सीमा—जैसे कोई पर्वतारोही पहाड़ की चोटी पर पहुँचकर—एक सांस लेता है—और फिर अपनी सफलता पर आनन्दित हो जाता है—वैसे ही एक एकांकीकार—अपनी रचना के चरण पर पहुँचकर सन्तुष्ट हो जाता है, क्योंकि, अब उसे कुछ करना शेष नहीं रह गया है। अत: चरम सीमा पर पहुँचते-पहुँचते एकांकीकार अपने पूर्ण विवेक, जिज्ञासा, रचना के कृतित्व अथवा आत्मीयता से पूर्ण हो जाता है। चरम सीमा का अर्थ है कि रचनाकार जहाँ पहुँचना चाहता था—वहाँ पहुँच चुका। वह अपनी कला का परिचय दे चुका, अपने पात्रों के माध्यम से अपने पाठक, श्रोता या दर्शक के सामने उपस्थित हो चुका।

2. पात्र—एकांकी में पात्रों की स्थिति शरीर के अंगों जैसी होती है। कथानक की पूर्ति के लिए पात्रों का चयन किया जाता है । एकांकी में पात्रों की भीड़ नहीं होना चाहिए । प्रमुख पात्र के आसपास बहुत कम पूरक पात्र होने चाहिए। पात्रों की संख्या अधिक हो जाने पर—कई रसोइये रसोई का सत्यानाश कर देते हैं। अत: पात्र का चुनाव करते समय कथानक के महत्व तथा उसकी स्थिति की अनुरूपता का ध्यान रखना चाहिए।

प्राचीन परम्परा के अनुसार पात्र—विशेषकर प्रमुख पात्र इतिहास, पुराण व लोक प्रसिद्ध होना चाहिए। प्राचीन परम्परानुसार नायक धीरोदत्त, धीर प्रशान्त या धीर ललित होना चाहिए। नायिका स्वकीया परकीया या गणिका होनी चाहिए, किन्तु आजकल यह परम्परा टूट चुकी है। आज के एकांकी का नायक एक राजा भी हो सकता है—और एक रंक भी। देखना यह होता है कि जीवन की विविधता तथा विषमता के चित्रण के लिए—किस प्रकार के पुरुष व स्त्री की आवश्यकता है। इन्हीं समस्यानुकूल पुरुष व स्त्री पात्रों द्वारा एकांकी के भाव-संसार की सृष्टि करनी होती है। इन्हीं पात्रों के चरित्र-चित्रण द्वारा घटना या क्षण को भाव-जगत से स्थूल जगत (स्टेज) पर लगाकर खड़ा करना होता है। समय एकरूपता एकांकी में चित्रित नहीं हो सकती—किन्तु घटना या क्षण के अपने अस्तित्व का चित्रण उसमें अवश्य हो सकता है। प्रभाव उत्पन्न करने तथा एकांकी के कार्य व्यापार को चित्रित करने का लक्ष्य ही एकांकी के पात्रों द्वारा पूरा किया जा सकता है।

3. संवाद—संवाद कथा के वाहक होते हैं। संवाद कथा के प्रवाह को गति देते हैं, पात्र की स्थिति स्पष्ट करते हैं, संघर्ष को, घुटन को या कथा को स्पष्ट करते हैं, पात्रों के व्यक्तित्व का विकास करते हैं। अत: संवादों में भाषा की सरलता, संक्षिप्तता, पात्रानुकूलता, प्रभाव उत्पन्न करने की शक्ति और विषय तथा पात्र के प्रति रुचि उत्पन्न करने की शक्ति होनी चाहिए। संवादों में भाषा तथा शैली का समावेश कर लिया जाना चाहिए। भाषा पात्रानुकूल होना चाहिए। शैली में पात्र की स्थिति का ध्यान रखना चाहिए। भाषा जटिल न हो—समस्या, समय और विषय के अनुकूल हो। संवादों के स्वागत भाषण कम से कम हो। वैसे भी संवाद जितने छोटे होंगे उतने ही प्रभाव उत्पन्न करने वाले होंगे। भाषा तथा संवादों से एकांकी में हास्य एवं विनोद

की सृष्टि का भी प्रावधान होना चाहिए। जो कार्य अंधेरे घर में दीपक करता है—वही कार्य एकांकी में संवाद करते हैं।

4. अभिनय तथा रंग संकेत—एकांकी भी अभिनय का एक प्रमुख तत्व है। कथानक को रंगमंच पर जीवित कर देना उसे साकार कर देना, उसके अभिप्रेत तत्व को या उद्देश्य को चित्रित कर देना अभिनय कहा जा सकता है। एकांकी में अभिनय पात्र की परीक्षा है। अभिनय जितना वास्तविक सहज और स्वाभाविक होगा—एकांकी उतना सफल होगी, पाठक पर अपना प्रभाव डाल सकेगी और व्यक्ति तथा समाज की संगतियों व विसंगतियों को उतना ही यथार्थ रूप में प्रकट कर सकेगी। प्राचीन नाटकाचार्यों ने अभिनय को चार भागों में विभक्त किया है—(1) आंगिक, (2) वाचिका, (3) आहार्य्च, (4) सात्विक, किन्तु आज का नाटक लेखक इन तत्वों से बँधा नहीं है। वह स्वतन्त्र है। वह समय, समस्या तथा पात्रानुकूल वेशभूषा, पात्रों की आयु, आदि का निर्देश करता है। वह रंग संकेतों द्वारा पात्रों के अभिनय, मंच की प्रस्तुति तथा कथा के भाव पक्ष को उभारकर, सजाकर अपने पाठक के समक्ष प्रस्तुत करता है।

5. देशकाल—नाटक की प्रस्तुति में देश व काल का विशेष ध्यान रखना होगा। रचनाकार देश व काल के आधार पर ही समाज तथा व्यक्ति की समस्याओं को, उनके संघर्षों को, द्वन्द्वों को, घुटन को तथा युगीन वातावरण को चित्रित करता है। देश और काल का अन्तर निश्चय ही एकांकी की देह को विकृत कर देगा व उसकी आत्मा का हनन हो जायेगा।

6. उद्देश्य—प्रत्येक रचना का एक न एक उद्देश्य होता है। उद्देश्यहीनता रचना केवल भटकाना है। अत: एकांकी की रचना का भी उद्देश्य होना चाहिए। इतिहास के पृष्ठों पर से लेकर किसी घटना द्वारा मानव के लोभ, कोई सामाजिक विसंगति, कोई व्यक्तिगत समस्या, जीवन के प्रति किसी अभाव का चित्रण ही एकांकी के उद्देश्य हो सकते हैं। उद्देश्य पूर्ति का अर्थ है—एकांकी का समापन और पाठक की तृप्ति। उद्देश्य पूर्ति के समय रचनाकार को बड़ी सावधानी से कार्य करना चाहिए। उसे कोरा उपदेशक नहीं बन जाना चाहिए। यदि उद्देश्य पूर्ति के समय यदि पात्र उपदेश देने लगेगा तो उसका प्रभाव पाठक पर अच्छा नहीं पड़ेगा। उद्देश्य पूर्ति तो कुछ इस भाँति होना चाहिए—जैसे कोई धूप का मारा यात्री किसी छाया में शीतलता का अनुभव करे। अत: वह सहज और स्वाभाविक हो। ❑

प्रश्न 4. एकांकी के विभिन्न प्रकारों का वर्णन कीजिए।

अथवा

शैली, विषय और टेकनिक के आधार पर एकांकी के भेदों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर- वर्तमान समय में हिन्दी में अनेक एकांकी सग्रह सामने आये हैं। एकांकी लेखन के प्रारम्भिक काल से लेकर आज तक उनकी लेखन शैली में उनके प्रतिपाघों, विषय तथा टेकनिक शैली शिल्प में परिवर्तन होते रहते हैं। अत: इन्हीं दृष्टियों से एकांकी का विभाजन किया जा सकता है।

प्रतिपाघ शैली के अनुसार एकांकी भेद

पाश्चात्य नाटककारों ने प्रतिपाघ शैली के अनुसार एकांकी के सुखान्त और दुखान्त दो भेद किये हैं। इसमें दुखान्त शैली हमारी परम्परा के अनुकूल नहीं है। इन भेदों के अतिरिक्त निम्नलिखित भेद किये जा सकते हैं—

1. सरल शैली के एकांकी—इस शैली में एकांकी उद्देश्य के अनुकूल ही लिखता है। उसका कथन वक्र न होकर सरल और सरस होता है। श्री रामकुमार वर्मा का "परीक्षा एकांकी" इस शैली में है।

2. गम्भीर शैली के एकांकी—इस शैली में एकांकीकार गम्भीर विषयों का प्रतिपादन गम्भीर भाषा में करता है। विचारात्मक और दार्शनिक एकांकी इसी शैली में लिखे जाते हैं। भट्टजी का "धुप शिखा' इसी शैली में है।

3. भावात्मक शैली के एकांकी—इस प्रकार के एकांकी नाटकों में नाटककार अनुभूति तथा कल्पना प्रधान कथानकों को अपनाता है। भट्टजी का 'विश्वामित्र' इस शैली में है।

4. व्यंग्यात्मक शैली के एकांकी—इस शैली के नाटककार जो कुछ कहना चाहता है, उसे ऐसे शब्दों में कहता है, जिससे दूसरी ही ध्वनि निकलती है। भुवनेश्वर का 'स्ट्राइक' इसी प्रकार की एकांकी है।

5. हास्यात्मक शैली के एकांकी—इस शैली में एकांकीकार हास्य विनोद की सृष्टि करता चलता है। भगवतीचरण वर्मा की 'सबसे बड़ा आदमी' इस शैली की सफल एकांकी है।

6. प्रतीकात्मक शैली के एकांकी—इस शैली के अन्तर्गत नाटककार अमूर्त को मूर्त रूप देकर कल्पना और अनुभूति से कथानक की सृष्टि करता है, प्रसादजी का 'एक घूँट' एकांकी इसी शैली में है।

7. गीतात्मक शैली के एकांकी—इस प्रकार के नाटकों में कल्पना और अनुभूति की प्रधानता रहती है। भट्टजी का 'मत्सय गन्धा' इसी शैली की एकांकी है।

8. चारित्रिक शैली में एकांकी—इस शैली में एकांकीकार किसी व्यक्ति का चरित्र-चित्रण करता है। सेठ गोविन्ददास की 'अधिकार-लिप्सा' एकांकी इसी प्रकार की है।

9. समस्या प्रधान शैली के एकांकी—इस शैली में एकांकीकार सामाजिक, धार्मिक राजनैतिक आदि समस्याओं में किसी एक को लेखक कथानक का रूप देता है नाटककार या तो समस्याओं का समाधान स्वयं करता है या उसको सुलझाने का क़र्णधार पर छोड़ देता है।

10. आलोचनात्मक शैली के एकांकी—इस शैली में एकांकीकार वर्तमान जीवन को प्रकाश में लाने का प्रयत्न करता है। उसका कथानक कल्पित होते हुए भी यथार्थ प्रतीत होता है।

11. सम्वादात्मक शैली के एकांकी—इस शैली में एकांकीकार कथानक को सम्वाद रूप में प्रस्तुत करता है। सेठ गोविन्ददास की 'चतुष्पद' एकांकी इसी शैली में है।

12. घटना प्रधान शैली के एकांकी—इस प्रकार की एकांकियों में नाटककार का ध्यान घटना के तारतम्य की ओर अधिक रहता है। इतिहास, पुराण अथवा किसी कल्पनाग्रस्त घटना के आधार पर नाटककार किसी आदर्श की स्थापना करना चाहता है।

विषय के अनुसार एकांकी के भेद

1. पौराणिक एकांकी—पौराणिक कथाओं के आधार पर नाटक रचना का उद्देश्य प्राचीन संस्कृति, प्राचीन सभ्यता की पृष्ठभूमि में वर्तमान की प्रेरणा देना होता है। डॉ. रामकुमार वर्मा की 'राजरानी सीता' एकांकी इसी प्रकार की है।

2. ऐतिहासिक एकांकी—एकांकीकार अपने देश के ऐतिहासिक महापुरुषों की घटनाओं, वीरों और सुधारकों की कहानियों में सामग्री चयन करके उसे कथानक का रूप देता है। डॉ. राजकुमार वर्मा की 'शिवाजी' ऐतिहासिक एकांकी का सफल उदाहरण है।

3. सामाजिक एकांकी—एकांकीकार सामाजिक रीति-रिवाज, आचार-विचार, रहन-सहन से पर्याप्त सामग्री चयन करता है। वह अनेक गुत्थियों को सुलझाकर पाठकों को संकेत करता रहता है। श्री उदयशंकर भट्ट की 'स्त्री का हृदय' इसी प्रकार की एकांकी है।

4. दार्शनिक एकांकी—इस प्रकार के एकांकियों में नाटककार अपना कथानक दर्शन

और आध्यात्म क्षेत्र से चुनता है। कथानक में आदि से अन्त शांत-रस रहता है । हिन्दी में लेख गोविन्ददास और डॉ. राजकुमार वर्मा ने इस प्रकार की कई एकांकी लिखीं हैं।

5. **दृश्यात्मक एकांकी**—इस प्रकार की एकांकी नाटकों का कथानक दैनिक जीवन की साधारण घटनाओं से चुना जाता है। इन घटनाओं को अभिनयात्मक रूप देकर सर्वसाधारण के लिए आकर्षण बना देता है।

6. **मनोवैज्ञानिक एकांकी**—इस शैली के पाठकों में नाटककार मनोविज्ञान के आधार पर विचार परम्परा को प्रस्तुत करता है। हिन्दी में अभी तक इस शैली के एकांकी नाटकों की संख्या कम है।

निष्कर्ष—उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि शैली तथा विषय की दृष्टि से एकांकी कई प्रकार से लिखे जा रहीं हैं। उनमें मौलिक भेद हैं। आज एकांकी का क्षेत्र बहुत विस्तृत होता जा रहा है। संवाद और अभिनय के क्षेत्र में नित्य नये प्रयोग हो रहे हैं। छाया अभिनय मनोड्रामा, फैंसी प्रतीकात्मक एकांकी, गीतिनाट्य, भाव नृत्य, नृत्य नाट्य आदि एकांकी नवीन प्रयोगों ही के परिणाम हैं। ❑

2 दीपदान
(डॉ. रामकुमार वर्मा)

प्रश्न 5. डॉ. रामकुमार वर्मा का साहित्यिक परिचय दीजिए।

उत्तर- डॉ. रामकुमार वर्मा का जन्म 15 नवम्बर, सन् 1905 को सागर (मध्यप्रदेश) में हुआ। आपने प्रयाग विश्वविद्यालय से एम.ए. की उपाधि प्राप्त की। वहीं वे हिन्दी के प्राध्यापक नियुक्त हो गये। उन दिनों विश्वविद्यालय के मंच अंग्रेजी नाटकों के लिए प्रयुक्त होते थे। वर्मा जी का मन हिन्दी के नाटकों के अभाव के कारण दु:खी रहता था। उन्होंने अपने सहयोगियों की सहायता से विश्वविद्यालय के मंच पर हिन्दी नाटकों को खेलने का प्रयास किया, जिसमें उन्हें पूर्ण सफलता प्राप्त हुई। उन्होंने सन् 1930 के आसपास स्वरचित एकांकी 'बादल की मृत्यु' नामक एकांकी को मंचित किया। यह एक सफल प्रयोग था तथा वर्माजी की एकांकी यात्रा का आरम्भ या प्रथम आयाम था। वर्माजी स्वयं भी अभिनय करते थे। अत: उनके लेखन में, एकांकियों में उनकी यही अभिनय पटुता उनका शिल्प बन गई।

वर्माजी के लिखे एकांकी ग्रन्थों की सूची में निम्न रचनाएँ प्रमुख हैं—

1. पृथ्वीराज की आँख, 2. चारुमित्र, 3. रेशमी टाई, 4. सप्तिकरण, 5. कौमुदी-महोत्सव, 6. दीपदान, 7. रजतरश्मि, 8. रिमझिम, 9. विभूति, 10. प्रतिशोध।

वर्मा जी के एकांकी दो भागों में विभाजित किये जा सकते हैं— एक **ऐतिहासिक**, दो **सामाजिक**। वर्माजी को कवि हृदय मिला है। अत: उनके एकांकियों में चाहे वे ऐतिहासिक हों या सामाजिक हों, उनके हृदय की कवि सुलभ कोमलता मिलती है। विषय प्रतिपादन में उन जैसा सहज, स्वाभाविक रचनाकार उपलब्ध होना कठिन हैं। वे अपने पात्रों को अपने हृदय की कोमलता, अपने चिंतन का उत्स तथा अपनी लेखनी का चमत्कार प्रदान कर देते हैं। वे अपने एकांकीयों में तटस्थ हैं तथा समस्या के प्रस्तुतीकरण में उपदेशक नहीं हैं। उनके पात्र स्वतंत्र हैं। यदि वे पात्र कही बँधे हैं तो घटना या क्षण की अपनी निजी उपादेयता से। वर्माजी की भाषा सरल तथा संवाद पात्रानुकूल होते हैं। वे उतने ही होते हैं कि जितने से उनके पात्र

का मनोरथ सिद्ध होता है। प्राचीन संस्कृति तथा आधुनिक समाज व सभ्यता ही वर्माजी के नाटकों के प्रमुख विषय है। उनकी भाषा ओज, सरसता, आत्मीयता तथा सजीवता विशेष गुण के रूप में विद्यमान हैं। आपके नाटकों के अनेक भाषाओं में अनुवाद हो चुके हैं। ❑

प्रश्न 6. 'दीपदान' एकांकी के शीर्षक की उपयुक्तता पर अपने विचार प्रकट कीजिए।

अथवा

'दीपदान' शीर्षक का आशय क्या है?

उत्तर- प्रस्तुत एकांकी के कथानक के आधार पर हमें विदित होता है कि पन्ना कुँवर उदयसिंह की जीवन रक्षा में अपने पुत्र का दीपदान करती हैं। पन्ना का मानसिक द्वन्द्व इस बात का प्रमाण है- "ओह पन्ना ! तूने अपने भोले बच्चे के साथ कपट किया है ! तूने अंगारों की सेज पर अपने फूल से लाल को सुला दिया है ! तू सर्पिणी है !" इस तरह वो रोती है। उसकी आँखों में आँसूओं के अम्बार है। वह बार-बार सिसकती है। अपने लाड़ले पुत्र की हत्या मातृभूमि के हित में होने की मधुर कल्पना में वह पुन: कहती है- "अब हृदय से रक्त की धारा बहेगी तो मैं कैसे रोक सकूँगी! मेरे लाल! मेरे चन्दन जाओ, यह रक्तधारा अपनी मातृभूमि पर चढ़ा दो। आज मैंने दीपदान किया है। दीपदान! अपने जीवन का दीप मैंने रक्त की धारा पर तैरा दिया है। ऐसा दीपदान भी किसी-किसी ने किया है।"

इतिहास इस बात का साक्षी है कि पन्ना जैसा दीपदान आज तक किसी ने नहीं किया। क्योंकि पन्ना ने अपने पुत्र का बलिदान अपने कर्त्तव्य निष्ठा के निर्वाह चित्तौड़ के कुल दीपक कुँवर उदयसिंह की रक्षा के हित में किया गया था। इस प्रकार एकांकी का मुख्य उद्देश्य पन्ना के इस आदर्श बलिदान का उल्लेख करना है। लेखक द्वारा एकांकी को दिया गया शीर्षक अपने आप में 'दीपदान' ही महान है। यह दीपदान असाधारण है।

नृत्यगान के साथ दीपदान करना तो एक साधारण बात है। यह तो एक उत्सव का प्रतीक मात्र है। इस उत्सव की आड़ में अत्याचारी बनवीर कुँवर उदयसिंह की हत्या करने की योजना बनाता है। इसीलिए ऐसे उत्सव का कोई विशेष महत्व नहीं क्योंकि कुँवर उदयसिंह उस दीपदान के नृत्यगान के उत्सव को देखने के लिए पन्ना धाय के कारण नहीं जा सके इसीलिए सोना और बनवीर की हत्या करने का षडयंत्र विफल हो गया।

एक अन्य कारण बनवीर का उदयसिंह को मारकर यमराज को दीपदान करना भी उचित नहीं। क्योंकि बनवीर अपने उद्देश्य में असफल होता है। वह जिसकी हत्या करता है वह तो पन्ना का चन्दन है, कुँवर उदयसिंह नहीं।

इस प्रकार वास्तविक कारण तो पन्ना का दीपदान करना ही है क्योंकि चन्दन उसके कुल और जीवन दोनों का दीप था और वही उसके जीवन का उजाला भी था। परन्तु पन्ना जब देखती है कि चित्तौड़ का कुल दीपक कुँवर उदयसिंह का जीवन दीपक बुझने वाला है तो वह देशभक्त और स्वामिभक्त नारी कुँवर उदयसिंह के जीवन दीपक की रक्षा करती है। उसकी रक्षा में अपने जीवन दीपक का दान ही उसे क्यों न करना पड़े और सचमुच वह क्षत्राणी अपने पुत्र का जीवन दान करती हैं। यही कारण है कि एकांकी का शीर्षक दीपदान अधिक उपयुक्त व प्रभावपूर्ण है। ❑

प्रश्न 7. 'दीपदान' एकांकी के आधार पर पन्ना धाय का चरित्र-चित्रण कीजिए।

अथवा

"पन्ना त्याग और बलिदान की देवी है।" इस कथन की सत्यता प्रतिपादित करते हुए उसका चरित्र-चित्रण कीजिए।

पन्ना धाय का चरित्र-चित्रण

उत्तर- एकांकीकार डॉ. रामकुमार वर्मा का 'दीपदान' एकांकी एक सोद्देश्य रचना है। इतिहास की पृष्ठभूमि पर नाटककार ने एक ऐसी प्राणवान कथाकृति को जन्म दिया है जो इतिहास के पृष्ठों में प्रमुख पात्र पन्ना धाय है। सम्पूर्ण कथानक पन्ना के चारों ओर परिभ्रमण करता है। उसका एक-एक शब्द उसके चरित्र की गरिमामय माला में मणियाँ पिरोता चलता है। पन्ना की अविचल देश-भक्ति और अडिग कर्त्तव्यनिष्ठा। उसे इतिहास में सर्वोच्च सम्मान की अधिकारिणी घोषित करते हैं। एकांकी में उसकी यह गौरव गाथा और भी परिष्कृत रूप में उभर गई है। शौर्य, साहस और कर्त्तव्य की अप्रतिम आभा के रूप में पन्ना धाय दर्शकों की दृष्टि पथ पर एक बार जैसे फिर प्रकट होकर आ गई है। उसके चरित्र के सुरभिता बिन्दु निम्नलिखित हैं—

1. ममतामयी माँ, 2. दूरदर्शिनी, 3. कर्त्तव्यपरायण, 4. श्रेष्ठ संरक्षिका, 5. त्याग और बलिदान की देवी, 6. देश-भक्त वीरांगना, 7. निर्भीक और साहसी, 8. संभाषण पटु, 9. निःस्वार्थ सेविका, 10. आदर्श क्षत्राणी।

एकांकी के लेखक का उद्देश्य पन्ना धाय की त्याग की महानता दिखाना है। नाटककार चाहता है कि माता के ममत्व से ऊपर कर्त्तव्य पालन प्रदर्शित हो। राष्ट्रहित पर परिवार के हित बलिदान हो जाये और इस प्रकार व्यक्ति का त्याग और बलिदान जितना बड़ा होगा उसकी महानता भी उतनी ही ऊँचाइयों पर होगी।

1. ममतामयी माँ—ममता नारी की चरम परिणति हैं। नारी की सम्पूर्ण उपलब्धि यदि कोई है तो वह उसकी ममतामयी माँ में हैं। मातृत्व उसकी साध है, माँ उसका सुख है। वह जीवन की सारी विभूतियाँ तो क्या अपने प्राणों की बलि देकर भी अपने मातृत्व के कर्त्तव्यों का निर्वाह करती है। भारतीय नारी के जीवन का आदर्श उसके जीने में कम है, उसके मिलने में अधिक है। मिटना और बलिदान हो जाना उसके लक्ष्य का सोपान है।

पन्ना धाय भारतीय नारी जनित ममता की श्रेष्ठ भावना से ओत-प्रोत है। अपने बेटे चन्दन के प्रति उसके हृदय में ममता का अथाह सागर हिलोरें मारता है। वह अपने बेटे को 'मेरे लाल' से सम्बोधित करती है। वह राजकुमार की शैय्या पर अपने 'लाल' को वध के लिए सुलाने के पूर्व मर्मांतक वेदना से तड़पती हैं। कातर स्वर में अपने बेटे से कहती है- "मैं तुम्हें आज जी भर कर खिला दूँ।" चन्दन के पूछने पर कि "तुम्हारी आँखों में पानी कैसा?" वह विह्वल होकर फूट पड़ती हैं। "पानी कहाँ? और तुम्हारे अँगूठे से रक्त की धारा बहे, मेरे आँखों से एक बूँद पानी भी न निकले?" वह अपनी अन्तर्वेदना को छिपा नहीं पाती- "कभी-कभी कलेजे में शूल-सी उठती है।" और जब चन्दन सो गया तो वह आत्म दाह से व्याकुल अपने आप से प्रताड़ना, क्षोभ और ग्लानि भरे शब्दों में कहती है- "मैंने अपने ही लाल को ऐसी निद्रा में सुला दिया, कि अब यह न उठेगा।" "ओह पन्ना, तूने अंगारों की सेज पर अपने फूल से बच्चे को सूला दिया। तू सर्पिणी है। सर्पिणी, जो अपने ही बच्चे को खा जाती है। ..... हाय अभागिन माँ! ..... मेरे लाल, यह रक्त धारा मातृ-भूमि पर चढ़ा दो।" आज मैंने भी दीपदान किया है। अपने जीवन का दीप मैंने रक्त की धारा पर तैरा दिया है।

इस प्रकार पन्ना निश्चय ही ममतामयी माँ है।

2. दूरदर्शिनी—सामली की सूचना पर वह शीघ्र एक ऐसी योजना बना डालती है, जिससे उदयसिंह के जीवन की रक्षा हो जाती है। वह अपनी दूरदर्शिता और सूझ-बूझ के बल से बनवीर को भी पराजित कर देती है। यह बात और है कि उसे अपने बेटे की आहूति देनी पड़ी। किन्तु

लक्ष्य के लिए पन्ना की दृष्टि में यह बलिदान अनिवार्य था। कुँवर को झूठी पत्तलों की टोकरी में लिटाकर सुरक्षित निकाल देना पन्ना धाय की अपूर्व दूरदर्शिता का ज्वलंत प्रमाण है।

3. कर्त्तव्यपरायण—कर्त्तव्य पालन एक ऐसा श्रेष्ठ गुण है जो व्यक्ति को आदर और सम्मान का पात्र बना देता है, किन्तु यदि कर्त्तव्य पालन की दिशा में आत्म बलिदान और त्याग भी समाहित हो जाये तो वह व्यक्ति को निश्चय ही महान बना देता है।

पन्ना का रक्त राजपूती शौर्य से तृप्त है। उसकी रग-रग में मेवाड़ का गौरव और त्याग की उच्च भावना का समावेश है। इसलिए वह अपने कर्त्तव्य की सीमाओं से पूर्ण रूप से अवगत है और जानती है कि उसे किन परिस्थितियों में क्या करना है? वह धाय के कर्त्तव्य के रूप में उदयसिंह को श्रेष्ठ शिक्षा देने के दायित्व के प्रति पूर्ण जागरूक है। वह उदयसिंह से कहती हैं—

'तुम तो चित्तौड़ के सूरज हो।' और राम में 'तुम राजवंश के दीपक हो।' वह माँ की भाँति कुँवर को राजनियमों और राजासन की गरिमा का बोध कराते हुए शिक्षा देती है- "रूठने से राजवंश नहीं चलते।" ..... "चित्तौड़ की रक्षा में तुम्हें तलवार के साथ सोना पड़ेगा।" चित्तौड़ में तलवार से कोई नहीं डरता, कुँवर। जैसे लता में फूल खिलते हैं वैसे ही यहाँ वीरों के हाथों में तलवार खिलती है। वह सोना को प्रबोधित करती हुई कहती है- "चित्तौड़ रागरंग की भूमि नहीं है, जौहर की भूमि है। यहाँ आग की लपटें नाचती हैं, सोना जैसी रावल की लड़कियाँ नहीं। यहाँ का त्यौहार आत्म बलिदान है। यहाँ का गीत मातृ-भूमि की वन्दना का गीत है।"

पन्ना के कर्त्तव्य पालन की पराकाष्ठा का बिन्दु अपने पुत्र चन्दन के बलिदान में है। देश के लिए व्यक्ति का कुछ भी महत्व नहीं है। समाज के लिए आत्मीय बन्धनों का बलिदान कर्त्तव्य पालन की कसौटी है। पन्ना इस कसौटी पर खरी उतरती है। वह उदयसिंह की रक्षा के लिए अपने बेटे को उनकी शैया पर सुलाते हुए कहती है- "मेरे लाल! मेरे चन्दन! जाओ, यह रक्त धारा अपनी मातृ-भूमि पर चढ़ा दो।" यद्यपि वह अपने पुत्र की प्रति उतना न्याय नहीं कर सकी। किन्तु उसके लिए सर्वोच्च कर्त्तव्य देश-रक्षा ही था और शायद वह अबोध बेटा भी जिसकी बलि देश रक्षा के लिए पन्ना ने चढ़ा ही दी, अनजाने में ही पन्ना की भाँति अमर हो गया। जीवित रहकर चन्दन शायद इतना जीवित नहीं रह पाता, जितना आज मर कर हुआ है। वह दृढ़ता में अपने कर्त्तव्य पालन के प्रति सजग है। "मैं? मैं अंधेरी रात में ही उसे लेकर कुँभलगढ़ भाग जाऊँगी।" वह कहती है "मेरे महाराणा का नमक मेरे रक्त से भी महान् है।" इस प्रकार पन्ना कर्त्तव्यपरायणा नारी है।

4. श्रेष्ठ संरक्षिका—पन्ना एक आदर्श संरक्षिका है। वह उदयसिंह की धाय माँ ही नहीं एक सजग प्रहरी भी है। उसका लालन-पालन वह एक क्षत्राणी के रूप में उन समस्त आदर्शों और उद्देश्यों की पूर्ति के लिए करती है जो एक राजपुत्र के लिए अपेक्षित है। उदयसिंह के खाने, पीने, सोने जागने से भी आगे उसके जीवन की प्रत्येक गतिविधि का वह पूरा ध्यान रखती है। कुँवर जब नृत्य देखने का आग्रह करता है तो वह कहती है- "नहीं कुँवर, तुम रात में अकेले नहीं जाओगे। चारों तरफ जहरीले सर्प घूम रहे हैं। किसी भी समय तुम्हें डस सकते हैं।" इस प्रकार वह श्रेष्ठ संरक्षिका है।

5. त्याग और बलिदान की देवी—त्याग भक्ति भी महानता की कसौटी है। व्यक्ति की महानता, त्याग और बलिदान में है। जितना बड़ा त्याग, उतना ही महान् व्यक्ति।

पन्ना धाय त्याग की प्रतिमूर्ति है। उसके त्याग ने उसे देवी बना दिया और वह भारतीय इतिहास में अमर हो गई। साहित्य भी जिसने पन्ना को स्वीकारा वह धन्य हो गया और अब त्याग का ही दूसरा नाम है, पन्ना।

अपने पुत्र को उदयसिंह की शैय्या पर सुला देना, यह जानते हुए कि बनवीर आएगा और तलवार से उसके दो टुकड़े कर देगा- त्याग की पराकाष्ठा है। देश हित में किये गये इस त्याग का संसार भर में कोई दूसरा उदाहरण नहीं मिलता। माँ के द्वारा किया गया यह बलिदान सचमुच अप्रतिम और अद्वितीय है।

वह धन, वैभव जागीर का प्रलोभन सब कुछ ठुकरा कर, वरण करती है अपनी संतान की मौत का। कौन माँ अपने बेटे को मृत्यु के मुख में, जबकि वह अबोध हो- ढकेल सकेगी? वह कहती है- "तूने अँगारों की सेज पर अपने लाल को सुला दिया हैं। ..... जान बूझ कर अपने पुत्र की हत्या करने जा रही हैं।" उसने अपने साथ अपने बेटे का नाम भी अमर कर दिया।

इस प्रकार पन्ना धाय त्याग और बलिदान की देवी हैं। ❑

प्रश्न 8. "दीपदान' एकांकी का कथानक अपने शब्दों में लिखिए।

अथवा

'दीपदान' का कथानक लिखए।

उत्तर- 'दीपदान' एकांकी डॉ. रामकुमार वर्मा की ऐतिहासिक एकांकी है। एकांकी का कथानक ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित है। इसमें राणा सांगा के परिवार की धाय 'पन्ना' के असाधारण बलिदान का सुन्दर वर्णन किया गया है। "पन्ना धाय' का नाम इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित है। पन्ना धाय ने राणा सांगा के उत्तराधिकारी कुँवर उदयसिंह के प्राणों की रक्षा में अपने प्राण प्रिय पुत्र चन्दन का कर्त्तव्यपरायणता की वेदी पर बलिदान कर दिया। उसका पुत्र उसके जीवन का दीप था। अपने जीवन को मातृभूमि की भेंट चढ़ाकर 'दीपदान' का पर्व मनाया।

चित्तौड़ के महाराणा सांगा की मृत्यु के उपरान्त उसके छोटे भाई विक्रमसिंह को राजगद्दी पर बिठाया गया। इसका कारण यह था कि उस समय राज्य के वास्तविक उत्तराधिकारी राणा सांगा के छोटे पुत्र उदयसिंह नाबालिग थे। इसलिए कुँवर उदयसिंह के वयस्क होने तक महाराणा विक्रमसिंह के हाथों में राज्य की समस्त बागडोर दे दी गई।

महाराणा सांगा के एक अन्य भाई पृथ्वीराज के दासी पुत्र बनवीर ने अपनी छल-कपट पूर्ण गतिविधियों से महाराजा विक्रमसिंह को अपनी कठपुतली बना लिया। बनवीर विलासी तथा स्वार्थी था। वह षड्यन्त्र करके विक्रमसिंह और कुँवर उदयसिंह दोनों को अपने मार्ग से हटाकर स्वयं राजगद्दी पर कब्जा करना चाहता था। वह महाराजा विक्रमसिंहजी को तो अपनी कूटनीति का शिकार बना लेता है। परन्तु कुँवर उदयसिंह पर उसकी कूटनीति का असर नहीं होता है। पन्ना धाय के कारण उसकी एक भी चाल सफल नहीं हो पायी क्योंकी पन्ना एक स्वामित्व तथा कर्त्तव्य परायण नारी थी।

एक दिन बनवीर ने चित्तौड़ में दीपदान का उत्सव मनाने का कार्यक्रम रखा। इसके अन्तर्गत वह नाचरंग एवं गीत-संगीत का रंगीन आयोजन रखता है। सुरासुन्दरी व नृत्य-संगीत के वातावरण में कुँवर उदयसिंह का वध करने का षड्यंत्र रचता है।

कुँवर उदयसिंह का वध करने की योजना को सफल बनाने के लिए वह नर्तकियों एवं गाने बजाने वालों को धन बाँटता है तथा बहुमूल्य पुरस्कार प्रदान करता है। उत्सव में सबको दिल खोलकर शराब पिलाई जाती है। लोगों का ध्यान नर्तकियों के आकर्षक नृत्य-गीत की ओर

खींचा जाता है। सरोवरों में दीपकों के नृत्य और कतारों में प्रवाहित होते लुभावने दृश्यों को देख-देखकर जनता मस्त हो जाती है। कुँवर उदयसिंह कुछ समय तक उत्सव में सम्मिलित होते हैं। वे सोना के नृत्य पर मुग्ध हैं। कुछ समय पश्चात् वे अपनी धाय माँ को भी उत्सव देखने के लिए बुलाने पहुँचते हैं। पन्ना धाय बहुत ही दूरदर्शी और जागरूक संरक्षिका थी। वह कुँवर उदय को बहुत ही प्यार से समझाती है कि ऐसे उत्सव में उन्हें सम्मिलित नहीं होना चाहिए। कुँवर द्वारा बार-बार आग्रह करने पर भी पन्ना उत्सव में जाने को तत्पर नहीं होती। इस पर कुँवर रूठ जाते हैं तथा बिना खाना खाए ही फर्श पर सो जाते हैं।

थोड़ी देर बाद रावल सरूपसिंय की सुन्दर कन्या सोना जो कि कुँवर उदयसिंह के साथ खेला करती थी, उसे बुलाने आती हैं। सोना पूर्व में भी कुँवर उदयसिंह को बहकाकर ले जा चुकी है। सोना पर बनवीर का प्रभाव है। सोना अपने मोहक नृत्य से कुँवर को अपने मोह जाल में अटकाती है। परन्तु इस पर धाय माँ सोना को डाँटकर भगा देती है। सोना के वहाँ से चले जाने के बाद सामली दासी आकर पन्ना को सावधान करती है कि उसके महल को चारों तरफ से सैनिकों ने घेरा डालकर घेर लिया है। बनवीर महाराजा विक्रमसिंह की हत्या करके इधर ही आ रहा है। वह धाय माँ से कुँवर उदयसिंह की रक्षा का आग्रह करती है और पन्ना उसे रक्षा करने का आश्वासन देती है। पन्ना धाय सामली को महल के चारों तरफ से सैनिक का सही-सही पता लगाने के लिये भेजती हैं।

पन्ना धाय आसन्न संकट के निवारण हेतु तुलजा भवानी का स्मरण करती है। इतने में वहाँ कीरत बारी पहुँचता है। कीरत बारी झूठी पत्तले उठाने का काम करता है। पन्ना उसे संकट के बारे में समझाती है और उसे कुँवर उदयसिंह को झूठी पत्तलों की टोकनी में सुलाकर तथा पत्तलों से ढँककर नदी के तट पर स्थित शमशान तक पहुँचाने का आग्रह करती है। वह कुँवर को कीतर बारी के संरक्षण में रखने को तत्पर होती है।

पन्ना धाय का पुत्र चन्दन, कुँवर उदयसिंह को ढूँढता हुआ माँ के पास आता है। पन्ना धाय उसे भोजन के पश्चात् कुँवर की शय्या पर सो जाने को कहती है। चन्दन वास्तव में अपनी माँ से बात करते-करते कुँवर की शय्या पर सो जाता है।

कथानक का अन्त, अत्यन्त मार्मिक और हृदय स्पर्शी है। कुछ समय पश्चात् ही बनवीर नंगी तलवार लिये महल में प्रवेश करता है। वह पन्ना से कुँवर उदयसिंह के बारे में पूछता है। वह कहती हैं कि कुँवर तो आज बिना भोजन किये ही सो गये हैं। नशे में चूर तथा उन्मत्त बनवीर पन्ना से कुँवर को हवाले करने के लिए कहता है। बनवीर पन्ना को जागीर का लालच देना चाहता है। परन्तु पन्ना कर्त्तव्यनिष्ठ सेविका और कुँवर उदय सिंह की सच्ची संरक्षिका थी। वह कुँवर को किसी भी मूल्य पर सौंपना नहीं चाहती। बनवीर कुँवर उदयसिंह के भ्रम में पन्ना धाय के सोये हुए पुत्र चन्दन पर तलवार से प्रहार करके उसे मार डालता है। पन्ना धाय अपने पुत्र का वध देखकर चीख पड़ती है। वह रोते-रोते मूर्छित हो जाती है। आज उसने अपने लाल को कर्त्तव्य की बलिवेदी पर चढ़ा दिया। इस प्रकार पन्ना धाय अपने पुत्र का दीपदान करती हैं। ❑

प्रश्न 9. 'दीपदान' की समीक्षा कीजिए।

अथवा

संवाद, भाषा एवं शैली तथा अभिनेयता व उद्देश्य की दृष्टि से 'दीपदान' की समीक्षा कीजिए। **अथवा**

'दीपदान' एकांकी की तात्विक विवेचना कीजिए।

संवाद, भाषा एवं शैली

उत्तर- संवाद एकांकी का प्रमुख तत्व है। कथोपकथन के माध्यम से नाटक की कथावस्तु सामने आती है। एकांकी तथा नाटक की सम्पूर्ण रचना संवादों के माध्यम से ही होती है। 'दीपदान' एकांकी में संवाद छोटे हैं व कथावस्तु को गति देने वाले हैं। संवादों की कुशल संरचना द्वारा लेखक ने भावात्मक सौन्दर्य की सृष्टि की है। श्रृंगार, वीर और वात्सल्य रसों की मनोहारी त्रिवेणी प्रवाहित करने में लेखक को पूर्ण सफलता मिली है। सोना के संवाद श्रृंगार रस चन्दन और पन्ना के वात्सल्य रस, पन्ना और बनवीर के संवाद वीर रस की भूमिका प्रस्तुत करते हैं। पन्ना के संवाद ओज गुण से पूर्ण हैं।

दीपदान के संवादों की भाषा विशुद्ध हिन्दी है। पात्रों की आयु और दशा के अनुसार ही संवादों की भाषा है। कुँवर और चन्दन के संवादों में बचपन, कीरतबारी के संवादों से उसकी अशिक्षा और संस्कारों का परिचय मिल जाता है। पन्ना के संवाद एक राजपुत्री की गरिमा से ओत-प्रोत हैं। बनवीर के संस्कार उसके संवादों से प्रकट होते हैं। इस प्रकार 'दीपदान' संवाद, भाषा और शैली की दृष्टि से सफल एकांकी है।

अभिनेयता और उद्देश्य

'दीपदान' डॉ. रामकुमार वर्मा रचित एक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित एकांकी है। चित्तौड़ दुर्ग के एक कक्ष में ही पूरा एकांकी अभिनीत हो जाता है। सभी घटनाएँ चित्तौड़ दुर्ग के एक प्रकोष्ठ में सम्पन्न हो जाती है। इस प्रकार एकांकी में दृश्य परिवर्तन न होते हुए भी यथावस्तु का प्रवाह कथावस्तु रहता है। स्थान एवं दृश्य परिवर्तन की झंझट से एकांकीकार ने संयोजन की मुक्ति देकर एक बहुत बड़ा काम किया है।

अत: 'दीपदान' रंगमंच की असुविधाओं से मुक्त एकांकी है। पात्र संख्या भी कम है और संवादों की नाटकीयता प्रभावपूर्ण और स्वाभाविक है। पात्र संवाद और दृश्यों का समायोजन, लेखक ने मंच की दृष्टि में रखकर किया है। उसे अधिकतम सरल और सुविधाजनक बनाया है। इसलिए नाटक पूर्ण अभिनेय और मंचन के योग्य है।

उद्देश्य—उद्देश्य की दृष्टि से 'दीपदान' की प्रक्रिया सम्पूर्ण नाटक में निरन्तर चलती रहती है। नाटक का उद्देश्य **आत्म-त्याग** और **देश-भक्ति** की भावना को **कर्त्तव्यपरायण** के द्वारा स्थापित करना है। लेखक को इस उद्देश्य की प्राप्ति में पूर्ण सफलता मिली है। एक भारतीय नारी की स्वामी-भक्ति, कर्त्तव्यनिष्ठा और आत्मोत्सर्ग की प्रतिष्ठा करना ही नाटककार का लक्ष्य है। ❑

प्रश्न 10. डॉ. रामकुमार वर्मा द्वारा एकांकी 'दीपदान' के आधार पर चन्दन का चरित्र-चित्रण कीजिए।

उत्तर-

चन्दन का चरित्र-चित्रण

चन्दन एकांकी 'दीपदान' की नायिका का लाड़ला बेटा है। तेरह वर्ष की किशोर आयु का सकुमार राजमहल में ही पला और बड़ा हुआ। राजकुमार उसका सहचर और मित्र है। चन्दन के चरित्र की कुछ प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

1. **मातृ-प्रेम**—वह राजकुमार उदयसिंह को अपने बड़े भाई की भाँति प्रेम करता है। उसे राजकुमार के बिना भोजन करना भी अच्छा नहीं लगता। वह उसका स्नेहवश पूरा ध्यान भी रखता है। राजकुमार की असुविधाओं के प्रति वह सजग रहता है। वह अपनी माँ से कहता है- माँ कल कुँवर की माला भी ठीक कर देना, वह भी टूट रही है।

2. विचारशील—चन्दन अपनी माता की भाँति विचारशील और सजग है। छोटी आयु में उसकी इतनी सजगता जनित ही मानी जाएगी। 'भलाई और बुराई' पहचानने का पर्याप्त विवेक रखता है। उससे अपनी पारखी दृष्टि से यह जान लिया था कि- "सोना अच्छी लड़की नहीं है।" उसके विषय में वह अपनी माता से कहता है। माँ सोना अच्छी लड़की नहीं है। मैं कल उससे कहूँगा कि कुँवरजी को अपना नाच न दिखाया करें।

3. मातृभक्ति—चन्दन को अपनी माँ से अपार प्रेम है। यह प्रेम अगाध श्रद्धा के रूप में उसके इन शब्दों में प्रकट होता है- "माँ मैं तुम्हारा मन्दिर बनावाऊँगा। उसमें तुम्हारी पूजा वैसी ही होगी जैसी लोग देवी की करते हैं।" यह मातृभक्ति से प्रेरित अपनी माँ की प्रत्येक आज्ञा को सदैव स्वीकार करता है और उसका पालन करने में विलम्ब नहीं करता। राजकुमार की शय्या पर वह माँ की आज्ञा पाकर तुरन्त चला जाता है। वास्तव में वह मृत्यु की शैय्या थी जिस पर वह माँ के आदेश से ही सोया था।

4. महत्वाकांक्षी—चन्दन महत्वाकांक्षी से भरा हुआ है। उसमें क्षत्रिय जनित अभिलाषाएँ हैं। वह बड़ा होकर जागीरों पर अधिकार करना चाहता है। वह दान को भीख मानता है। अपनी शक्ति से वह विजित क्षेत्र पर शासन करने का स्वप्न अभी संजोए हुए हैं। ❑

प्रश्न 11. 'दीपदान' नामक एकांकी में कितने दीपदान हुए और इनमें सर्वोत्तम दीपदान किसका था?

उत्तर- डॉ. रामकुमार वर्मा द्वारा ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर रचित एकांकी 'दीपदान' में तीन 'दीपदान' हुए।

1. पहला दीपदान—महाराणा सांगा के अनुज पृथ्वीसिंह के दासीपुत्र बनवीर ने महाराणा विक्रमादित्य तथा उदयसिंह की हत्या करने के लिए मयूर पक्ष कुण्ड में करवाया ताकि सामन्तों का ध्यान भोजन में व सामान्य जनता का ध्यान उस ओर नृत्य एवं गान में केन्द्रित हो जाये और वह (बनवीर) अपनी योजना में सफल होकर एक ही रात में पूरा-पूरा महाराणा बन सके। महाराणा विक्रमादित्य की हत्या करने में तो वह सफल हो गया किन्तु उदयसिंह को वह मार न सका।

2. दूसरा दीपदान—दूसरा दीपदान बनवारी ने किया। उसने उदयसिंह समझकर पन्ना के पुत्र चन्दन का वध करके कहा था, "आज मेरे नगर में स्त्रियों ने दीपदान किया है। मैं भी यमराज को इस दीपक का दान करूँगा। यमराज! लो, इस दीपक को यह मेरा दीपदान है।" इस दीपदान में बनवीर की नृशंसता, क्रूरता, हत्यारापन तथा पशुता का पता चलता है।

3. तीसरा दीपदान—वास्तविक दीपदान तो यह है कि पन्ना ने चित्तौड़ के भावी शासक तथा महाराणा सांगा के पुत्र उदयसिंह की रक्षा के लिए अपने पुत्र चन्दन का बलिदान देकर किया। इस कार्य को सम्पन्न करते समय उसने कहा था- "आज मैंने भी दीपदान किया है। दीपदान! अपने जीवन का दीप मैंने रक्त की धारा पर तैरा दिया है। ऐसा दीपदान भी किसी ने किया है।" पन्ना का यह दीपदान भारतीय इतिहास की धरोहर है। यह दीपदान पन्ना की कर्त्तव्यपरायणता तथा उसकी राष्ट्र-भक्ति का प्रतीक है तथा दूसरों को प्रेरणा देने वाला है। सच, पराये पुत्र की प्राण रक्षा के लिए जो अपने पुत्र का बलिदान कर दे, वही तो पन्ना बन सकती है। मोह, माया व ममता, स्नेह तथा गोद के लाल को पन्ना जैसी नारी ही उत्सर्ग कर सकती थी। वह राजपूत नारी के गौरव का प्रतीक है। इन्हीं कतिपय कारणों से यही दीपदान सर्वश्रेष्ठ है। ❑

महत्वपूर्ण व्याख्याएँ

1. संकेत- **''आँधी में आग की लपटें तेज होती है तुम ही। सोना भी उसी आँधी में लड़खड़ाकर गिरोगी। तुम्हारे ये सारे नूपुर बिखर जायेंगे। न जाने किस हवा का झोंका तुम्हारे इन गीतों की लहर को निगल जायेगा। चित्तौड़ राग-रंग की भूमि नहीं है जौहर की भूमि है। यहाँ आग की लपटें नाचती है, सोना जैसी रावल की लड़की लड़कियाँ नहीं।''**

संदर्भ—प्रस्तुत: अवतरण एकांकी संकलन के 'दीपदान' एकांकी से उद्धृत है। यशस्वी एकांकीकार डॉ. रामकुमार वर्मा की यह स्मरणीय ऐतिहासिक कृति है जिसमें उन्होंने इतिहास के एक स्वर्णिम पृष्ठ को आधार मानकर नाट्य की रचना की है।

प्रसंग—कुँवर उदयसिंह के रूठ कर सो जाने के पश्चात् रावल रूपसिंह की रूपवती पुत्री सोना धाय माँ के पास आती है। धाय माँ व पन्ना बनवीर की भर्त्सना करती है। वह बनवीर को देशद्रोही कहती है। उन बातों को सुनकर धाय माँ पर सोना 'विद्रोह' का आरोप लगाती है। अपने पर लगाए गए आरोप के उत्तर में पन्ना सोना को कड़ी चेतावनी देते हुए फटकारती है—

व्याख्या—जब एक पक्ष में कोई दोष या बुराई तेजी से पनपती है तो दूसरे पक्ष में भी बुराई उसी अनुपात में बढ़ जाती है। आँधी में आग का प्रसारण तीव्र हो जाता हैं और धीरे-धीरे वह भयंकर ज्वाला में परिणीत हो जाती है। पन्ना सोना को चेतावनी देते हुए कहती है कि यह व्यापक आँधी तुम्हारे पैर भी उखाड़ देगी। यह विनाश का तांडव तो बनवीर रच रहा है, इसमें तुम्हारी आहुति भी लगेगी। तुम भी इस भयंकर आँधी में तिनके की तरह उड़ जाओगी। तुम और तुम्हारे थिरकते हुए पाँवों के नुपूर बिखर जायेंगे। संगीत का नशा कपूर बनकर उड़ जाएगा। आँधी का एक झोंका तुम्हारे गीतों की दुनियाँ को उखाड़ फैंक देगा।

सोना, यह भूमि वीरों की जन्मदात्री है। चित्तौड़ की धरती पर शस्त्रों का घोष होता है, यहाँ की ललनाएँ जौहर की चिता सजा कर आत्म सम्मान और गौरव की रक्षा करती है। यहाँ अग्नि का तांडव होता है। यहाँ नृत्य होता है पर सोना जैसी छोकरियों का नहीं। जौहर की ज्वालाओं से खेलने वाली वीरांगना यहाँ नाचती हैं, अग्नि की चिता पर।

सौन्दर्य बौध—लेखक ने यहाँ प्रतीकों के द्वारा भाव व्यंजना की है। आँधी को बुराई का वेग और 'नूपुर' को राससंग का प्रतीक माना है।

2. संकेत- **''भवानी। तुमने मेरे हृदय को कैसा कर दिया। मुझे बल दो कि मैं राजवंश की रक्षा में अपना रक्त दे सकूँ। अपने लाल को दे सकूँ। यही राजपूतानी का व्रत है। यही राजपूतानी की मर्यादा है। यही राजपूतानी का धर्म है। मेरा हृदय वज्र का बना दो। माता के हृदय के स्थान पर पत्थर बना दो जिससे ममता का स्त्रोत बन्द हो जाए। भवानी! मैं चित्तौड़ की सच्ची नारी बनूँ।''**

प्रसंग—जब परिचारिका सामली से पन्ना ने राजकुमार उदयसिंह की प्राणरक्षा के प्रश्न पर बड़े सोच-विचार के बाद यह कहा कि वह राजकुमार के स्थान पर अपनी आँख के तारे चन्दन को सुला देगी। तब सामली का उत्तर उसे निराश कर गया। देवी दुर्गा से साहस देने की प्रार्थना करते हुए कहती है।

व्याख्या—दुर्गा माता से प्रार्थना करते हुए कहती है कि वह उसे शक्ति और साहस प्रदान करे जिससे की वह राजकुल की रक्षा कर सके। अपने प्रिय पुत्र का राजरक्षा के लिए बलिदान कर सकने के साहस की वह देवी से याचना करती है। वह प्रार्थना करती है कि वह राजपूत नारी के कर्त्तव्य के अनुरूप अपने प्राणों से प्रिय पुत्र को प्रसन्नता के साथ न्यौछावर कर

सके। बलिदान उसके नारीत्व की कसौटी है। कोई भी ममता और दुर्बलता उसके संकल्प में बाधा न बने। वह अपने हृदय को वज्र जैसा कठोर बनाने की कामना करती है। वह चित्तौड़ की परम्परा के अनुसार अपने आप को कर्त्तव्य के लिए कठोर नारी बनाने की प्रबल इच्छा देवी के सामने व्यक्त करती है। चित्तौड़ की सच्ची नारी के रूप में उसे ही यह गौरव प्राप्त है।

3. संकेत- **नहीं कुँवर ! तुम कभी रात में अकेले नहीं जाओगे। चारों तरफ जहरीले सर्प घूम रहे हैं। किसी समय भी तुम्हें डस सकते हैं।**

संदर्भ—प्रस्तुत अवतरण एकांकी संकलन 'दीपदान' एकांकी से उद्धृत है।

प्रसंग—यहाँ उस समय का प्रसंग है जबकि उदयसिंह बनवीर द्वारा आयोजित नाच-गान एवं दीपदान देखने जाने के लिए पन्ना से आग्रह करता है किन्तु इस असमय के रागरंग ने पन्ना को शंकित कर दिया और वह उदयसिंह को वहाँ न जाने का वर्णन करती है। वह कहती है—

व्याख्या—कुँवर तुम रात्रि में अकेले घूमने नहीं जाओगे। क्योंकि चारों तरफ शत्रु रूपी नाग तुम्हें डसने के लिए फन फैलाएँ घूम रहे हैं। वे अवसर की प्रतीक्षा में है। मौका पाते ही वे तुम्हारे जीवन को समाप्त करने में देर नहीं करेंगे। वे तुम्हें डस लेंगे राजकुमार। अंधेरे का सहारा लेकर वे बाहर राजमहल के चारों ओर घात लगाए बैठे होंगे। किसी पल भी तुम पर प्रहार कर सकते हैं।

4. संकेत- **''धाय माँ तुम ! पहाड़ बनने से क्या होगा ? राजमहल का बोझ बनकर रह जाओगी, बोझ ! और नदी बनों तो तुम्हारा बहता हुआ बोझ, पत्थर भी अपने सिर पर धारण करेंगे आनन्द और मंगल तुम्हारे किनारे होंगे, जीवन का प्रवाह होगा, उमंगों की लहरें होंगी जो उठने में गीत गाएँगी, गिरने में नाच नाचेगी।''**

संदर्भ—पूर्ववत्।

प्रसंग—सोना, पन्ना से उदयसिंह को रासरंग दिखाने की अनुमति लेना चाहती है। इसी वार्तालाप में सोना कहती है कि बनवीर के उस कथन को जिसमें उसने पन्ना के अरावली बनकर बैठने का उल्लेख किया था।

व्याख्या—वह कहती है धाय माँ, पहाड़ बनने से लाभ तो कुछ होगा नहीं, हानि ही होगी। क्योंकि अन्त में तुम राजमहल पर केवल बोझ बनकर रह जाओगी। यह भारी बोझ किसी को प्रिय तो नहीं हो सकता। तुम तो प्रवाहमान, गतिशील नहीं बनो धाय माँ। जिससे तुम्हारी बहती हुई धारा का बोझ, पत्थर भी अपने सिर पर खुशी-खुशी धारण कर लें। नदी के दो कगारों की भाँति आनन्द और मंगल तुम्हारे कगार होंगे। अर्थात् जल की प्रवाहमान धारा किसी का बोझ नहीं बनती, किनारों में भी आनन्द का संचार होता रहता है। जनजीवन के लिए सुखदायिनी सरिता बनना ही श्रेयस्कर है। लहरों की भाँति तुम्हारा जीवन उमंगों से भर जाएगा जिनके उठने पर गीत जागेंगे और गिरने पर नृत्य की लय जन्मेगी। अत: पर्वत की अपेक्षा नदी बनने में ही सुख है, आनन्द है।

5. संकेत- **''ओह पन्ना ! तुने अपने बच्चे के साथ कपट किया है ! तुमने अंगारों की सेज पर अपने फूल से लाल को सुला दिया है। तू सर्पिणी है। सर्पिणी जो अपने ही बच्चे को खा डालती है। जान-बूझकर अपने पुत्र की हत्या करने जा रही है।..... आज तुम भूखे ही रह गए, मेरे लाल ! आज अन्तिम दिन मैं तुम्हें अपने हाथों से भोजन भी न करा सकी। तुम क्या जानो की कल तुम और कुँवर साथ कैसे भोजन करोंगे ! कहते थे कल तुम परोसकर खिलाना मैं अब किसे खिलाऊँ, चन्दन !''**

सन्दर्भ—पूर्वानुसार।

प्रसंग—यहाँ पर उस समय का प्रसंग है जब पन्ना उदयसिंह की रक्षा के लिये अपने पुत्र का बलिदान करने को तत्पर हो जाती है। उसके हृदय में भावनाओं का झंझावत उठने लगता है। हृदय अन्तर्द्वन्द्व से भर जाता है। आत्मग्लानि से पीड़ित हो उसका मातृ हृदय हाहाकार कर उठता है।

व्याख्या—पन्ना स्वयं को धिक्कारते हुए कहती है। ओह पन्ना तूने अपनी ही कोख से जन्मे अपने ही बेटे से छल किया। फूल से शरीर वाले कोमल लाड़ले को अपने ही हाथों आग पर सुलाने का उपक्रम कर दिया। अपने आप को धिक्कारते हुए पन्ना कहती है- "तू तो सर्पिणी के समान निर्मम और क्रूर है, जो अपने ही बच्चों को स्वयं खा जाती है। 'आज तुम भूखे रह गए'।" उसे आत्मग्लानि हो रही है कि वह अपने लाड़ले बेटे की माँ होते हुए भी उसके अन्तिम समय में, भरपेट भोजन भी ना करा सकी। अपने हाथों से खाना परोसकर प्यार से खिलाने की उसकी इच्छा भी पूरी नहीं कर सकी। ❑

3 टूटते हुए
(डॉ. सुरेश शुक्ल 'चन्द्र')

प्रश्न 12. डॉ. सुरेश शुक्ल का जीवन परिचय एवं साहित्य सृजन को संक्षेप में प्रस्तुत कीजिए।

उत्तर— डॉ. सुरेश शुक्ल का जन्म 8 फरवरी, 1936 ई. में राजापुर गढ़ेवा जिला उन्नाव, उत्तरप्रदेश में हुआ था। पिताश्री यज्ञदत्त शुक्ल एवं माता श्रीमती जगसेना देवी के मार्गदर्शन में आपकी प्रारम्भिक शिक्षा गाँव में तथा माध्यमिक व उच्च शिक्षा कानपुर में हुई। जुलाई, 1961 से मार्च, 1996 तक आपने स्नातक तथा स्नातकोत्तर स्तर के विद्यार्थियों को हिन्दी विषय का अध्यापन किया। 31 मार्च, 1996 को सी.एम.डी. महाविद्यालय के हिन्दी विभाग में प्रोफेसर के पद पर सेवाएँ देकर विलासपुर से आप सेवानिवृत्त हुए। वर्तमान में स्वतन्त्र लेखन कर आप मानव-मूल्यों की स्थापना एवं विश्व कल्याण की भावना को लेकर चलने वाले व्यक्तियों में अपनी पहचान बना चुके हैं।

अब तक आपके 20 नाटक, 30 एकांकी, एक उपन्यास, दो काव्य संग्रह, चार समीक्षा-ग्रंथ और आत्मकथा प्रकाशित हो चुकी हैं। आप समकालीन नाट्य परिदृश्य में अपनी अमिट छाप छोड़ने में पूर्ण सफल साबित हुए हैं।

प्रश्न 13. डॉ. सुरेश शुक्ल की प्रकाशित कृतियों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर— डॉ. सुरेश शुक्ल ने अपनी विभिन्न रचनाओं के माध्यम से समाज में बिखरते नैतिक मूल्यों को पुन: स्थापित करने का जो बीड़ा उठाया है, उसमें वे पूर्णत: सफल हुए हैं। उनके नाटक देश के अनेक शहरों में खेले जा चुके हैं। इन्होंने साहित्य की विभिन्न विधाओं पर अपनी लेखनी चलाई है। उनकी प्रकाशित कृतियों को निम्नानुसार स्पष्ट किया जा सकता है-

नाटक—आकाश झुक गया (1977 ई.), भूमि की ओर, बदलते रूप (1978 ई.), कुत्ते (1979 ई.), भस्मासुर अभी जिन्दा है (1980 ई.), समवेत (1981 ई.), अक्षयवट (1983 ई.), लड़ाई जारी है (1985 ई.), बात एक हर्ष की (1999 ई.), चार प्रयोगशील रंग नाटक (2001 ई.), अर्द्धनारीश्वर (2004 ई.), चार अन्तरंग (2005 ई.) वतन के सिपाही (2010 ई.), कैकेयी ने कहा (2013 ई.)।

एकांकी संग्रह—प्रत्यावर्तन, स्वप्न का सत्य, टूटते हुए, मेरे श्रेष्ठ रंग, एकांकी, अतीत के रंग।

उपन्यास—बिना पंख की सारिका।

काव्य संग्रह—द्रोणाचार्य के मुखौटे, इक्कीसवीं सदी का सूर्यबिम्ब।

आत्मकथा—कलम साक्षी है।

बाल साहित्य—नागदेवता की अंगूठी, गुरु-दक्षिणा, नींद का चक्कर।

शोध एवं समीक्षा—पंडित प्रतापनारायण मिश्र : जीवन और साहित्य, नाट्य चिंतन: नए सन्दर्भ, काव्य चिन्तन, विविध संदर्भ, सर्जना के तेवर आदि। ❑

प्रश्न 14. 'टूटते हुए' एकांकी का सारांश अपने शब्दों में प्रस्तुत कीजिए।

उत्तर— 'टूटते हुए' एकांकी एकल परिवार में जीवनयापन कर रहे एक ऐसे मध्यमवर्गीय परिवार की कहानी है, जहाँ प्रत्येक सदस्य परिवार की आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु हर रिश्ते के प्रति संवेदनशून्य बन चुका है। परिवार में पति-पत्नी और उनका एक बेटा और बेटी है। मात्र चार लोगों का यह परिवार धनोपार्जन को अपना लक्ष्य बनाकर दिनभर जी तोड़ मेहनत करता है और परिवार के जीवनयापन में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। काम की अधिकता और महँगाई के दौर में बढ़ती प्रतिस्पर्धा ने हर सदस्य को अपनी व्यक्तिगत रुचि, गुणवत्तापूर्ण जीवन एवं प्रेम व सहानुभूति के प्रति निष्क्रिय बना दिया है। चारों सदस्य होटल के कमरे की तरह एक छत के नीचे रहते हुए भी एक-दूसरे से अजनबी की तरह व्यवहार करते हैं। घर की महिला, पुरुष और बच्चे सभी केवल और केवल ऐसे नैराश्यपूर्ण जीवन की ओर भाग रहे हैं, जहाँ पति-पत्नी अपनी युवावस्था की कार्यक्षमता का मूल्यांकन कर दु:खी होते हैं, वहीं उनकी संतानें युवा होते हुए भी प्रेम से वंचित है। अपने प्रेमी-प्रेमिका को असीम प्यार करने के बाद भी परिवार का बेटा व बेटी अपने कार्य निष्पादन को वरीयता देने के कारण अपने प्रेम को नजरअंदाज करते हैं। नौकरी करना उनकी मजबूरी है। तब ही तो अपने प्रेमी से मिलने की अपेक्षा वह अपने कार्य को अधिक प्राथमिकता देते हैं।

इस प्रकार इस एकांकी में बहुत सुन्दर तरीके से लेखक ने मध्यमवर्गीय परिवार की कथा-व्यथा को जीवन्त करते हुए यह बताने का प्रयास किया है कि अर्थ प्रधान इस समाज में रहते हुए मनुष्य अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने की ऊहापोह में जीवनपर्यन्त लगा रहता है। और इस अंधी दौड़ में वह अपने जीवन के सबसे सुन्दर पलों को खोने के साथ-साथ जीवन के बहुमूल्य रिश्तों को भी कब खो देता है, उसे पता ही नहीं चल पाता। लेकिन जीने के लिए इस तरह मरना भी आवश्यक हो जाता है, जब बात मध्यमवर्गीय परिवार की हो।

प्रश्न 15. एकांकी 'टूटते हुए' के प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण कीजिए।

उत्तर— किसी नाटक या एकांकी की सफलता उसके पात्रों पर भी निर्भर करती है। इस एकांकी के मुख्य पात्र एक मध्यमवर्गीय परिवार के चार सदस्य हैं। एकांकी में सभी पात्रों से लेखक ने सिलसिलेवार परिचित कराया है। पात्रों का चरित्र-चित्रण निम्नानुसार है-

1. **महिला**—एकांकी की पहली पात्र घर की प्रौढ़ महिला है, जो अपने कार्यालय से अपना काम निपटाकर थकी-मांदी घर का ताला खोलकर घर में प्रवेश करती है। उसका सिरदर्द से फटा जा रहा है, उसे घर में कोई एक कप चाय पिलाने वाला भी नहीं है। वह खुद ही अलमारी से बाम निकालकर अपने सिर पर मलते हुए यह बड़बड़ाने लगती है कि ऑफिस का बॉस भी युवा लड़कियों को काम ना करने पर भी छुट्टी दे देता है, और उसे प्रौढ़ होने

के कारण युवा लड़कियों की तुलना में काम भी अधिक करना पड़ता है और छुट्टी भी आसानी से नहीं मिलती। इस प्रकार नाटककार ने निजी कार्यालयों में कार्यरत कुछ अधिकारियों की घृणित मानसिकता को भी स्पष्ट किया है।

2. पुरुष—एकांकी का दूसरा प्रमुख पात्र घर का पुरुष है। इस महँगाई के दौर में घर की जिम्मेदारियों को ढोते-ढोते और मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति ने उस पुरुष को उम्र से पहले ही बूढ़ा कर दिया है। वह पुरुष भी अपनी युवावस्था का स्मरण करते हुए बस यही सोचता रहता है कि वह कितना अधिक ऊर्जा से काम कर लेता था। पार्ट टाइम करना उसकी मजबूरी है। 'जीना है तो करना ही पड़ेगा' जैसे- नकारात्मक विचार उस पुरुष की दयनीय स्थिति को स्पष्ट करते हैं। शराब के सेवन को कभी बुरा मानने वाला वही पुरुष आज शराब की बोतल से एक पैग बनाता है और नशे में अपना सारा तनाव, अवसाद और थकान को भूलकर काम करने के लिए निकल पड़ता है। महँगाई और खर्चों के पाटों में जीवन उलझकर रह गया है। एक घर में रहकर भी लोग अजनबी हैं, मशीन की भाँति दिन-रात बस काम, काम और काम कर रहे हैं, अकेले भटक रहे हैं, कोई किसी की परवाह नहीं करता, क्योंकि सभी केवल दौड़ रहे हैं बिना रुके, बिना थके।

3. बेटी—एकांकी की सबसे छोटी पात्र परिवार की बेटी है, जो परिवार की जरूरतों को पूरा करने के लिए नौकरी करने निकल पड़ी है। अपनी पढ़ाई और नौकरी के बीच सन्तुलन बैठाने की कोशिश करती यह लड़की घर में माँ-बाप के प्रेम से वंचित है, भाई का ध्यान व प्यार उसे कभी मिला ही नहीं, क्योंकि भाई भी नौकरी करता है। घर में घुसते ही उसे खा जाने वाला सन्नाटा मिलता है, क्योंकि बाकी सदस्य भी नौकरी करते हैं। लड़की खुद एक गिलास पानी का भरकर किचन से लाती है और टेबलेट खाकर अपने सिरदर्द को दूर करने की नाकाम कोशिश करती ही है कि अचानक उसे स्मरण हो जाता है कि उसे प्रेम करने वाला राकेश सिनेमा हॉल के बाहर उसका इन्तजार कर रहा होगा। उसे राकेश के साथ सिनेमा देखने जाने का मन है, किन्तु उसी समय उसे उसके बॉस काला साहब ने भी बुलाया है। मजबूरीवश उसे काला साहब से मिलने को अपनी प्राथमिकता बनाना पड़ता है, क्योंकि उसे नौकरी जो करनी है। बोझिल मन से वह राकेश को बनाने वाले बहाने के बारे में सोचने लगती है। अपने कॉलेज के साथी राकेश के प्रेम को भी वह अपनी पारिवारिक विवशताओं के चलते खुले मन से स्वीकार नहीं कर पाती।

4. बेटा—परिवार का लड़का एकांकी का अगला पात्र है। वह भी बेमन से ढोई जाने वाली जिम्मेदारियों से त्रस्त हो चुका है। कॉलेज के बाद उस लड़के का मन ऑफिस जाने का कतई नहीं करता। नाइट की डिप्लोमा क्लासेस भी उसे बेगार-सी लगती है। वह युवा होते हुए भी अपनी जिन्दगी से जैसे हार-सा चुका है। उसकी प्रेमिका शैली उसे बेइंतहा प्यार करती है, परन्तु काम की अधिकता के बोझ तले दबा यह लड़का अपनी प्रेमिका के प्रेम को समझकर भी न समझने का दिखावा करता है। वह जानता है कि उसकी इस बोझिल जिन्दगी में प्रेम का कोई स्थान ही नहीं है। "नो चार्म इन लाइफ" को वह स्वीकार कर चुका है। अपनी प्रेमिका के प्रेमपत्र को पढ़ने का समय भी उसके पास नहीं है। शराब की बोतल से थोड़ी शराब निकालकर पीता है और घर से निकल पड़ता है अपने कार्यों को पूरा करने के लिए।

इस प्रकार नाटककार ने एकांकी के माध्यम से एक परिवार की आपाधापी को प्रस्तुत करते हुए यह बताया है कि कागज के टुकड़े कमाने में जिन्दगी का अर्थ खो गया है, आपसी संवेदनाएँ दम तोड़ चुकी है। एक घर में रहने वाले एक ही परिवार के सदस्य अजनबी की

भाँति जीवन जीने के लिए अभिशप्त हैं। पैसे की दौड़ भले ही जीवन घटाने के लिए हो, परन्तु इस दौड़ में प्रतिभागी बनना और लगातार दौड़ते रहना ही मनुष्य की मजबूरी है।

प्रश्न 16. 'टूटते हुए' की विषय-वस्तु को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर— 'टूटते हुए' डॉ. चन्द्र का तीसरा एकांकी संग्रह है। इसमें महानगर के मध्यमवर्गीय परिवार का चित्रण है। नाटककार ने बखूबी महँगाई की मार झेलते हुए मध्यमवर्गीय परिवार की आपाधापी को बहुत सुन्दर ढंग से जीवन्त करते हुए यह बताने का प्रयास किया है कि अपने जीवनयापन के लिए एक परिवार में किस तरह सारे सदस्य मिलकर अपनी-अपनी जिम्मेदारियों का वहन करते हैं। घर का खर्च चलाने की जीजिविषा उन्हें जहाँ एक ओर स्वयं के ध्यान व रखरखाव के प्रति उपेक्षित बना देती है, वहीं दूसरी ओर महँगाई की मार से त्रस्त कर देती है। ❑

महत्वपूर्ण व्याख्याएँ

1. संकेत-स्त्री घर ..... दर्द-दर्द-दर्द दौड़-दौड़।

सन्दर्भ—प्रस्तुत गद्यांश सुरेशचंद्र शुक्ल द्वारा लिखित एकांकी 'टूटते हुए' से लिया गया है।

प्रसंग—इस गद्यांश में एकांकी की मुख्य पात्र प्रौढ़ स्त्री का संवाद है।

व्याख्या—घर के दरवाजे पर एक प्रौढ़ा स्त्री आती है वह कहती है कि कहने को सब है मेरे परिवार में मेरे पति, एक बेटा, एक बेटी। पर सब अपनी जिन्दगी में इतने व्यस्त हैं कि उनके पास समय नहीं है। मैं सुबह पाँच बजे उठकर बस इधर-उधर का सारा काम करती हुई सबका टिफिन तैयार करती हूँ। वह कहती है आज समय के साथ मनुष्य कितना बदल गया है। मैं पहले जब नौकरी करती थी, तब मेरे बॉस माथुर साहब मुझे आधे-आधे दिन की छुट्टी दे देते थे। पर अब कहने पर दो घंटे की छुट्टी भी मुश्किल से देते हैं। इस तरह स्वयं अपने आप से बात करती हैं। ज्यों-ज्यों उम्र बढ़ती जा रही है ऑफिस में भी काम का बोझ बढ़ता जा रहा है। जो लोग मेरे प्रति सहानुभूति रखते थे, वह भी अब सहानुभूति नहीं रखते। सभी लोग अपनी फाइलों का बोझ उसकी तरफ बढ़ाते जा रहे थे। उसके सिर में बहुत तेज दर्द हो रहा है या वह दर्द महसूस करती हुई कहती है बस जिन्दगी में रह गया है, दर्द-दर्द-दर्द और दौड़-दौड़-दौड़।

विशेष—महानगरीय जीवन की व्यस्तता में स्त्री के जीवन पर प्रकाश डाला गया है।

2. संकेत- पुरानी परिभाषाएँ ..... पैदा होते हैं।

संदर्भ—पूर्ववत्।

प्रसंग—इस गद्यांश में बेटों के बारे में बताया गया है।

व्याख्या—लेखक इस एकांकी में कहते हैं कि पुराने जमाने की परिभाषाएँ बदल गयी हैं। नयी परिभाषाएँ बन गयी हैं। अब पुत्र सहारे के लिए नहीं अपने लिए पैदा होते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि पहले समय में पुत्र माता-पिता के इतने आज्ञाकारी होते थे कि उनकी आज्ञा का पालन करना अपना धर्म समझते थे, उदाहरणार्थ राम ने पिता की आज्ञा में चौदह वर्ष का वनवास झेला था, पर आजकल के बेटे तो बस अपने लिए जीते हैं। उनका माता-पिता के प्रति न तो कोई लगाव होता है न प्रेम, न सहानुभूति। माता-पिता पर कितना भी संकट आये वे उनका साथ देना उचित नहीं समझते। उनकी जिन्दगी इतनी भाग-दौड़ वाली हो गयी है कि वह अपने स्वयं के लिए समय नहीं निकाल पाते तो माता-पिता के लिए क्या समय देंगे। ❑

हिन्दी निबन्ध

1 हिन्दी निबन्ध : स्वरूप और विकास

प्रश्न 1. हिन्दी निबन्ध के विकास क्रम पर प्रकाश डालिए।

अथवा

हिन्दी गद्य की विविध विधाओं के स्वरूप और विकास पर प्रकाश डालिये।

अथवा

हिन्दी निबन्ध के विकास पर प्रकाश डालिये।

अथवा

"हिन्दी साहित्य के स्वच्छन्दतावादी युग के निबन्धों में साहित्य की भावात्मक धारा की प्रचुरता है। अनुभूति-प्रवणता और निजता के गुण हैं, दर्शन या रहस्य का पुट है। काल्पनिक आदर्शवाद है।"
गद्य-संकलन के सम्पादन के उपर्युक्त निष्कर्षों के आधार पर इस युग के निबन्ध के विकास का परिचय दीजिये।

उत्तर- **हिन्दी-गद्य की विविध विधाएँ**—निबन्ध साहित्य की उन्नति के काल में गुणात्मक आधार पर, उसके भेद स्वीकार किये गये जिन्हें विविध विधाओं का नाम दिया गया। हिन्दी-गद्य की विविध विधाएँ निम्नलिखित हैं—

(1) निबन्ध, (2) कहानी, (3) व्यंग्य, (4) आत्मकथा, (5) जीवनी, (6) संस्मरण, (7) रेखाचित्र-शब्द चित्र व गद्य-गीत, (8) उपन्यास, (9) यात्रा साहित्य, (10) डायरी, (11) पत्र साहित्य, (12) नाटक, (13) साक्षात्कार आदि।

नोट—यहाँ हम उपरोक्त विधाओं में से केवल हिन्दी निबन्ध का ही विवेचन करेंगे।

हिन्दी-निबन्ध का विकास

हिन्दी में निबन्ध का आविर्भाव आधुनिक युग में ही हुआ है। इसका कारण स्पष्ट है कि एक तो इससे पूर्व गद्य का ही विकास नहीं हुआ था, दूसरे पूर्ववर्ती साहित्यकारों का लक्ष्य मुख्यतः अपनी भावानुभूतियों का ही प्रकाशन था, विचारों की अभिव्यंजना करना कम था। तीसरे निबन्धों के प्रचार के साधनों, मुद्रण यंत्र, समाचार-पत्र आदि का भी प्रचलन आधुनिक युग में ही हुआ और चौथे, मध्ययुग में उस सामाजिक और राजनीतिक चेतना का भी उन्मेश नहीं हुआ था, जिसमें भारतेन्दु युग के निबन्धों में प्राण फूँके।

निबन्धों का आधुनिक रूप पश्चिम की देन है। पाश्चात्य प्रभाव के कारण हिन्दी गद्य लेखकों में धारावाहिक शैली परिष्कृत तथा साहित्य आयी। हिन्दी निबन्ध का विकास तीन युगों में विभाजित किया जा सकता है—

(1) भारतेन्दु युग, (2) द्विवेदी युग, (3) आधुनिक युग।

भारतेन्दु युग—गद्य के अन्य अंगों की ही भाँति हिन्दी निबन्धों का प्रारम्भ भी भारतेन्दु युग से हुआ। तत्कालीन राजनैतिक, राष्ट्रीय, धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक एवं साहित्यिक

आन्दोलनों ने हिन्दी-लेखकों को निबन्ध रचना की ओर प्रेरित किया। भारतेन्दु युग का निबन्ध साहित्य सजीवता, नवसन्देश और लेखकों के फक्कड़पन से ओत-प्रोत है। उसमें जीवन का अनुराग है। समाज की सड़ी-गली रुढ़ियों पर व्यंग्य तथा सुधार का सन्देश है, प्राय: पत्रिकाओं में लिखे गये निबन्धों की भाषा चलती हुई मुहावरेदार हैं। उनमें ओज है।

इस युग के प्रसिद्ध निबन्धकारों में भारतेन्दु हरिशचन्द्र, बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, बद्रीनारायण चौधरी, प्रेमधन, ठाकुर जगमोहनसिंह आदि हैं।

भाषा और शैली की दृष्टि से उपर्युक्त लेखकों की देन हिन्दी-निबन्ध जगत में अति महत्वपूर्ण है। उसके निबन्धों में व्यक्तित्व की छाप है, शैली में रमणीयता है, स्वच्छन्द प्रभाव, सजीवता और सौष्ठव है, लेकिन उनमें कमी यह है कि विषय का सुसम्बद्ध प्रतिपादन नहीं है। हिन्दी गद्य के शैशवकाल में लिखे जाने के कारण इन निबन्धों की भाषा भी प्रौढ़ नहीं है।

द्विवेदी युग—भारतीय युग की न्यूनताओं की पूर्ति द्विवेदी युग में हुई। द्विवेदी युग ने भाषा का परिष्कार और संस्कार करके हिन्दी-गद्य को व्यवस्थित रूप दिया। इस निर्माण का श्रेय आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनके द्वारा सम्पादित सरस्वती को है। द्विवेदी-युग में वर्णात्मक, भावात्मक और चिन्तात्मक सभी वर्गों के निबन्धों की रचना हुई। ये निबन्ध प्राय: पत्रिकाओं के लिए लिखित लेखों, ग्रन्थों की भूमिकाओं और भाषणों के रूप में लिखे गये। वर्णात्मक निबन्धों में निबन्धकार ने तटस्थ भाव से अपने या दूसरे शब्दों में अभीष्ट विषय का वर्णन किया। महावीर-प्रसाद द्विवेदी, काशीप्रसाद जायसवाल, स्वामी सत्यदेव, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी आदि ने इस प्रकार के बहुसंख्यक निबन्धों की रचना की। भावात्मक निबन्धों में सहृदय निबन्धकारों के भावों का सुन्दर निरुपण हुआ। इस क्षेत्र में अध्यापक पूर्णसिंह प्रमुख हैं। विचारात्मक निबन्धों में गौरीशंकर हरीशचन्द्र ओझा, रामचन्द्र शुक्ल, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, श्यामसुन्दर दास, बाबू गुलाबराय आदि प्रमुख हैं। द्विवेदी युग में निबन्ध-साहित्य अपनी प्रौढ़ता पर पहुँच गया।

द्विवेदी उत्तर युग—इस युग में हिन्दी में निबन्ध साहित्य और उसकी शैलियों का विस्तार हुआ। हिन्दी के महान् निबन्धकार पण्डित रामचन्द्र शुक्ल इसी युग में हुए। उनके निबन्धों में अध्ययन, उद्भावना और व्यक्तित्व की छाप है। उनकी भाषा में प्रौढ़ता और अर्थगाम्भीर्य है। श्यामसुन्दर दास, गुलाबराय आदि द्विवेदी उत्तर युग के उच्चकोटि के निबन्धकार है।

आधुनिक युग—आधुनिक युग के निबन्ध मॉन्टेन के निबन्धों के समक्षक हैं। जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पन्त, महादेवी वर्मा, जैनेन्द्रकुमार और डॉ. नरेन्द्र के निबन्धों में चिन्तन की गम्भीरता है। राहुल सांस्कृत्यान शान्तिप्रिय द्विवेदी, नन्ददुलारे बाजपेयी, डॉ. रामविलास शर्मा, डॉ. सत्येन्द्र प्रभाकर माचवे आदि ने अपने विचार-प्रधान प्रौढ़ निबन्धों द्वारा हिन्दी साहित्य को सम्पन्न किया।

भावात्मक निबन्धों की ही कोटि गद्य-काव्यों की है। रामकृष्णदास और वियोगी हरि के निबन्ध रहस्यात्मक शैली में लिखे गये हैं। अतीत की ऐतिहासिक स्मृति के आधार पर महाराजकुमार रघुवीरसिंह के भाव-प्रधान निबन्धों की विक्षेपशैली हिन्दी साहित्य में विशेष स्थान रखती है। दिनेशनन्दिनी डालमियाँ और चतुरसेन शास्त्री के भावात्मक निबन्ध भी सुन्दर है।

चरित्रात्मक और संस्मरणात्मक-निबन्धों की हिन्दी में कमी है। महादेवी वर्मा द्वारा लिखित 'अतीत के चलचित्र' और 'स्मृति की रेखाएँ', 'आख्यायिका निबन्ध और काव्य' की त्रिवेणी है। संस्मरण लेखकों में पण्डित बनारसीदास चतुर्वेदी प्रमुख हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि हिन्दी में विभिन्न शैलियों की निबन्ध रचना हुई। गद्य को कवियों की कसौटी कहा गया है और निबन्ध को गद्य की कसौटी। हमारे साहित्य का यह महत्वपूर्ण अंग कविता, कहानी या उपन्यास की अपेक्षा अभी कम विकसित हुआ है, लेकिन भविष्य उज्जवल है।

प्रश्न 2. निबन्ध की प्रमुख विशेषताएँ बतलाते हुए उसके तत्वों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर- पाश्चात्य एवं भारतीय निबन्ध—साहित्य का अध्ययन करने के उपरान्त हमारे समक्ष निबन्ध की निम्नलिखित प्रमुख विशेषताएँ आती हैं—

1. स्वच्छन्दता—स्वच्छन्दता निबन्ध की प्रथम एवं अनिवार्य विशेषता है। इसीलिए डॉ. जानसन ने 'मन की मुक्त भटकन' कहकर निबन्ध की परिभाषा की है। इस विद्या में लेखक बिना किसी बन्धन के व्यक्तिगत रुचि के अनुसार अपने भावों या विचारों का प्रतिपादन करता है। इसीलिए निबन्ध का क्षेत्र अत्यधिक व्यापक होता है। कदाचित् विश्व की कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है, जिसका कि निबन्ध में विवेचन न हो सके।

2. गद्यात्मकता—गद्यात्मकता निबन्ध के तत्वों में से एक मुख्य तत्व है। सामान्यतः निबन्ध एक छोटी गद्य-रचना के रूप में होता है, किन्तु अपवाद स्वरूप एकाध स्थल पर यह पद्य के रूप में भी लिखा गया है। इसके प्रारम्भ, मध्य और उपसंहार में एक क्रमबद्धता रहती है।

3. आत्मीयता—आत्मीयता निबन्ध की सफलता और लोकप्रियता का प्राण है। इस विद्या में पाठक और लेखक के मध्य स्वाभाविक रूप में आत्मीयता या निकट सम्बन्ध होना आवश्यक है। इसके अभाव में निबन्ध में नीरसता आने की सम्भावना रहती है। इसीलिए एक उत्कृष्ट निबन्ध को एक खुला पत्र कहा गया है, जो कि सहृदय पाठक को कुछ सम्बोधित करना चाहता है।

4. सहजता और सरलता—निबन्ध दो मित्रों अथवा लेखक एवं पाठक के मध्य सहज वार्तालाप है। इसलिए इसमें सरलता और स्वाभाविकता का होना आवश्यक है। इसमें लेखक का उद्देश्य पांडित्य-प्रदर्शन न होकर सरल भाषा-शैली में हृदय के भावों की सहज अभिव्यक्ति रहती है।

5. वैयक्तिकता—वैयक्तिकता निबन्ध की अनिवार्य विशेषता है। लेखक चाहे किसी भी विषय पर निबन्ध लिखे, लेकिन उसमें उसके व्यक्तित्व की छाप स्पष्ट परिलक्षित होती है। दूसरे शब्दों में, निबन्ध लेखक के मन के स्वाधीन विचरण और चिन्तन पर आधारित रहता है। इसी दृष्टिकोण से 'शैली स्वयं व्यक्तित्व'—Style is the man himself कहा गया है।

6. सुसम्बद्धता—निबन्ध अपने में एक पूर्ण रचना है। इसमें लेखक किसी भी विषय के पहलू विशेष पर सुसम्बद्ध रूप से विचार प्रकट करता है। इसमें प्रारम्भ, मध्य और उपसंहार में क्रमबद्धता या सुसम्बद्धता रहती है। निबन्ध का आकार जहाँ तक सम्भव हो, लघु होना चाहिए। पन्द्रह-बीस पृष्ठ के आकार से अधिक बड़ा निबन्ध प्रबन्ध की श्रेणी में चला जाता है।

निबन्ध के तत्व

1. भाषा (Language)—भाषा मानवीय भावनाओं एवं विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम है। निबन्ध लेखन में भाषा का महत्वपूर्ण स्थान है। निबन्धकार की भाषा परिष्कृत, प्रवाहमयी, आकर्षक, सार्थक, स्वाभाविक, व्यंजक, सुसंगठित और सजीव होना चाहिए। एक अच्छे निबन्धकार को अपनी भाषा के प्रति सदैव सतर्क एवं जागरुक रहना चाहिए। संक्षेप में, एक सफल निबन्धकार का अपनी भाषा पर एकाधिकार होना चाहिए।

2. विषय (Subject)—विषय का अर्थ है विचार-सामग्री या प्रतिपाद्य यह परम आवश्यक है कि लेखक जिस विषय का प्रतिपादन करना चाहता है, उसका उसे विस्तृत ज्ञान एवं गहन अध्ययन होना चाहिए। निबन्ध लिखने से पूर्व लेखक ने विषय को सम्यक् रूपेण समझकर उससे सम्बन्धित विचारों को अपने मस्तिष्क में क्रमबद्ध संकलित कर लेना चाहिए, ताकि विचारों में क्रमबद्धता एवं निबन्ध में संगठनात्मकता बने रहे। इसमें अन्य विद्वानों के उद्धरणों का भी आवश्यकतानुसार यथोचित रूप में प्रयोग किया जा सकता है।

3. शैली (Style)—शैली शब्द की व्युत्पत्ति 'शील' से मानी गई है। शील का अर्थ होता है—ढंग या पद्धति। निबन्ध-शैली का अभिप्राय लिखने की एक ऐसी पद्धति से है, जिसके द्वारा कोई निबन्धकार अपनी भावनाओं, अनुभूतियों या विचारों को प्रकट रूप देता है। शैली का सम्बन्ध लेखक की भाषा और विचार दोनों से होता है। प्रत्येक लेखक की अपनी निजी शैली होती है। वह अपनी प्रकृति और सिद्धान्तों के अनुसार ही लिखता है। शैली को सजीव बनाने के लिए लेखक को प्रसंग एवं भावों के अनुकूल ही भाषा का प्रयोग करना चाहिए। जहाँ विचारों को संक्षेप रूप देना हो, वहाँ समास शैली और जहाँ विस्तार रूप देना हो, वहाँ व्यास शैली का प्रयोग करना चाहिए। निबन्धों में प्रयुक्त की जाने वाली शैली के अनेक भेद किए गए हैं; जैसे—समास शैली, व्यास-शैली, धारा-शैली, तरंग-शैली, विक्षेप-शैली आदि। सामान्यत: वर्णनात्मक एवं विवरणात्मक निबन्धों में व्यास-शैली का विचारात्मक में समास-शैली का तथा भावात्मक में धारा-शैली, तरंग-शैली एवं विक्षेप-शैली का प्रयोग किया जाता है। ❑

2 मित्रता
(आचार्य रामचन्द्र शुक्ल)

प्रश्न 3. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का निबन्धकार के रूप में परिचय दीजिए।

अथवा

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का संक्षेप में जीवन परिचय देते हुए साहित्यिक परिचय दीजिये।

उत्तर— **जीवन परिचय**—हिन्दी साहित्य के प्रकाण्ड पण्डित एवं प्रसिद्ध समालोचक श्री आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का जन्म बस्ती जिले (उत्तरप्रदेश) के अगोवा नामक ग्राम में संवत् 1941 (सन् 1884) में हुआ था। शुक्लजी को प्रारम्भ में उर्दू की शिक्षा दी गयी, क्योंकि उन दिनों उर्दू, फारसी का अधिक महत्व व प्रभाव था। उनके पिता का मिर्जापुर स्थान्तरण हो जाने के कारण फायनल तक की शिक्षा वहीं हुई। बाद में उक्त शिक्षा के लिये प्रयाग गये, किन्तु गणित में रुचि नहीं होने के कारण जो कि उन दिनों अनिवार्य विषय था। उनकी शिक्षा स्थगित हो गयी। एक स्थान पर उन्हें 200 रु. मासिक की नौकरी मिली, किन्तु आत्म सम्मानी शुक्लजी की हैड क्लर्क से अनबन होने के कारण उन्होंने नौकरी छोड़ दी। मिर्जापुर में ही अध्यापक की नौकरी की। वहीं रहकर उन्होंने अपना साहित्यिक जीवन प्रारम्भ किया।

साहित्यिक परिचय—काशी में नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा जब 'हिन्दी शब्द सागर' का सम्पादन आरम्भ हुआ, तो शुक्लजी को वहाँ कार्य करने का अवसर मिला। बाद में आप हिन्दी विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष पद पर भी रहे। शुक्लजी बहुमुखी प्रतिभा के व्यक्ति थे। उन्होंने गहन अध्ययन एवं चिन्तन के पश्चात् जो कुछ हिन्दी साहित्य को भेंट

किया। उनकी अमूल्य निजी एवं सेवा उन्हें कभी अविस्मृत नहीं होने देगी। साहित्य के विभिन्न अंगों पर उनकी लेखनी समान रूप से चलती रही। शुक्लजी ने केवल एक समालोचक के रूप में ही प्रख्यात हैं, वरन् एक श्रेष्ठ निबन्धकार, अनुवादक, इतिहासकार, कवि एवं सम्पादक के रूप में भी हमारे सामने आते हैं।

निबन्धकार के रूप में शुक्ल—हिन्दी निबन्ध के क्षेत्र में शुक्लजी की देन सर्वाधिक है। उनके निबन्धों में मौलिकता, विवेचन की गम्भीरता, विश्लेषण की सूक्ष्मता और शिल्पगत प्रौढ़ता का अद्भुत समंजन हैं। इनके प्रमुख निबन्ध हैं—कविता क्या है, श्रद्धा-भक्ति, लोभ त्रिवेणी, चिन्तामणी भाग-2, गोस्वामी तुलसीदास आदि आपकी प्रसिद्ध कृतियाँ हैं।

भाषा एवं शैली—शुक्लजी की भाषा शुद्ध खड़ी बोली हैं। उनका भाषा पर पूर्ण अधिकार है। विषयानुसार उनकी भाषा सरल एवं गम्भीर मिलती है। शुक्लजी की भाषा में उर्दू, फारसी एवं अंग्रेजी शब्दों के प्रयोग के साथ-साथ मुहावरों एवं कहावतों के उपयोग ने उनकी भाषा को बड़ा चुस्त बना दिया है। इसके अतिरिक्त व्यंग्य एवं विनोद से युक्त आडम्बर रहित आपकी भाषा में गहन से गहन विषयों को अभिव्यक्त करने की पूर्ण क्षमता है।

उनकी शैली पर उनके व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप है। शैली, विषय प्रतिपादन एवं उनकी अभिव्यंजना शक्ति से, उनके गहन अध्ययन, गम्भीर स्पष्ट विवेचना एवं निष्पक्ष समालोचना का पता चलता है। आपकी शैली में उपयुक्त शब्द, सुगठित वाक्य योजना एवं सूत्रात्मकता प्रमुख विशेषताएँ हैं। प्रत्येक शब्द का प्रयोग अपने-अपने स्थान पर अत्यन्त महत्व रखता हैं। वाक्यों में कहाँ शिथिलता दिखायी नहीं देती। जैसे—(1) आलोचनात्मक, (2) गवेषणात्मक एवं भावात्मक आपकी तीन प्रमुख शैलियाँ हैं।

आलोचनात्मक शैली गम्भीर तथा विचारपूर्ण है। अशिष्य व्यंग्य का पुट इसकी गम्भीरता को कम कर देता है। गवेषणात्मक शैली में विशेषकर सैद्धान्तिक विषयों का प्रतिपादन किया गया। इसमें अवश्य कहीं-कहीं गम्भीरता आ गयी है, किन्तु उसे सरल एवं स्पष्ट करने के लिये उदाहरणों का प्रयोग किया गया है। भावात्मक शैली के अन्तर्गत उनके मनोविकारों पर लिखे गये निवन्ध आते हैं तथा उत्साह, क्रोध, करुणा आदि अपनी अमोल साहित्य रचनाओं से हिन्दी के कोष को भरने वाले अपने क्षेत्र में इस अद्वितीय मानव की अपेक्षाकृत अल्पकाल में ही सन् 1940 में हृदयगति रूक जाने से मृत्यु हो गयी अन्यथा अपने परिपक्व अनुभव का साहित्य जगत को और भी अधिक लाभ मिलता। ❑

प्रश्न 4. 'मित्रता' निबन्ध का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

अथवा

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा रचित निबन्ध 'मित्रता' का सारांश लिखिए।

उत्तर-

'मित्रता' निबन्ध का सारांश

मित्रता आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा लिखित प्रसिद्ध निबन्ध है, जिसे उन्होंने जीवनोपयोगी विषय पर लिखा है, जिसमें इनकी लेखन-शैली सम्बन्धी अनेक विशेषताओं के दर्शन हो जाते हैं। शुक्ल जी ने मित्रता के सम्बन्ध में बताते हुए कहा है कि जब कोई युवक किशोरावस्था में घर से बाहर जाता है, उसे मित्र चुनने में कठिनाई होती है। यदि उसका व्यवहार मेल-मिलाप वाला होता है, तो उसकी लोगों से जान-पहचान बढ़ जाती है, जो बाद में मित्रता का रूप धारण कर लेती है। मित्रों के चुनाव पर उसके जीवन की सफलता निर्भर होती है, क्योंकि अच्छे व बुरे मित्रों की संगति ही उसे अच्छा व बुरा बना सकती है। युवा

लोग मित्र बनाने से पहले मित्रों के आचरण व प्रकृति का ध्यान नहीं रखते, वे केवल उनकी बाहरी विशेषताओं पर मुग्ध हो जाते हैं, जबकि मनुष्य अगर घोड़ा भी खरीदता है तो उसके गुण-दोषों को परख लेता है। किसी प्राचीन विद्वान ने कहा भी है "विश्वासपात्र मित्र से बड़ी रक्षा रहती है।" जिसे ऐसा मित्र मिल जाए उसे समझना चाहिए कि खजाना मिल गया।

जब व्यक्ति छात्रावास में रहता है तब उस पर मित्र बनाने की धुन सवार रहती है। बचपन की मित्रता भी अद्‌भुत है उसमें जितनी जल्दी दूसरे की बातें मन को लगती है, उतनी जल्दी ही रूठना मनाना भी हो जाता है। मित्रता व प्रेम के लिए यह आवश्यक नहीं है कि दो लोगों के आचरण व स्वभाव में समानता हो, जैसे राम और लक्ष्मण के स्वभाव एक-दूसरे से विपरीत थे, परन्तु दोनों में प्रगाढ़ प्रेम था। उसी तरह कर्ण और दुर्योधन के स्वभाव में विपरीतता होने के बाद भी दोनों में गहरी मित्रता थी। इसी प्रकार चाणक्य व चन्द्रगुप्त, अकबर व बीरबल आदि अनेक उदाहरण हैं। मित्र का परम कर्तव्य अपने मित्र की सहायता व उसे विकास के लिए प्रोत्साहित करना है। हमें ऐसे ही मित्रों की खोज करनी चाहिए, जो हमारे शुभचिंतक हों- जैसे राम व सुग्रीव। यदि कोई हमारे भले बुरे के बारे में हमे सचेत न कर सके तो हमें उससे दूर ही रहना चाहिए। ऐसे युवक जो आवारागर्दी करते हैं, उससे शोचनीय जीवन किसी और का नहीं है। क्योंकि उन्हें फूल-पत्तियों, झरनों की कल-कल की आवाज आदि में कोई सौन्दर्य नजर नहीं आता है। जो दिन-प्रतिदिन विषय वासनाओं में लिप्त रहते है और जिनके हृदय में केवल बुरे विचार ही उठते हैं, ऐसे युवकों का भविष्य अन्धकारमय होता है, अत: हमें ऐसे लोगों की मित्रता से दूर रहना चाहिए। बुरी संगति बहुत भयानक होती है, क्योंकि यह व्यक्ति के सभी सद्‌गुणों का नाश कर देती है और दिन-प्रतिदिन मनुष्य को पतन के गड्‌ढे में गिरा देती है। इसके विपरीत अच्छी संगति मनुष्य को पतन के गड्‌ढे से बाहर निकालने वाली बाहु के समान होती है।

शुक्लजी कहते हैं कि इंग्लैण्ड का एक विद्वान इस बात के लिए हमेशा खुश होता था कि उसे युवावस्था में राजदरबार में स्थान नहीं मिला, क्योंकि वहाँ के लोगों की बुरी संगति उसके आध्यात्मिक विकास में बाधक होती। लेखक कहते हैं कि अश्लील व फूहड़ बात करने वालों को तुरन्त रोक देना चाहिए। यदि तुम सोचोगे कि तुम्हारे चरित्र के प्रभाव के कारण वह स्वयं चुप हो जाएगा तो ऐसा सम्भव नहीं है, क्योंकि एक बार मनुष्य जब बुराई की तरफ बढ़ता है तो वह नहीं देखता कि वह कहाँ जा रहा है और उस बुराई के प्रति धीरे-धीरे तुम्हारी घृणा कम हो जाएगी। अन्त में तुम भी बुराई के भक्त बन जाओगे। इसलिए मन को स्वच्छ और उज्जवल रखने का सर्वोत्तम उपाय बुरी संगति से दूर रहना है, क्योंकि काजल की कोठरी में कितना भी चतुर व्यक्ति प्रवेश करे, उसे कालिख लग ही जाती है। ❑

महत्वपूर्ण व्याख्याएँ

1. संकेत- हम लोग ऐसे समय में समाज में प्रवेश करके अपना कार्य आरम्भ करते हैं, जबकि हमारा चित्त कोमल और हर तरह का संस्कार ग्रहण करने योग्य रहता है। हमारे भाव अपरिमार्जित और हमारी प्रवृत्ति अपरिपक्व रहती है। हम लोग कच्ची मिट्टी की मूर्ति के समान रहते हैं, जिसे जो जिस रूप का चाहे उस रूप का करे-चाहे राक्षस बनावे, चाहे देवता। ऐसे लोगों का साथ करना हमारे लिए बुरा है, जो हमसे अधिक दृढ़ संकल्प के हैं, क्योंकि हमें उनकी हर एक बात बिना विरोध के मान लेनी पड़ती है। पर ऐसे लोगों का साथ करना और बुरा है, जो हमारी ही बात को ऊपर रखते हैं,

क्योंकि ऐसा दशा में न तो हमारे ऊपर कोई दबाव रहता है और न हमारे लिए कोई सहारा रहता है।

सन्दर्भ—प्रस्तुत गद्यांश आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के निबन्ध 'मित्रता' से उद्धृत है।

व्याख्या—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी कहते हैं कि जब हम किशोरावस्था के पश्चात् युवावस्था में प्रवेश करने पर घर की सीमाओं से बाहर निकलकर समाज में कार्य करना आरम्भ करते हैं, तब हमें संसार व समाज के लोगों के साथ रहने का अनुभव बिल्कुल नहीं होता, हमें दुनियादारी की बिल्कुल समझ नहीं होती। उस समय हमारा मन बहुत कोमल होता है, जो किसी प्रकार के अच्छे या बुरे संस्कार ग्रहण करने के योग्य होता है। हमारी बुद्धि इतनी विकसित नहीं होती कि उसे उचित-अनुचित का ज्ञान हो पाए। उस समय हमारी बुद्धि कच्ची मिट्टी की मूर्ति के समान होती है, जिस पर अच्छी या बुरी किसी बात का प्रभाव बहुत जल्दी पड़ता है। उस समय हम जैसे स्वभाव के लोगों के सम्पर्क में आते हैं, उनके विचारों का हमारे मन पर वैसे ही प्रभाव पड़ता है। यदि किसी सुयोग्य व्यक्ति के सम्पर्क में हम आ जाते हैं, तो हम में देवताओं जैसे अच्छे गुण व संस्कार आ जाते हैं। यदि किसी दुश्चरित्र व दुष्ट व्यक्ति का साथ मिल जाता है, तो उसके सम्पर्क में रहकर हम भी दुर्गुण, बुरे संस्कार व घृणित कार्य करने वाले बनकर समाज में अपमानित होते हैं।

ऐसे समय में ही हमें एक सच्चे मित्र की आवश्यकता होती है, जो हमें सही मार्ग दिखाकर हमारे चरित्र व व्यक्तित्व को निखार दे। शुक्ल जी कहते हैं कि हम यदि ऐसे लोगों की संगति में रहने लग जाते हैं, जिनकी इच्छा शक्ति हमसे प्रबल होती है तथा वह अधिक दृढ़ निश्चय वाले होते हैं, तब हम उनके सामने कुछ भी बोल नहीं पाते और हमें उन्हीं के विचारों व आदर्शों पर चुपचाप चलना पड़ता है। उनकी अच्छी व बुरी सभी बातों को हमें बिना विरोध के मानना पड़ता है, फलस्वरूप हम कमजोर पड़ते जाते हैं तथा हमारी सोचने-समझने की शक्ति व कार्यक्षमता घटती जाती है।

2. संकेत- विश्वासपात्र मित्र जीवन की एक औषध है। हमें अपने मित्रों से यह आशा रखनी चाहिए कि वे उत्तम संकल्पों में हमें दृढ़ करेंगे, दोषों और त्रुटियों से हमें बचाएँगे, हमारे सत्य, पवित्रता और मर्यादा के प्रेम को पुष्ट करेंगे, जब हम कुमार्ग पर पैर रखेंगे, तब वे हमें सचेत करेंगे, जब हम हतोत्साहित होंगे, तब हमें उत्साहित करेंगे। सारांश यह है कि वे हमें उत्तमतापूर्वक जीवन निर्वाह करने में हर तरह से सहायता देंगे। सच्ची मित्रता में उत्तम से उत्तम वैद्य की-सी निपुणता और परख होती है, अच्छी से अच्छी माता की-सी धैर्य और कोमलता होती है। ऐसी ही मित्रता करने का प्रयत्न प्रत्येक पुरुष को करना चाहिए।

व्याख्या—आचार्य शुक्ल जी कहते हैं कि विश्वासपात्र मित्र दवा के समान होता है। जिस प्रकार अच्छी दवा लेने से व्यक्ति का रोग दूर हो जाता है, उसी प्रकार विश्वासपात्र मित्र हमारे जीवन में आकर हमारे बुरे संस्कार व दुर्गुण रूपी रोगों से हमें मुक्ति दिलवाता है। हमें अपने मित्रों से यह आशा रखनी चाहिए कि वे हमें दोषों, अवगुणों व बुराइयों से बचाएँ और हमारे विचारों व संकल्पों को मजबूत बनाने में हमारी सहायता करें। हमारे हृदय में अच्छे विचारों को उत्पन्न करें तथा हमें हर प्रकार की बुराइयों से बचाते रहें। हमारे मन में सत्य, मर्यादा व पवित्रता के प्रति प्रेम विकसित करें। यदि हम किसी कारणवश या लोभवश किसी गलत मार्ग पर चल पड़े हैं, तब वे हमारा मार्गदर्शन करके हमें गलत मार्ग पर चलने से बचाएँ।

यदि हम निराश व हताश हो जाएँ तो वह हमें सही मार्ग पर चलने के लिए प्रोत्साहित करें। तात्पर्य यह है कि वे हमें हर प्रकार से उत्तम जीवन जीने के लिए प्रेरित करें।

लेखक सच्चे मित्र के गुण बताते हुए कहता है कि सच्चा मित्र एक कुशल वैद्य के समान होता है। जिस प्रकार एक उत्तम वैद्य रोगी की नब्ज देखकर ही उसके रोग का पता लगा लेता है, उसी प्रकार एक सच्चा मित्र भी मित्र के हाव-भाव व उसके लक्षणों को देखकर उसके गुण-दोषों की परख कर लेता है तथा उसका सही मार्गदर्शन करके उसको भटकने से बचा लेता है। जिस प्रकार एक अच्छी माता पुत्र के सभी कष्टों को धैर्य से स्वयं सहन करके अपने पुत्र को सभी मुसीबतों से बचाती है तथा कोमलता से उसे समझा-बुझाकर सही मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करती है, ठीक उसी प्रकार के मित्र की खोज मनुष्य को करनी चाहिए, जिसमें एक अच्छे वैद्य की परख तथा अच्छी माँ जैसा धैर्य व कोमलता हो। तभी मानव का जीवन दिनों-दिन उन्नति को प्राप्त करेगा।

3. संकेत- सुन्दर प्रतिमा, मनभावनी चाल और स्वच्छन्द प्रकृति ये ही दो-चार बातें देखकर मित्रता की जाती है, पर जीवन-संग्राम में साथ देने वाले मित्रों में इनसे कुछ अधिक बातें होनी चाहिए। मित्र केवल उसे नहीं कहते, जिसके गुणों की तो हम प्रशंसा करें, पर जिससे हम स्नेह न कर सकें, जिससे अपने छोटे-मोटे काम तो हम निकालते जाएँ, पर भीतर-ही-भीतर घृणा करते रहें? मित्र सच्चे पथ-प्रदर्शक के समान होना चाहिए, जिस पर हम पूरा विश्वास कर सकें, भाई के समान होना चाहिए, जिसे हम अपना प्रीति-पात्र बना सकें, हमारे और हमारे मित्र के बीच सच्ची सहानुभूति होनी चाहिए- ऐसी सहानुभूति, जिससे एक के हानि-लाभ को दूसरा अपना हानि-लाभ समझे। मित्रता के लिए यह आवश्यक नहीं है कि दो मित्र एक ही प्रकार के कार्य करते हों या एक ही रुचि के हों। इसी प्रकार प्रकृति और आचरण की समानता भी आवश्यक या वांछनीय नहीं है। दो भिन्न प्रकृति के मनुष्यों में बराबर प्रीति और मित्रता रही है।

व्याख्या—शुक्ल जी के अनुसार, सच्चा मित्र वह नहीं हो सकता, जिसके गुणों व कार्यों की हम प्रशंसा तो करते हैं, लेकिन अपने मन से उसे प्रेम नहीं करते। सच्चे मित्र को हृदय प्रेम करना आवश्यक हो जाता है। यदि कोई ऐसा व्यक्ति है, जिससे हम अपने छोटे-मोटे काम तो निकलवाते रहते हैं, किंतु हृदय में कहीं उसके लिए घृणा का भाव समाया हो, तो उसे हम अपना मित्र नहीं कह सकते, उसे तो हमने केवल अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए मित्र बनाया था। वह हमारा सच्चा शुभ चिन्तक नहीं हो सकता। शुक्ल जी कहते हैं कि मित्र के प्रति हमारे हृदय में सच्चा व निष्कपट प्रेम होना चाहिए तथा मित्र भी हमारा सच्चा मार्गदर्शक होना चाहिए, जिस पर हम पूर्ण रूप से विश्वास कर सकें। दोनों मित्रों में परस्पर सहानुभूति हो तथा भाई के समान निःस्वार्थ प्रेम हो। एक-दूसरे की बात को सहन करने की शक्ति हो।

मित्रता में दोनों मित्रों में ऐसे गुण होने चाहिए कि वे एक-दूसरे के लाभ-हानि को अपना ही लाभ-हानि समझें और एक-दूसरे के सुख-दुःख को अपना ही सुख-दुःख मानकर उसकी सहायता को सदैव तत्पर रहें। आचार्य शुक्ल जी कहते हैं कि सच्ची मित्रता के लिए यह आवश्यक नहीं है कि दो मित्र एक-सा कार्य करते हों, समान रुचि के हों। इसी प्रकार समान प्रकृति और समान आचरण भी सच्ची मित्रता के लिए आवश्यक नहीं है। भिन्न-भिन्न प्रकृति व आचरण वाले व्यक्ति भी आपस में मित्र हो सकते हैं।

4. संकेत- इसी प्रकार प्रकृति और आचरण की समानता भी आवश्यक या वांछनीय नहीं है। दो भिन्न प्रकृति के मनुष्यों में बराबर प्रीति और मित्रता रही है। राम धीर और शान्त प्रकृति के थे, लक्ष्मण उग्र और उद्धत स्वभाव के थे, पर दोनों भाइयों में अत्यन्त प्रगाढ़ स्नेह था। उदार तथा उच्चाशय कर्ण और लोभी दुर्योधन के स्वभावों में कुछ विशेष समानता न थी, पर उन दोनों की मित्रता खूब निभी। यह कोई बात नहीं है कि एक ही स्वभाव और रुचि के लोगों में ही मित्रता हो सकती है। समाज में विभिन्नता देखकर लोग एक-दूसरे की ओर आकर्षित होते हैं, जो गुण हम में नहीं हैं, हम चाहते हैं कि कोई ऐसा मित्र मिले, जिसमें वे गुण हों। चिन्ताशील मनुष्य प्रफुल्लित चित्त का साथ ढूँढता है, निर्बल बली का, धीर उत्साही का। उच्च आकांक्षा वाला चन्द्रगुप्त युक्ति और उपाय के लिए चाणक्य का मुँह ताकता था। नीति-विशारद् अकबर मन बहलाने के लिए बीरबल की ओर देखता था।

व्याख्या—शुक्ल जी का कहना है कि दो व्यक्तियों में मित्रता के लिए यह बात महत्वपूर्ण नहीं होती है कि उनका स्वभाव भी एक-सा हो। महत्वपूर्ण बात यह है कि वे एक-दूसरे से कितनी सहानुभूति रखते हैं। यदि वे परस्पर सहानुभूति रखते हैं, तो विपरीत स्वभाव वालों में मित्रता कायम रहती है। यह मित्रता लम्बे समय तक चलती भी है और सच्ची सिद्ध भी होती है। श्रीराम-लक्ष्मण व कर्ण-दुर्योधन की मित्रता सच्ची मित्रता के साक्षात् उदाहरण है। श्रीराम कितने धीर-गम्भीर स्वभाव के थे और लक्ष्मण कितने चंचल, उग्र व उद्धत स्वभाव के थे, लेकिन स्वभाव की भिन्नता होने पर भी उनमें घनिष्ठ स्नेह था। इसी प्रकार से कर्ण वीर एवं साहसी होने के साथ-साथ उच्च विचारों वाले, गम्भीर व दानी स्वभाव के थे, जबकि दुर्योधन स्वार्थी व लोभी था, फिर भी उन दोनों की मित्रता जीवन के अन्तिम क्षणों तक भी अटूट रही।

लेखक कहता है कि यह जरूरी नहीं है कि दो व्यक्तियों में मित्रता होने के लिए उनके स्वभाव और रुचियाँ एक-सी ही हों। मित्रता तो विपरीत स्वभाव और रुचियों वाले व्यक्तियों में भी हो सकती है। किसी व्यक्ति में जो गुण नहीं होता है, उसी गुण को दूसरे व्यक्ति में देखकर उससे आकर्षित होकर वह मित्रता कर लेता है। इससे उस व्यक्ति के गुण की कमी की पूर्ति मित्रता के माध्यम से हो जाती है। व्यक्ति को ऐसे ही परस्पर विपरीत गुणों वाले व्यक्ति की तलाश रहती है। चिन्ताग्रस्त लोग प्रसन्नचित्त व्यक्ति से, कमजोर व्यक्ति बलवान से, धैर्यवान व्यक्ति उत्साही व्यक्ति से मित्रता इसलिए करना चाहता है, ताकि उसकी अपनी कमियाँ पूरी हो जाएँ। ❑

3 अशोक के फूल
(आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी)

प्रश्न 5. हजारी प्रसाद द्विवेदी के व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डालिए।

अथवा

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की निबन्ध शैली की विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।

अथवा

हजारी प्रसाद द्विवेदी की भाषा शैली पर प्रकाश डालिए।

उत्तर— **साहित्यिक परिचय**—आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का जन्म सन् 1907 में बलिया जिले के एक छोटे-से गाँव छपरा (ओझवलियाँ) में हुआ था। आपके पिता का नाम पं. अनमोल द्विवेदी था। आपने सन् 1920 में मिडिल की परीक्षा पास की। उसके बाद काशी में संस्कृत का अध्ययन किया। यहाँ ज्योतिषाचार्य की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की। सन् 1930 में आपकी नियुक्ति हिन्दी विभाग में अध्यापन कार्य करने हेतु हो गयी। यहाँ आप कई वर्षों तक रहे। उसके बाद काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष पद पर उन्नति के साथ चले गये। जुलाई 1960 से पंजाब विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष बनकर गये। आप काशी हिन्दू विश्व विद्यालय में रैक्टर के पद पर भी आसीन रहे।

आचार्य द्विवेदी को लखनऊ विश्वविद्यालय में सन् 1940 में ससम्मान डी.लिट्. की उपाधि से विभूषित किया। सन् 1950 में आप राष्ट्रपति द्वारा पद्म भूषण की उपाधि से विभूषित किये गये। सन् 1962 में साहित्य अकादमी ने आपको टैगोर पुरस्कार प्रदान किया। आप एक कुशल वक्ता, अच्छे लेखक और प्रख्यात विद्धान हैं। आपकी निम्नलिखित रचनाएँ हैं—

रचनाएँ—मौलिक—सूर साहित्य हिन्दी साहित्य की भूमिका, कवीर, सूरदास तथा उनका काव्य, वाणभट्ट की आत्मकथा, अशोक के फूल, साहित्य का मर्म, कल्पना, निबन्ध संग्रह प्राचीन भारत में कला का विकास नाथ सम्प्रदाय, चौरंगीनाथ की प्राण संकली आदि।

सम्पादित—पृथ्वीराज रासो, सन्देश, रसिक आदि।

भाषा—संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान होने के कारण आपकी भाषा संस्कृतनिष्ठ शुद्ध हिन्दी है, किन्तु संस्कृति का पूर्ण वैभव होने पर भी उसमें दुरुहता और समासात्मकता नहीं आने पायी हैं। आपने अपनी भाषा में ऊर्दू तथा अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग भी किया।

आपकी भाषा में दो रूप मिलते हैं। प्रथम रूप में विचारात्मक निबन्ध आते हैं, जिसकी भाषा संयत एवं गम्भीर है। दूसरा रूप आलोचनात्मक निबन्धों में पाया जाता है। इनकी भाषा प्रौढ़ है। इसमें संस्कृत के तत्सम शब्दों की अधिकता है। इसी से यह भाषा संस्कृत गर्भित और प्रांजल है—

इसके अतिरिक्त आपकी भाषा में चपलता, प्रवाह, व्यंग्य, वक्रता और कहावतों के दर्शन होते हैं तथा व्यावहारिक और सीधी-सादी उनकी भाषा है। वे मुख्यत: वक्ता और अध्यापक हैं। अध्यापकीय सरलता उनकी भाषा में सदैव रहती है। उनकी भाषा में शिथिलता, अव्यवस्था नाम मात्र को भी प्राप्त नहीं होती है। इसके साथ ही आपकी भाषा प्रवाह पूर्ण सारगर्भित और अलंकृत भी हैं।

शैली—शैली के सम्बन्ध में नहीं कहा जा सकता है कि वह विविध रूपों वाली हैं। कहीं व्यावहारिक, कहीं मुहावरेदार, कहीं अलंकारिक तथा कहीं प्रौढ़ और कहीं लम्बे-लम्बे

वाक्य और कहीं छोटे-छोटे वाक्य आपकी शैली की विशेषताएँ हैं। आपकी शैली को निम्नलिखित रूपों में विभाजित किया जा सकता हैं—

(1) विचारात्मक शैली, (2) गवेषणात्मक शैली (3) आलोचनात्मक शैली (4) व्याख्यात्मक शैली (5) व्यंग्यात्मक शैली, (6) आत्म व्यंजक शैली (7) भावात्मक शैली।

1. विचारात्मक शैली—वह शैली विचारों से परिपूर्ण हैं। इसमें वाक्य न छोटे हैं और न ही लम्बे। इस शैली के द्वारा आपने अपने विचारों को पूर्णतया समझाने की तथा आदर्श उपस्थित करने की कोशिश की है।

2. गवेषणात्मक शैली—इसका प्रयोग सांस्कृतिक निबन्धों में हुआ है। इसकी भाषा भी संस्कृत गर्भित है तथा वाक्य लम्बे हैं।

3. आलोचनात्मक शैली—इस शैली में आपने आलोचनाएँ ही लिखी हैं। इसकी भाषा संस्कृत गर्भित होते हुए भी सरल तथा साहित्यिक है।

4. व्याख्यात्मक शैली—इस शैली का प्रयोग दार्शनिक विषयों के लिए किया गया है। इसकी भाषा संस्कृतनिष्ठ एवं तत्सम प्रदान हैं।

आपकी भाषा शैली का एक उदाहरण देखिये—

"मैं साहित्य को मनुष्य की दृष्टि से देखने का पक्षपाती हूँ। जो वाग्जाल मनुष्य की दुर्गति, हीनता और परमुखापेक्षिक से बचा सके, जो उसकी आत्मा को तेजोद्दीप्त न बना सके, जो उनके हृदय को दु:ख कातर और संवेदनशील न बना सके, उसे साहित्य कहने में मुझे संकोच होता है। मैं अनुभव करता हूँ कि हम लोग कठिन समय के भीतर से गुजर रहे हैं। .....ऐसा लग रहा है किसी विकट दुर्भाग्य के इंगित पर स्वार्थ के प्रेत ने मनुष्य को दबोच लिया है।"

साहित्य में स्थान—डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी उच्चकोटि के आलोचक, निबन्धकार और शैलीकार हैं। आचार्य शुक्ल की भाँति सूत्र शैली के विधायक नहीं, विवेचन शैली के अनुयायी हैं। आपके सांस्कृतिक लेख-निबन्ध बहुत महत्वपूर्ण हैं: कुशलवक्ता, प्रगतिशील विचारक, निर्भीक लेखक और चुटीली व्यंग्यकार के रूप में आपका प्रमुख स्थान है। आपकी हिन्दी सेवा अनुपम हैं। ❑

प्रश्न 6. "अशोक के फूल" निबन्ध का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

उत्तर— आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने विपुल मात्रा में निबन्धों की रचना की हैं। साहित्य, संस्कृति, ज्योतिष, धर्म, इतिहास सम्बन्धी निबन्धों में उनका पाण्डिम और उनकी कवित्वपूर्ण भाषा दर्शनीय है। नि:सन्देह वे ललित निबन्धों के क्षेत्र में अद्वितीय है। 'अशोक के फूल', 'कुटज', 'कल्पलता', 'विचार', और वितर्क, विचार प्रवाह उनके निबन्ध संग्रह हैं। 'अशोक के फूल' निबन्ध के माध्यम से वे भारतीय साहित्य के अनछुए प्रसंगों को उद्घाटित करते हैं, मनुष्य की जिजिविषा का जयगान करते हैं और भारतीय संस्कृति के समन्वयवादी उज्जवल पक्ष को सामने रखते हैं।

निबन्ध का सारांश—छोटे-छोटे लाल-लाल पुष्पों के मनोहर स्तब्धों में खिला 'अशोक का फूल' सचमुच मनमोहक हैं। तभी तो कामदेव ने भी उसकी मनोहारिता पर रीझकर उसे अपने तूणीर में स्थान देने योग्य समझा था। ऐसा महत्वपूर्ण पुष्प आज एकदम विलुप्त सा हो गया है। यह सोचकर लेखक उदास हो जाते हैं। आचार्य द्विवेदी 'अशोक के फूल' का महत्व बतलाते हुए कहते हैं—

अशोक के फूल ने भारत के साहित्य एवं जीवन में कालिदास के काल में पदार्पण किया। कालिदास ने अशोक को सुन्दरियों के नुपूर वाले चरणों में मृदु आघात से फूलने दिया

और उनके गालों पर कर्णावतंस के रूप में झूलने दिया और उनके नील अलकों में शोभा से खेलने दिया, किन्तु उर्दू सभ्यता एवं संस्कृति ने उस सुन्दर फूल को साहित्य के सिंहासन से चुपचाप उतार दिया। साहित्य रंगमंच के सफल अभिनेता की भाँति झम से प्रकट होकर दर्शकों को अभिभूत करने वाला फूल एकदम से निकल गया और आज बिल्कुल विस्मृत हो गया। इसका यही आशय निकलता है कि भारतीयों की सहृदयता लुप्त हो चली है। मजा तो यह है कि आजकल कोई निफूला तरंगायति पत्रों वाला वृक्ष अशोक कहलाता है। अशोक का इससे बढ़कर अपमान और क्या हो सकता है ?

भारत के धर्म, साहित्य एवं शिल्प में अद्‌भुत प्रभाव डालने वाले अशोक ने ईस्वी सन् के आस-पास अवतार लिया था। उस समय तक गन्धर्वों ने भारतीय धर्म को एक नया मोड़ दिया था गन्धर्व आर्येत्तर जाति वाले रहे। सन्दर्व और गन्धर्व एक ही शब्द के भिन्न-भिन्न उच्चारण हैं तथा कन्दर्प और कामदेव एक-दूसरे के पर्यायवाची शब्द है। शिव से पिटने पर भी बुद्धदेव् से हारने पर भी कन्दर्प ने नये अस्त्रों का प्रयोग करते-करते अन्त में अशोक को अस्त्र बना लिया और शक्ति को नष्ट कर कापालिक मत की प्रतिष्ठा कर दी।

भारत भूमि की यह विशेषता है कि इसमें विविधता के बीच में एकता है। आज का भारत आज की हिन्दू रीति, नीति, उनके आर्य एवं आर्येतर उपादानों का अद्‌भुत मिश्रण है। प्रत्येक पशु और पक्षी का अपना अलग इतिहास है। अशोक की भी अपनी एक स्मृति परम्परा हैं। वामन-पुराण के अनुसार ज्यों ही मदन देवता ने शिवजी पर बाण फेंका त्यों ही वे स्वयं ही राख बन गये और उनका धनुष टुक-टुक होकर जमीन पर गिरा, तो उसकी मूठ चम्पा में नाइस्थान मौलसिरी में, कोटि बेला के पुष्पों में परिणित हो गये। यह घटना सम्भवत: मुराणकार की कल्पना हो, किन्तु एक निश्चित काल के पूर्व इन फूलों की चर्चा हमारे साहित्य में मिलती रही है। स्पष्ट है कि ये फूल हमें सोमरस की भाँति गन्धर्वों की ही देन हैं।

प्राचीन साहित्य में वृक्ष-किन्नर, गन्धर्व आदि अपदेवता माने गये हैं। बौद्ध साहित्य तथा महाभारत इसके प्रमाण है। वृक्षों के अपदेवता यक्षों के पास स्त्रियाँ सन्तानकामिनी होकर जाया करती थीं। साँची, भरहुत तथा बोधगथा में वृक्षों में उत्कीर्ण इन स्त्रियों की नग्न मूर्तियाँ इनकी गवाही देती हैं। अशोक इन सब वृक्षों में रहस्यमय रहा। परवर्ती धर्म-ग्रन्थों के अनुसार चैत्र-शुक्ल अष्टमी के दिन व्रत करने और अशोक की आठ पंक्तियों का भक्षण करने से स्त्रियाँ की सन्तान, कामना फलवर्ती होती है। आर्यों का संघर्ष असुरों दानवों, दैत्यों तथा राक्षसों से तो हुआ, जो कि आर्यों के प्रभुत्व को अस्वीकार कर देने वाली गर्वीली जातियाँ थीं, किन्तु यक्ष किन्नर गन्धर्वों से आर्यों का संघर्ष कभीं नहीं हुआ। आर्यों के साथ मित्रता को बनाये रखने के कारण परवर्ती साहित्य में इनका उल्लेख बड़े मान-सम्मान के साथ किया गया है। हिमालय प्रदेश की रहने वाली ये जातियाँ शान्तिप्रिय होने के साथ धनी भी थीं, अत: विलासिता में डूबी रहती थीं, जो हो अशोक के वृक्ष की पूजा इन्हीं गन्धर्वों और यक्षों की देन हैं। पूजा वृक्ष अधिष्ठता कन्दर्प देवता की होती थी। मालविकाग्नि मित्र 'रत्नावली' आदि नाटकों में मदनोत्सव का बड़ा सरल एवं मादक वर्णन मिलता है। अशोक के लाल स्तवक आज भी उसी पुराने सुनहरे वातावरण का मूल वर्णन करते हैं।

. अशोक का फूल उस सामान्त-सभ्यता की परिष्कृत रुचि का प्रतीक ही है, जो साधारण श्रेणी के लोगों के श्रम कणों से अपने को पुष्ट करती हैं। अत: उस सामन्तशाही के साथ-साथ अशोक का भी अध: पतन हुआ, तो वह स्वाभाविक है। मानव जाति की धारा अनादिकाल से अनेकानेक धर्माचारों, संस्थाओं आदि को आत्मसात् करती हुई अबोध गति से बह रही है।

गंगा की धारा की भाँति उसे भी पवित्र माना जाता हैं। प्राचीन संस्कारों में से कोई एक आज नहीं रह पाये और सम्भव है, आज के आचारों के अनेक वंश आगामी जमाने में अतल के गर्त में अन्तर्धान हो जाये। महाकाल के प्रत्येक पद्चारण से पृथ्वी बदलेगी, विकृत होगी और नवीन बनेगी। आचार्य प्रवर अनुभव करते हैं कि अशोक के लिए उदास होना बेकार है। यह आज उसी स्थिति में है, जैसा दो हजार वर्ष पूर्व था। बदली है, तो मनुष्य की मनोवृत्ति। यदि यह मनोवृत्ति न बदली होती, तो मनुष्य प्रगति के पथ पर न बढ़ सकता था। यह मनोवृत्ति आज भी बदल रही है। अशोक भी आज मस्ती में झूम रहा है, उसका कुछ नहीं बिगड़ा। कालिदास ने इसका रस या आनन्द अपने ढंग से लिया था, आज भी ले सकते हैं। ऐसी स्थिति में उदास होना व्यर्थ हैं। ❑

प्रश्न 7. ''अशोक के फूल'' में व्यक्त निबन्धकार के विचारों की विवेचना कीजिये।

अथवा

''अशोक के फूल'' नामक निबन्ध में लेखक के उद्देश्य को स्पष्ट कीजिये।

उत्तर— 'अशोक के फूल' नामक निबन्ध में लेखक का उद्देश्य भारतीय संस्कृति तथा सभ्यताओं को उत्तम तथा ग्रहण योग्य फूल का वर्णन करना कहा हैं। इसके माध्यम से लेखक ने स्पष्ट किया है कि यहाँ यक्ष गंधर्व, नाग, शक, हूण, असुर, दैत्य, दानव आदि अनेक जातियाँ आयीं और उनकी संस्कृति भारतीय संस्कृति रूपी महासागर में विलीन हो गयी। अशोक के फूल के सम्बन्ध में भी यही बात स्पष्ट होती है कि इस वृक्ष का सीधा सम्बन्ध गन्धर्व संस्कृति से था।

अशोक के फूल पर कालिदास युगीन दृष्टि का प्रभाव है। इसलिए इसे कोई नहीं देख पा रहा। आज प्राचीन सभ्यता संस्कृति का स्थान नहीं रहा, तो इस दृष्टि से हम किसी भी वस्तु का दृश्य का, प्राकृतिक उपादान का कैसे रसास्वादन कर सकते हैं। यह संसार जीवन की भाँति संस्कृति, सभ्यता सभी परिवर्तनशील है। इसलिए पुरानी मान्यताओं में जो शक्तिशाली होती है, वे चलती रहती हैं, शेष भुला दी जाती है। समाज के निर्माण का नयी सभ्यता के उदय होने का यही कारण है। सामंतीय जीवन पद्धति को आज के जनतांत्रिक समाज में कोई याद नहीं रखना चाहता, इसलिए उस काल की सभी बातें भुला दी गयी हैं। ❑

प्रश्न 8. ''अशोक के फूल'' में निबन्धकार ने हास्य और व्यंग्य का बड़ा सुन्दर सामंजस्य किया है। समझाइए। अथवा

''अशोक के फूल'' निबन्ध संग्रह अपने ढंग का अनूठा निबन्ध है।'' इस कथन की विवेचना कीजिए।

उत्तर— अशोक के फूल निबन्ध संग्रह का अनूठापन—निबन्ध प्राय: अपनी भावनाओं को स्पष्ट करने के लिए लिखे जाते हैं। उनमें लेखक का निजीपन या आत्मनिष्ठता होती है। अशोक के फूल की स्थिति को देखकर लेखक का मन उदास हो जाता है और वह गवेषणा करता वहाँ पहुँच जाता है, जहाँ से कि उसका उल्लेख मिलन आरम्भ होता है। कालिदास के काव्य में मदनोत्सव, यक्षों, गंधर्वों आदि के सम्बन्ध में जानकारी तथा भूतकाल की सभ्यता और विचारधाराओं का ज्ञान भी मिलता है, दूसरी बात यह है कि इस निबन्ध में भावावेग है। जैसे—''क्या मनोहर फूल भुलाने की चीज थी। कविता क्या सो गयी थी। न मेरा मन सबको मानने को तैयार नहीं है।'' इस आवेग के साथ तथ्य उभरकर सामने आये हैं कि अशोक के फूल की क्या स्थिति थी और आज क्या हो गयी है। अशोक के फूल के विषय में कई निजी जानकारी से उसने अपने निबन्ध को पुष्ट किया हैं तथा सुन्दर तार्किक ढंग से निबन्ध के विषय

का प्रस्तुतीकरण हुआ है। यत्र-तत्र हास्य-व्यंग्य के छींटों से यहाँ रोचकता बढ़ गयी है यथा- संतप्त कामिनियों को गंधर्वों से अधिक शक्तिशाली देवताओं का वरदान मिलने लगा—पीरों ने, भूत, भैरवों ने, काली दुर्गा ने यक्षों की इज्जत घटा दी। इस निबन्ध का अनूठापन यही है कि इस निबन्ध संग्रह का यह एक श्रेष्ठ व्यक्तिगत निबन्ध है, जिसमें लेखक की सभी निहित शक्तियों का पूर्ण प्रस्फुटन होता है अर्थात् लेखक का पांडित्य, गवेषणात्मक प्रवृत्ति, हास्य, व्यंग्य, गम्भीरता तथा रोचक रूप में प्रस्तुत करने का ढंग निराला है।

भाषा-शैली—इस निबन्ध की भाषा साहित्यिक, प्रौढ़, प्रांजल तथा भावानुरूप है। यत्र-तत्र उर्दू के शब्द मुसाहिब, इशारे, हजम आदि का प्रयोग हुआ है। सम्पूर्ण निबन्ध की भाषा संस्कृतनिष्ठ है, पर इसमें सरलता, सुबोधता, स्पष्टता और रोचकता का गुण है। वर्ण वर्तस, आर्सिजकारी, तरंगायित, कुज्झमटिकाछन्न, कठांभरण, संभार, जिजीविषा, दयिता, वायुत्पुलित आदि अनेक शब्द हैं, जिनका अर्थबोध साधारण पाठक के लिए कठिन है। इस निबन्ध में लेखक का प्रकृति के प्रति अनुराग, चिन्तनशीलता, हास्य या विकास का क्रमिक रूप सभी कुछ मिलता है। ❑

महत्वपूर्ण व्याख्याएँ

1. संकेत- ''अशोक में फिर फूल आ गये हैं। इन छोटे-छोटे, लाल-लाल पुष्पों के मनोहर स्तबकों में कैसा मोहन भाव है। बहुत सोच-समझकर कन्दर्प-देवता ने लाखों मनोहर पुष्पों को छोड़कर सिर्फ पाँच को ही अपने तूणीर में स्थान देने योग्य समझा था। एक यह अशोक भी है।''

संन्दर्भ—प्रस्तुत गद्य पंक्तियाँ आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी द्वारा लिखित 'अशोक के फूल' से उद्धृत है।

व्याख्या—यहाँ आचार्य द्विवेदी कहते हैं कि अशोक के फूल पुनः पुष्पित हो चुके हैं। छोटे-छोटे लाल पुष्पों के मनोहर स्तब्धों में खिला अशोक अति मनमोहक है। कामदेव ने भी उसकी मनोहारिता पर रीझकर उसे अपने पाँच बाणों में से एक मानकर अपने तूणीर में स्थान देने योग्य समझा। यह पुष्पित अशोक निःसन्देह बहुत सुन्दर है।

2. संकेत- ''लेकिन पुष्पित अशोक को देखकर मेरा मन उदास हो जाता है। इसलिए नहीं कि सुन्दर वस्तुओं को हतभाग्य समझने में मुझे कोई विशेष रस मिलता है। कुछ लोगों को मिलता है। वे बहुत दूरदर्शी होते हैं, जो भी सामने पड़ गया, उसके जीवन के अन्तिम मुहूर्त तक का हिसाब वे लगा लेते हैं। मेरी दृष्टि इतनी दूर तक नहीं जाती। फिर भी मेरा मन इस फूल को देखकर उदास हो जाता है।''

प्रसंग—भारतीय साहित्य में किसी समय अशोक के फूल का एक महत्वपूर्ण स्थान था, लेकिन इसे आज पूरी तरह भुला दिया गया है। यह सोचकर लेखक उदास है। यही बात इस प्रसंग में कही गयी हैं।

व्याख्या—पुष्पित अशोक को देखकर लेखक कहता है कि उसका मन उदास हो जाता है। यह इसलिए नहीं कि उसे सुन्दर वस्तुओं का दुर्भाग्य समझने में कोई विशेष रस मिलता है। जिन्हें मिलता है, वे बहुत दूरदर्शी होते हैं। ऐसे लोग सामने पड़ी हुई वस्तु के जीवन के अन्तिम मुहूर्त तक हिसाब लगा लेते हैं। लेखक का दृष्टिकोण इतना दूर तक नहीं पहुँच पाता है। फिर भी लेखक अशोक के फूल को देखकर उदास हो जाता है, वह इसलिए कि इसे आज पूरी तरह भुला दिया गया है।

3. संकेत- "भारतीय साहित्य में और इसलिए जीवन में भी इस पुष्प का प्रवेश और निर्गम दोनों ही विचित्र नाटकीय व्यापार हैं। ऐसा तो कोई नहीं कह सकेगा कि कालिदास के पूर्व भारतवर्ष में इस पुष्प का कोई नाम नहीं जानता था, परन्तु कालिदास के काव्यों में यह जिस शोभा और सौकुमार्य का भार लेकर प्रवेश करता है, वह पहले कहाँ था। उस प्रवेश में नववधू के गृह-प्रवेश की भाँति शोभा है, गरिमा है, पवित्रता है और सुकुमारता है।"

व्याख्या—आचार्य द्विवेदी का मत है कि कमल, पाठक और आम, मंजरी भारतीय संस्कृति के अभिन्न अंग हैं। इसी प्रकार भारतीय संस्कृति में अशोक का भी अपना अलग महत्व है और जिसके प्रवेश और निष्क्रमण की भी एक कथा है। सबसे पहले कालिदास ने अपने काव्यों में अशोक पुष्प के सौन्दर्य और उसकी मनोहरता का वर्णन करके उसे भारतीय पुष्पों के बीच उच्चासन पर प्रतिष्ठित किया। उसकी जिस शोभा और कोमलता को कालिदास की सौन्दर्यान्वेषी दृष्टि ने पहचाना उसे उनके पूर्व किसी ने स्वीकृति नहीं दी थी। पतिगृह में प्रथम बार प्रवेश करते हुए नवागता वधू को जो शोभा होती है, वैसी ही पवित्रता, कोमलता और शोभा अशोक में भी थी, क्योंकि वह गन्धर्वों की देन था।

4. संकेत- "संघर्षों से मनुष्य ने कई शक्ति पाई है। हमारे सामने समाज का आज जो रूप है, वह न जाने कितने ग्रहण और त्याग का रूप है। देश और जाति की विशुद्ध संस्कृति केवल बाद की बात है। सब कुछ में मिलावट, सब कुछ अविशुद्ध है।"

व्याख्या—आरम्भ से ही मानव जाति ने संघर्ष किया है और हर संघर्ष के उपरान्त उसे नयी शक्ति मिली है। हमारे समक्ष समाज का जो रूप आज है, वह न जाने कितने त्याग और ग्रहण का फल है। किसी भी देश और जाति की शुद्ध संस्कृति की जो लोग बात करते हैं, वह सब बेमानी है, क्योंकि संस्कृति का विकास ग्रहण और त्याग के सिद्धान्त पर हुआ है। यदि हम अन्वेषण करें, तो पाते हैं कि हर संस्कृति में दूसरी संस्कृति के तत्व मिलते है। और उसका प्रभाव होता है। ऐसी दशा में शुद्धता की बात करना व्यर्थ है।

5. संकेत- "शुद्ध है केवल मनुष्य की दुर्दम जिजीविषा (जीने की इच्छा) वह गंगा की आवधित अनाहत धारा के समान सब कुछ हजम करने के बाद भी पवित्र हैं। सभ्यता और संस्कृति का मोह क्षणभर बाधा उपस्थित करता है, धर्माचार का संस्कार थोड़ी देर तक इस धारा से टक्कर लेता है, पर इस दुर्दम धारा में सब कुछ बह जाते हैं। जितना कुछ इस जीवन शक्ति को समर्थ बनाता है, उतना उसका अंग बन जाता है, बाकी फेंक दिया जाता है।"

व्याख्या—द्विवेदी जी कहते है कि इस संसार में शुद्धता केवल मनुष्य की जीवित रहने की इच्छा में ही पायी जाती है। वह गंगा की धारा के समान मार्ग में पड़े नदी-तालाबों की गन्दगी को समेटकर हजम कर लेती है और शुद्ध और पवित्र बनी रहती है। फिर द्विवेदी कहते है कि मनुष्य के जीने की इच्छा ने ही अन्य संस्कृतियों को ग्रहण किया और अपनी संस्कृति का उज्जवल रूप प्रदान किया। अपनी सभ्यता और अपनी संस्कृति का मोह कुछ देर तो मनुष्य को थोड़ी देर रोक पाता है। धर्म आचार-विचार, संस्कार भी थोड़ी देर के लिए मनुष्य को रोक पाते हैं, किन्तु जब जीने की इच्छा उग्र हो उठती है, तो ये सब बाधाएँ स्वयं ही हट जाती हैं। उस स्थिति में जितना मनुष्य के जीने के लिए आवश्यक होता है, वह बच जाता है, शेष समाप्त हो जाता है या कूड़े की भाँति फेंक दिया जाता है।

6. संकेत- ''मेरा मन उमड़-घुमड़कर भारतीय रस साधना के पिछले हजार वर्षों पर बरस पड़ना चाहता है। क्या यह मनोहर पुष्प भुलाने की चीज थी ? सहृदयता क्या लुप्त हो गयी थी ?''

व्याख्या—अशोक के फूल के पीछे छिपे हुए विलुप्त गौरव की स्मृति में लेखक का मन उदास हो जाता है और वह उमड़-घुमड़कर भारतीय रस-साधना के पिछले हजारों वर्षों पर बरस जाना चाहता है। वह उस वैभवशाली युग की रंग-स्थली में विचरण करने लगता है। जब कालिदास के ग्रन्थों में नववधू के गृह प्रवेश की भाँति शोभा और गरिमा को बिखेरता हुआ अशोक का फूल अवतरित हुआ था, उस प्रवेश में हवन के महक की सी पवित्रता और सुकुमारता थी। कालिदास द्वारा पाये सम्मान से वह धन्य हो उठा था।

कितना स्पृहरणीय उसका सौभाग्य था, जब झन्कार उत्पन्न करने वाले नुपुरों से अलंकृत चरणों की कोमल चोटें खाकर वह रसिक अशोक फूल उठता है। कोमल कपोलों पर कर्णफूल के रूप में झूलता था और हिलती हुई घँघुराली नील अलकों के जूड़े में बँधकर गजब छा देता था। कामदेव के पाँच बाणों में सम्मिलित आम, अरविन्द नीलकमल तो उसी प्रकार से सम्मान पाते चले आ रहे हैं, हाँ बेचारी चमेली की पूँछ अवश्य कुछ कम हो गयी है, किन्तु उसकी माँग ही कब अधिक थी ? एकमात्र अशोक ही भुलाया गया है, ऐसा मनोहर पुष्प क्या भुलाने की चीज थी ? क्या संसार में सहृदयता नामक वस्तु मर गयी ?

7. संकेत- ''रविन्द्रनाथ ने इस भारतवर्ष को 'महामानव समुद्र' कहा है। विचित्र देश है यह। असुर आये, आर्य आये, शक आये, हूण आये, नाग आये, यक्ष आये, गन्धर्व आये न जाने कितनी मानव-जातियाँ यहाँ आयीं और आज के भारतवर्ष के बनाने में अपना हाथ लगा गयीं। जिसे हम हिन्दू रीति-नीति कहते हैं वह अनेक आर्य और आर्येतर उपादानों का अद्‌भूत मिश्रण है।''

प्रसंग—उक्त प्रसंग में लेखक ने भारतवर्ष के विषय में अपनी अवधारणा स्पष्ट की है।

व्याख्या—आचार्य द्विवेदी कहते हैं कि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने इस भारतवर्ष को महामानव समुद्र कहा है। वास्तव में यह विचित्र देश है। इस देश को बनाने के लिए असुर, आर्य, शक, हूण, नाग, यक्ष, गन्धर्व आदि अनेक जातियाँ आयीं और समा गयीं। हिन्दू जाति अनेक आर्य और आर्येतर उपादानों का अद्‌भूत सम्मिश्रण है। इस प्रकार यह हमारा देश न जाने कितनी स्मृतियों को लेकर उपस्थित है।

8. संकेत- ''कहते हैं कि दुनिया बड़ी भुलक्कड़ है। केवल इतना याद रखती है, जितने से उसका स्वार्थ सधता है। बाकी को फेंककर आगे बढ़ जाती है। शायद अशोक से उसका स्वार्थ नहीं सधा। क्यों उसे वह याद रखती ? सारा संसार स्वार्थ का अखाड़ा ही तो है।''

व्याख्या—यह सांसारिक मानव बड़ा भुलक्कड़ है, स्वार्थी है। वह व्यर्थ की यादगारों से अपने को बोझिल नहीं बनाना चाहता। वह उन्हीं वस्तु को याद रखता है, जो उसके दैनिक जीवन की स्वार्थ-पूर्ति में सहायता पहुँचाते हैं। इस संसार में प्रत्येक वस्तु की सामायिक उपयोगिता होती है। समय की दृष्टि से अनुपयोगी वस्तु उपेक्षित हो जाती है। समय के साथ मनुष्य उन्हीं वस्तुओं को याद रखता है, जो उसकी जीवन यात्रा में सहायक होती है। समय के परिवर्तन के साथ अशोक की मूल्यमान उपयोगिता नष्ट हो गयी, फिर अकारण उसको याद कर वह अपनी स्मरण शक्ति को क्यों खर्च करे ? वैसे भी सारा संसार स्वार्थ के विविध कार्य-व्यापारों से भरा हुआ एक क्रीड़ा-स्थल ही तो है।

9. संकेत- "मुझे मानव जाति की दुर्दम निर्मम धारा के हजारों वर्ष का रूप साफ दिखायी दे रहा है। मनुष्य की जीवन शक्ति, बड़ी निर्मम है, वह सभ्यता और संस्कृति के वृथा मोहों को रौन्दती चली आ रही है। न जाने कितने धर्माचारों, विश्वासों, उत्सवों और व्रतों को धोती-बहाती वह जीवनधारा आगे बढ़ी है।"

व्याख्या—लेखक मनुष्य की जीवन शक्ति पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि मैं मनुष्य जाति की कठिनाई से दबायी जाने वाली क्रूर धारा के हजार वर्ष के इतिहास को भली-भाँति देख रहा हूँ। मनुष्य के जीने की इच्छा बड़ी ही ममताहीन है, वह सभ्यता और संस्कृति के आकर्षण में न फँसकर उसके प्रति व्यर्थ के मोह को कुचलती हुई तेजी से अपने पथ पर अग्रसर हो रही है। वह हजार वर्ष पूर्व से लेकर न जाने कितनी जातियों एवं संस्कृतियों की धार्मिक परम्पराओं, रीति-नीतियों, विश्वासों एवं उत्सव व्रतों को डूबती-डूबाती आज की इस स्थिति में पहुँची है। ❑

4 मेरे राम का मुकुट भीग रहा है

(आचार्य विद्यानिवास मिश्र)

प्रश्न 9. विद्यानिवास मिश्र द्वारा रचित निबन्ध 'मेरे राम का मुकुट भींग रहा है' का सार अपने शब्दों में लिखिए।

उत्तर- प्रस्तुत निबन्ध के आरम्भ में लेखक अपनी उदास मन:स्थिति का वर्णन कर रहा है। वह महीनों से उदास बना हुआ है जबकि विचार करने पर उसे इस उदासी का कोई विशेष कारण भी दिखाई नहीं देता। लेखक की मन:स्थिति ऐसी विचित्र बनी हुई है कि कभी तो बड़ी से-बड़ी परेशानी पैदा करने वाली घटना एक नितांत सामान्य, उपेक्षणीय घटना बनकर रह जाती है और कभी बहुत ही मामूली छोटी-सी दिखने वाली घटना कई दिनों तक उसे परेशान किए रहती है। इसी प्रसंग में लेखक एक ऐसी ही घटना का वर्णन कर रहा है जिसे लेकर वह बहुत ही परेशान हो गया था। दो-चार दिन पहले उसके एक मित्र रात को नौ बजे संगीत का कोई कार्यक्रम सुनने गए थे। लेखक के एक चिरंजीव और बाहर से आई हुई एक कन्या ने भी उसी संगीत कार्यक्रम में जाने का अनुरोध किया जिसे लेखक ने हिचकते हुए मन से स्वीकार कर लिया। लेखक ने यह हिदायत अवश्य दे दी वे डेढ़-दो घंटे कार्यक्रम सुनकर लौट आए किन्तु वे लोग तो बहुत देर तक नहीं लौटे। रात के बारह बजे, तो लेखक की पत्नी चिन्तित हो उठी—क्योंकि शहरों में आजकल रातों में लड़के-लड़कियों का आना-जाना सर्वथा निरापद नहीं होता। लेखक ने किसी तरह अपनी पत्नी को तो चुप कर दिया। किन्तु उसकी अपनी उद्विग्नता समय के साथ-साथ और अधिक बढ़ती गई।

तभी लेखक के मन-मस्तिष्क में बचपन में दादी-नानी से सुने एक गीत की ये पंक्तियां कौंध गई—

मोरे राम के भीजैमुकुटवा, लछिमन के पटुकवा
मोरी सीता के भीजै सेनुरवा, त राम घर लौटहिं।

अर्थात् मेरे राम का मुकुट भीग रहा होगा, मेरे लक्ष्मण का पट्टा भीग रहा होगा। मेरी सीता की मांग का सिन्दूर भीग रहा होगा, मेरे राम घर लौट आते लेखक को याद है कि जब कभी वह बहुत बड़े अन्तराल के बाद अपने घर लौटता तो घर की दादी-नानी उसका स्वागत यही कहकर करती थीं कि 'मेरे लाल को कैसा वनवास मिला था।' आज बड़ा होने पर लेखक

को अपनी दादी-नानी की इस उद्विग्नता का रहस्य पता लग गया। उसे लगा कि हमसे अगली पीढ़ी, हमारी पीढ़ी की ममता, हृदय की उद्विग्नता को नहीं समझ पाती और एक हमारी पीढ़ी है जो कि अपनी संतान के संभावित संकट की कल्पना मात्र से ही उद्विग्न हो जाती है।

लेखक को श्रीराम की कथा का वह प्रसंग याद आ गया जबकि श्रीराम को वनवास हुआ था और उनकी मां कौशल्या उद्विग्न हो उठी थीं। उस समय भी राम के माथे पर मुकुट अवश्य था। सभी को उसी मुकुट के भीगने की चिन्ता रहती थी। आज भी हिन्दुओं के जनजीवन में वनवासी धनुर्धर राम ही राजाराम बने हुए हैं।

श्री राम के वनगमन के समय उन्होंने अपना राजसी वेश तो उतार फेंका किन्तु उनका मुकुट तो लोगों के हृदय में बसा हुआ था, वह कैसे उतरता। लोगों को यही चिन्ता सालती रही कि कहीं श्रीराम का मुकुट, लक्ष्मण का दुपट्टा और सीताजी की मांग का सिन्दूर न भीग जाए। आशय यही है कि श्रीराम-लक्ष्मण और सीता सभी तो ऐश्वर्य और राजसी वैभव के हकदार है किन्तु फिर भी उनके भाग्य में वनवास ही लिखा है।

लेखक को लगता है कि एक श्रीराम की ही माता कौशल्या नहीं अपितु सारे भारत देश की एक कौशल्या है जिसे हर वर्षा में बस एक ही चिन्ता सालती है अर्थात् "मोरे राम के भीजै मुकुटवा"। उसे बराबर यही चिन्ता रहती है कि उसकी सन्तान को वह सुख-वैभव नहीं मिल पा रहा है जिसकी वह पात्र है। इस कौशल्या को धीरज नहीं मिलता लगता है कि संसार का नियम यही है—ऐश्वर्य और निर्वासन दोनो साथ-साथ चलते हैं। जिस राम के भाग्य में राजसी वैभव-विलास मिला था उसके भाग्य में निर्वासन का दुख पहले ही दबा था। सारा संसार मंगल-मोद में निमग्न है, उसे सर्वत्र हर्ष-विलास ही दिखता है किन्तु लेखक स्वभाव से निराशावादी है और इसी कारण उसकी आंखें शंकालु रहती हैं। लेखक की कठिनाई यही है कि उसे मंगलमय प्रभात की कल्पना में भी अंधेरी कालरात्रि का भय दिखता है। जब कभी वह किसी बंदनवार को देखता है तो उसे वह किसी मंगल के रूप में नहीं अपितु बटोरी हुई रस्सी के रूप में कुंडली मारे नागिन के रूप में देखता है। लेखक की शंकालु दृष्टि जो कुछ देखती है, वह तुलसी की निम्न पंक्तियों में वर्णित है—

लागति अवध भयावह भारी, मानहुं कालराति अंधियारी।
घोर जंतु सम पुर नरनारी, डरपहिं एकहिं एक निहारी।
घर मसान परिजन जनु भूता, सुत हित मीत मनहुं जमदूता।
बागंह बिटप बेलि कुम्हिलाहीं, सरित सरोवर देखि न जाहीं।

मंगलमय प्रभात की कल्पना के स्थान पर अंधेरी कालरात्रि की उक्त भयावह कल्पना केवल इसी कारण थी क्योंकि जिस राम को ऐश्वर्य मिलने वाला था, उसे वनवास भोगना पड़ा। इसीलिए लेखक चाहता है कि भले ही राम भीग जाएं किन्तु राम के उत्कर्ष की कल्पना सुरक्षित रहनी चाहिए। लेखक को यही चिन्ता है कि राम के उत्कर्ष की कल्पना कहीं खण्डित न हो जाए।

राम और सीता की स्थिति भी भिन्न है क्योंकि राम तो वनवास के बाद लौट आते हैं, किन्तु सीता को तो पुन: निर्वासन का दुख भोगना पड़ता है। यह सर्वविदित है कि श्रीराम ने किन्हीं कारणों से सीता को फिर से वन में भेज दिया था जहां उसे प्रसव पीड़ा सहन करनी पड़ी। उस समय जन्म के गीत गाने वाला भी कोई नहीं था, प्रसव पीड़ा के समय सहारा देने वाला कोई नहीं था। जंगल की सूखी लकड़ियाँ बीन-बीनकर वह अपने शरीर को उष्णता पहुँचाती हैं और जुड़वा बच्चों को जन्म देती है। फलत: अयोध्या पहुँचकर भी राम को राजसी वैभव का सुख नहीं मिल पाता। सीता के अभाव में राम के लिए अयोध्या पुन: जंगल की तरह बन गई है।

का मुकुट स्वयं उन्हीं के लिए भार बन गया है। यद्यपि सीता जंगल में रहते हुए भी राम के मुकुट की रक्षा करती है किन्तु राम के लिए अयोध्या आने पर भी सुख सुलभ नहीं रह जाता।

लेखक इसी विचार-तंद्रा में डूबा हुआ था कि उसे पुन: यह याद आया कि उसका पुत्र और बाहर से आई हुई जो कन्या संगीत के कार्यक्रम में भाग लेने गए थे, वे अभी तक घर नहीं लौटे थे। निबन्ध के आरम्भ में लेखक ने जिस चिन्ता का उल्लेख किया था, वही चिन्ता फिर घिर आई। सारी रात लेखक ने नाना प्रकार की चिन्ताओं में बिताई थी। इन लोगों की प्रतीक्षा करते-करते लेखक निराश हो गया था कि तभी सवेरे चार बजे घर पर दस्तक हुई। सभी लोग सकुशल लौट आए थे, किसी ने कुछ खाया-पिया नहीं और सभी चुपचाप अपने-अपने स्थान पर सो गए लेखक ने भी चैन की सांस ली।

लेखक अपने मन के भीतर झांकता है तो उसे बार-बार यही ध्यान आता है कि उसे सबसे अधिक चिन्ता इसी बात की थी कि बाहर से आई हुई परायी कन्या भी रात देर तक नहीं लौटी थी। लेखक को लगता है कि उस कन्या की चिन्ता शायद इसीलिए थी कि उसे सीता का स्मरण हो आया था। लेखक को यह भी लगता है कि उसका मन बहुत बँटा हुआ है—हजारों मनचाही और अनचाही चीजों के बीच। उसे लगता है कि उसकी राम के भीगने की चिन्ता भी शायद यथार्थ नहीं है। वह सोचता है कि इस प्रकार की चिन्ता किसी पराये के लिए कैसे हो सकती है, अपनों के लिए होती है।

राम के मुकुट भीगने की चिन्ता तभी हो सकती है जबकि राम के प्रति वैसा ही दर्द का सम्बन्ध हो जैसा कि अपने चिरंजीव और बाहर से आई हुई कन्या के लिए था। केवल राम की चिन्ता से भरा हुआ हृदय लेखक के पास कहाँ है? कन्या की चिन्ता करते समय उसे सीता का ख्याल आ गया था। लेखक इसी चिन्ता में डूबा हुआ है कि सूर्योदय हो जाता है और उसके साथ ही चक्की पीसती हुई महिलाओं के गीत के ये स्वयं सुनाई पड़ते हैं "मोरे राम के भीजै मुकुटवा।" ❑

महत्वपूर्ण व्याख्याएँ

1. संकेत- महीनों से मन बेहद-बेहद उदास है। उदासी की कोई खास वजह नहीं, कुछ तबीयत ढीली, कुछ आसपास के तनाव और कुछ उनके टूटने का डर, खुले आकाश के नीचे भी खुलकर सांस लेने की जगह की कमी, जिस काम में लगकर मुक्ति पाना चाहती हूं, उस काम में हजार बाधाएं, कुल ले-देकर उदासी के लिए इतनी बड़ी चीज नहीं बनती। फिर भी रात-रात नींद नहीं आती। दिन ऐसे बीतते हैं जैसे भूतों के सपनों की एक रील पर दूसरी रील चढ़ा दी गयी हो और भूतों की आकृतियां और डरावनी हो गयी हों। इसलिए कभी-कभी तो बड़ी से बड़ी परेशान करने वाली बात हो जाती है और कुछ भी परेशानी नहीं होती, उल्टे ऐसे लगता है, जो हुआ, एक सहज क्रम में हुआ, न होना ही कुछ अटपटा होता और कभी-कभी बहुत मामूली-सी बात भी भयंकर चिन्ता का कारण बन जाती है।"

प्रसंग—प्रस्तुत गद्यांश श्री विद्यानिवास मिश्र द्वारा विरचित 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' नामक निबन्ध से उद्धृत किया गया है जिसमें लेखक ने अपनी विचित्र मन:स्थिति का वर्णन किया है। प्रस्तुत गद्यांश निबन्ध का आरंभिक गद्यांश है और इसे एक प्रकार से निबन्ध की भूमिका के रूप में समझा जा सकता हैं।

व्याख्या—अपनी विचित्र मन:स्थिति का वर्णन करते हुए लेखक कहता है कि "कई महीनों से मुझे उदासी का अनुभव हो रहा है। यद्यपि मेरी इस उदासीनता का कोई विशेष कारण

नहीं दिखता फिर भी उदासी है कि बराबर बनी हुई है। फलतः मन भी कुछ बोझिल रहता है। प्रकटतः कोई अभाव भी नहीं दिखता। कई बार तो ऐसा लगता है कि मैं खुलकर सांस भी नहीं ले सकता। यदि किसी काम को करने का निश्चय करता हूँ तो उसमें अनेक बाधाएँ उपस्थित हो जाती हैं और सीधा-सरल-सा दिखने वाला काम भी पूरा नहीं हो पाता। इस प्रकार पूरी खोजबीन करने पर भी मुझे अपनी इस उदासी का कोई कारण ढूढ़े नहीं मिलता। रात की नींद और दिन का चैन गायब-सा हो गया है। दिन में तरह-तरह की चिन्ताएँ घेरे रहती हैं और यही नहीं, ये चिन्ताएँ भी निरन्तर भयावह होती जाती हैं। इस सबका स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि कभी तो बहुत गंभीर बात भी सहज रूप में घट जाती है और कभी-कभी छोटी-सी, मामूली-सी दिखने वाली बात भयंकर रूप धारण कर लेती है। कभी तो गंभीर घटनाएँ ऐसे सहज रूप में घट जाती हैं मानो कुछ भी विशेष न हुआ हो।

विशेष—1. प्रस्तुत पंक्तियों में लेखक ने अपनी मनःस्थिति का सजीव चित्रण किया है।

2. निबन्ध की एक अन्यतम विशेषता यह होती है कि उस पर निबन्धकार के व्यक्तित्व की छाप होती है। उक्त पंक्तियाँ लेखक के व्यक्तित्व की छाप की ही परिचायक है।

2. संकेत- ''राम का मुकुट इतना भारी हो उठता है कि राम उस बोझ से कराह उठते हैं और इस वेदना के चीत्कार में सीता के माथे का सिन्दूर और दमक उठता है, सीता का वर्चस्व और प्रखर हो उठता है।

प्रसंग—प्रस्तुत गद्यांश श्री विद्यानिवास मिश्र द्वारा विरचित 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' नामक निबन्ध से उद्धृत किया गया है जिसमें लेखक ने सीता के दोहरे निर्वासन की पीड़ा का उल्लेख किया है। निर्वासन के बाद राम तो अयोध्या में लौट आये थे किन्तु सीता को तो पुनः निर्वासन की पीड़ा सहन करनी पड़ी थी।

व्याख्या—लेखक बता रहा है कि "निर्वासन की अवधि बीत जाने के बाद राम अयोध्या लौट आए किन्तु यहाँ भी उन्हें वांछित सुख ऐश्वर्य प्राप्त न हो सका क्योंकि सीता उनके साथ नहीं थीं। सीता को पुनः निर्वासन भोगना पड़ा था, जंगल में नितान्त बेसहारा रहकर जुड़वाँ बच्चों को जन्म देना पड़ता था, सीता की यह असहनीय पीड़ा राम से छिपी नहीं थी और इस कारण उनका मुकुट भारी हो गया था अर्थात् उनका समूचा ऐश्वर्य फीका पड़ गया था, उनके जीवन का समूचा उत्साह कहीं गायब हो गया था। स्वभावतः राम का अन्तर्मन बुरी तरह कराह उठा था, उन्हें रह-रहकर सीता की असहनीय पीड़ा का स्मरण आ रहा था। इसके विपरीत सीता की मांग का सिन्दूर इस अग्नि-परीक्षा में और भी अधिक प्रखरता के साथ उभर रहा था। भाव यह है कि इस अग्निपरीक्षा में सीता की पवित्रता और अधिक प्रमाणित हो गई थी।

"जाने कब से मेरे राम भीग रहे हैं और बादल है कि मूसलाधार ढरकाये चले जा रहे हैं, इतने में मन में एक चोर धीरे-से फुसफुसाता है, राम तुम्हारे कब से हुए। तुम, जिसकी बुनाहट पहचान में नहीं आती, जिसके व्यक्तित्व के ताने-बाने तार-तार होकर अलग हो गए हैं, तुम्हारे कहे जाने वाले कोई हो भी सकते हैं कि यह तुम कह रहे हो, मेरे राम। और चोर की बात सच लगती है, मन कितना बँटा हुआ है, मनचाही और अनचाही दोनों तरह की हजारों चीजों में। दूसरे कुछ पतियायें, पर अपने ही भीतर परतीत नहीं होती कि मैं किसी का हूं या कोई मेरा है? पर दूसरी ओर यह भी सोचता हूँ कि क्या बार-बार विचित्र से अनमने पन में अकारण चिन्ता किसके लिए होती है, वह चिन्ता क्या पराये के लिए होती है, यह क्या कुछ भी अपना नहीं है? फिर इस अनमनेपन में ही क्या राम अपनाने के लिए हाथ नहीं बढ़ाते है क्या न कुछ होना और न कुछ बनाना ही अपनाने की उनकी बढ़ी हुई शर्तें नहीं हैं? ❑

हिन्दी गद्य विधाएँ

1 हिन्दी की अन्य गद्य विधाएँ : स्वरूप और विकास

संस्मरण : सुभद्राकुमारी चौहान (महादेवी वर्मा)
(पथ के साथी संग्रह से)

प्रश्न 1. **संस्मरण विधा पर एक निबन्ध लिखिए।**

अथवा

संस्मरणों की विकास यात्रा के बारे में आप क्या जानते हैं? लिखिए।

अथवा

'संस्मरण इतिहास की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण होते हैं', स्पष्ट कीजिए।

अथवा

संस्मरण से आप क्या समझते हैं ? इस विधा के बारे में सामान्य रूप से प्रकाश डालिये।

उत्तर– लेखक के स्मृति–पटल पर अंकित किसी विशेष के जीवन की कुछ घटनाओं का रोचक विवरण ही संस्मरण कहलाता है। इसमें लेखक केवल उसी का वर्णन करता है, जो लेखक ने स्वयं देखा या अनुभव किया।

संस्मरण निकटता से देखे गये व्यक्तियों से सम्बन्धित होता है, अतः इसका विवरण सर्वथा प्रमाणित होता है, संस्मरण लेखक जब अपने विषय में लिखता है, तो जीवनी के निकट होती है। संस्मरण के इन दोनों प्रकारों को अंग्रेजी में क्रमशः 'रेमिनिसेसज' और 'मे–वायर्स' कहते हैं। संस्मरणकार संस्मरण में अपने समय का इतिहास भी प्रस्तुत करता है। किन्तु उसका दृष्टिकोण इतिहास के वस्तु परक दृष्टिकोण से पूर्ण रूप से भिन्न होता है। संस्मरण लेखक जो स्वयं देखता है, जो स्वयं अनुभव करता है, उसी का वर्णन करता है। इस प्रकार उसका वर्णन स्वयं की अनुभूतियों और संवेदनाओं से अनुप्राणित होता है। वह वास्तव में सम्पूर्ण भावना और जीवन के साथ अपने आस–पास के वातावरण का सृजन करता है। **रामगोपालसिंह** का मत है कि "संस्मरण में लेखक किसी घटना, स्थल या व्यक्तित्व से सम्बन्धित निजी अनुभूति की स्मृति को साकारता प्रदान करता है, जो अन्दर ही अन्दर उसके मन को कुरेदती रहती है और अभिव्यक्ति के लिए उनके मन, प्राण को उद्वेलित करती रहती है। वह स्मृति लेखक के मन में बनी रहकर भाव, संवेदना और राग के पुट पाक से आकार ग्रहण करती है।"

इसे कथानुसार कह सकते हैं। संस्मरण, इस प्रकार स्मृति और अनुभूति की कलात्मक अभिव्यक्ति है, संस्मरण द्वारा स्वयं किये गये क्षणों का भाव संकुल आलेख है। प्रभाव की एकता उसकी विशेषता है।

हिन्दी साहित्य में संस्मरण कला का आरम्भ–द्विवेदी युग से माना जाता है। प्रारम्भिक संस्मरणकारों में पद्मसिंह शर्मा का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उनके संस्मरण 'पद्मपराग' में संग्रहीत हैं। श्रीराम शर्मा के संस्मरण बोलती प्रतिमा सन् बयालीस के संस्मरण

और शिकार स्थितियों के मार्मिक और संवेदनशील चित्रिण हैं, जो पढ़ते ही हृदय को द्रवित कर देते हैं। राधिकारमण प्रसादसिंह के संस्मरण 'टूटा तारा', 'सावनी-सभा' तथा सूरदास भी विशेष रूप से प्रसिद्ध है। बनारसीदास चतुर्वेदी हिन्दी के संस्मरणकारों में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। जीवनगत यथार्थता, भावनागत कोमलता और कलागत प्रौढ़ता उनके संस्मरणों संस्मरण और हमारे आराध्य की विशेषताएँ हैं।

हिन्दी के संस्मरण साहित्य में महादेवी वर्मा का सर्वोच्च स्थान है। 'अतीत के चलचित्र' 'स्मृति कि रेखाएँ' 'श्रृंखला की कड़ियाँ और पथ के साथी' उनके संस्मरण संग्रह है। भावनागत मार्दव, चित्रोपमता, लाक्षणिकता, ध्वन्यात्मकता और लालित्यपूर्ण भाषा शैली उनकी विशेषताएँ हैं। शान्तिप्रिय द्विवेदी द्वारा लिखित 'परिव्राजक की प्रजा' और 'पथ चिन्ह' संस्मरण संग्रह है, जिनमें लेखक का भावना प्रधान हृदय मुखर उठा है। रामवृक्ष बेनीपुरी की संस्मरण 'माटी की मूरतें' 'मील के पत्थर' 'जंजीर और दीवारें' भावना के आवेश से तरल है। सत्य का आग्रह और भाषा का लालित्य उनके प्रधान गुण हैं। राहुल सांस्कृत्यायन के संस्मरण-'बचपन की स्मृतियाँ', 'मेरे असहयोग के साथी' और जिनका में कृतज्ञ हूं—प्राय: गम्भीर है। भदन्त आनन्द कौशल्यायन बहुमुखी हैं। 'सिंहावलोकन' नाम से यशपाल के संस्मरण प्रकाशित हुए हैं। कथन की स्पष्टता, विद्रोह भावना और निर्भीकता उनकी प्रधान विशेषताएँ हैं। 'भूले हुए चेहरे', 'दीप जले शंख बजे', 'जिन्दगी मुस्कारई', 'माटी हो गयी सोना' और 'बाजे पायलियाँ के घुँघरू' कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर के संस्मरण हैं, जो कला की दृष्टि से निश्चय ही प्रौढ़ हैं। देवेन्द्र सत्यार्थी भाव-प्रधान संस्मरणकार है। 'कोटा अधिवेशन' 'क्या गौरी क्या सांवरी' तथा 'रेखाएँ बोल उठी, उनके संस्मरण संग्रह है। अन्य संस्मरणकारों में हरिवंशराय बच्चन, रामधारीसिंह दिनकर जैनेन्द्र शिवपूजन सहाय, घनश्याम बिड़ला, महावीर त्यागी और तनसुखराय गुप्त के नाम महत्वपूर्ण है। ❑

प्रश्न 2. महादेवी वर्मा द्वारा रचित सुभद्रा कुमारी चौहान नामक संस्मरण की समीक्षा कीजिए।

अथवा

'पथ के साथी' के अन्तर्गत सुभद्राकुमारी चौहान नामक संस्मरण का सार संक्षेप में लिखिए।

उत्तर— महादेवी जी ने सुभद्राकुमारी चौहान की चारित्रिक एवं साहित्यिक विशेषताओं के साथ इस संस्मरण को लिखा है। वह उनके गुणों से अत्यन्त प्रभावित हुई हैं, उसी की एक झलक को उन्होंने अपने शब्दों में प्रस्तुत किया है, उसी की विषय वस्तु या संक्षिप्त सार इस प्रकार है-महादेवीजी एवं सुभद्राकुमारीजी दोनों ही एक ही विद्यालय में अध्ययनरत थी। महादेवीजी पाँचवी कक्षा की छात्रा एवं सुभद्राजी सातवीं कक्षा की छात्रा थी। उनका परिचय बड़े ही विचित्रपूर्ण ढंग से हुआ जो इस प्रकार है।

एक सातवीं कक्षा की विद्यार्थिनी, एक पाँचवी कक्षा की विद्यार्थिनी से प्रश्न करती है, 'क्या तुम कविता लिखती हो ? दूसरी ने सिर हिलाकर ऐसी अस्वीकृति दी जिसमें हाँ और नहीं तरल होकर एक हो गये थे। प्रश्न करने वाली ने इस स्वीकृति-अस्वीकृति की सन्धि से खीझ कर कहा, 'तुम्हारी क्लास की लड़कियाँ तो कहती हैं कि तुम गणित की कापी तक में कविता लिखती हो ! दिखाओ अपनी कापी और उत्तर की प्रतीक्षा में समय नष्ट न कर वह कविता लिखने की अपराधिनी को हाथ पकड़कर खींचती हुई उसके कमरे में डेस्क के पास ले गई। नित्य व्यवहार में आने वाली गणित की कापी को छिपाना सम्भव नहीं था, अत: उसके साथ अंकों के बीच में अनाधिकार सिकुड़कर बैठी हुई तुकबन्दियाँ अनायास पकड़ में आ गई।

इतना दण्ड ही पर्याप्त था। पर इसमें सन्तुष्ट न होकर अपराध की अन्वेषिका ने एक-हाथ में वह चित्र-विचित्र कापी थामी और दूसरे में अभियुक्ता की उँगलियाँ कस कर पकड़ीं और वह हर कमरे में जा-जा कर इस अपराध की सार्वजनिक घोषणा करने लगी।

उस युग में कविता-रचना अपराधों की सूची में थी। कोई तुक जोड़ता है, यह सुनकर ही सुनाने वालों के मुख की रेखाएँ इस प्रकार वक्र-कुंचित हो जाती थीं मानो उन्हें कोई कटु-तिक्त पेय पीना पड़ा हो।

महादेवी के अनुसार सुभद्रा की कद काठी सामान्य मझौले कद की थी। उसमें कुछ भी वीर या रौद्र नहीं था जिसकी कल्पना हम वीर गीतों के रचयिता से करते हैं। उनका रूप एक अत्यन्त निश्छल, कोमल, उदार व्यक्तित्व वाली भारतीय नारी का था उससे उनके अर्न्त का पता नहीं लगता था। "मैंने हँसना सीखा है मैं नहीं जानती रोना" की लेखिका की हँसी एक अबोध शिशु को निश्छल हँसी की तरह थी-महादेवी लिखती है-

वे अपने बचपन की एक घटना सुनाती थीं। कृष्ण और गोपियों की कथा सुनकर एक दिन बालिका सुभद्रा ने निश्चय किया कि वह गोपी बनकर ग्वालों के साथ कृष्ण को ढूँढने जाएगी।

दूसरे दिन रह लकुटी लेकर गायों और ग्वालों के झुण्ड के साथ कीकर और बबूल से भरे जंगल में पहुँच गई। गोधूली वेला में चरवाहे और गायें तो घर की ओर लौट गए, पर गोपी बनने की साधवाली बालिका कृष्ण को खोजती ही रह गई। उसके पैरों में काँटे चुभ गए, कँटीली झाड़ियों में कपड़े उलझ कर फट गए, प्यास से कंठ सूख गया और पसीने पर धूल की पर्त जम गई, पर वह धुनवाली बालिका लौटने की प्रस्तुत नहीं हुई। रात होते देख घर वालों ने उन्हें खोजना आरम्भ किया और ग्वालों से पूछते-पूछते अँधेरे करील-वन में उन्हें पाया।

अपने निश्चित लक्ष्य-पथ पर अडिग रहना और सब-कुछ हँसते-हँसते सहना उनका स्वभावजात गुण था। क्रास्थवेट गर्ल्स कॉलेज में जब वे आठवीं कक्षा की विद्यार्थिनी थी, तभी उनका विवाह हुआ और उन्होंने पतिगृह के लिए प्रस्थान किया। स्वतन्त्रता के युद्ध के लिए सन्नद्ध सेनानी पति को वे विवाह से पहले देख भी चुकी थीं और उनके विचारों से भी परिचित थीं। उनसे यह छिपा नहीं था कि नववधू के रूप में उनका जो प्राप्य है उसे देने का न पति को अवकाश है न लेने का उन्हें। वस्तुत: जिस विवाह में मंगल-कंकण ही रण-कंकण बन गया, उसकी गृहस्थी भी कारागार में ही बसाई जा सकती थी। और उन्होंने बसाई भी वहीं। पर इस साधना की मर्मव्यथा को वही नारी जान सकती है जिसने अपनी देहली पर खड़े होकर भीतर के मंगल चौक पर रखे मंगल कलश, तुलसी-चौरे पर जलते हुए घी के दीपक और हर कोने से स्नेह भरी बाँहें फैलाये हुए अपने घर पर दृष्टि डाली हो और फिर बाहर के अन्धकार, आँधी और तूफान को तोला हो और तब घर की सुरक्षित सीमा पार कर, उसके सुन्दर मधुर आह्वान की ओर से पीठ फेर कर अँधेरे रास्ते पर काँटों से उलझती चल पड़ी हो।

महादेवी सुभद्राजी के चरित्र के बारे में लिखती हैं--

उनके मानसिक जगत में हीनता की किसी ग्रन्थि के लिए कभी अवकाश नहीं रहा, घर से बाहर बैठकर वे कोमल और ओज भरे छन्द लिखने वाले हाथों से गोबर के कंडे थापती थी। घर के भीतर तन्मयता से आँगन लीपती थीं, बर्तन माँजती थी। आँगन लीपने की कला में मेरा भी कुछ प्रवेश था, अत: प्राय: हम दोनों प्रतियोगिता के लिए आँगन भिन्न-भिन्न छोरों लीपना आरम्भ करते थे। कार्य में एकान्त तन्मयता केवल उसी गृहिणी में सम्भव है जो अपने घर की धरती को समस्त हृदय से चाहती हो और सुभद्रा ऐसी ही गृहिणी थीं। उस छोटे-से अधबने घर की छोटी-सी सीमा में उन्होंने क्या नहीं संगृहित किया। छोटे-बड़े, रंग-बिरंगे

फूलों के पौधों की क्यारियाँ, ऋतु के अनुसार तरकारियाँ, गाय, बच्छे आदि-आदि बड़ी गृहस्थी की सब सज्जा वहाँ विराट दृश्य के छोटे चित्र के समान उपस्थित थी। अपने इस आकार में छोटे साम्राज्य को उन्होंने अपनी ममता के जादू से इतना विशाल बना रखा था कि उसके द्वार पर न कोई अनाहूत रहा और न निराश लौटा। जिन संघर्षों के बीच उन्हें मार्ग बनाना पड़ा वे किसी भी व्यक्ति को अनुदार और कटु बनाने में समर्थ थे। पर सुभद्रा के भीतर बैठी सृजनशीला नारी जानती थी कि काँटों का स्थान जब चरणों के नीचे रहता है, तभी वे टूटकर दूसरों को बंधने की शक्ति खोजते हैं। परीक्षाएँ जब मनुष्य के मानसिक स्वास्थ्य को क्षत-विक्षत कर डालती है, तब उनमें उत्तीर्ण होने-न-होने का कोई मूल्य नही रह जाता।

सुभद्रा जो महिमामयी माँ भी उसकी वीरता का स्त्रोत भी वात्सल्य ही था। जिस प्रकार मधुमक्खी विभिन्न फूलों से शहद बनाती है। उसी प्रकार कोमल कठिन सह्य-असह्य अनुभवों से सुभद्राजी जीवन बनाती थी। उनमें विवेचन शक्ति थी। उन्होंने अनेक समस्याओं का अपने निष्कर्ष से चमत्कारी हल निकाला। महादेवी लिखती हैं—

जब स्त्री का व्यक्तित्व उसके पति से स्वतन्त्र नहीं माना जाता था, तब वे कहती हैं, "मनुष्य की आत्मा स्वतन्त्र है। फिर चाहे वह स्त्री-शरीर के अन्दर निवास करती हो, चाहे पुरुष-शरीर के अन्दर। इसी से पुरुष और स्त्री का अपना-अपना व्यक्तित्व अलग रहता है। जब समाज और परिवार की सत्ता के विरुद्ध कुछ कहना अधर्म माना जाता था, तब वे कहती हैं, "समाज और परिवार व्यक्ति को बन्धन में बाँधकर रहते हैं। ये बंधन देशकालानुसार बदलते रहते हैं। सुभद्रा जी ने परम्पराओं एवं रुढ़ियों को तोड़ा है। महादेवी लिखती हैं—

अनेक समस्याओं की ओर उनकी दृष्टि इतनी पैनी है कि सहज भाव से कहीं सरल कहानी का अन्त भी हमें झकझोर डालता है।

वे राजनीतिक जीवन में ही विद्रोहिणी नहीं रही, अपने पारिवारिक जीवन में भी उन्होंने अपने विद्रोह को सफलतापूर्वक उतारकर उसे सृजन का रूप दिया था।

देश की जिस स्वतन्त्रता के लिए उन्होंने अपने जीवन के वासन्ती सपने अंगारों पर रख दिये थे, उसकी प्राप्ति के उपरान्त भी जब उन्हें सब ओर अभाव और पीड़ा दिखाई दी, तब उन्होंने अपने संघर्षकालीन साथियों से भी विद्रोह किया। उनकी उग्रता का अंतिम परिचय तो विश्ववन्द्य बापू की अस्थि-विसर्जन के दिन प्राप्त हुआ। वे कई सौ हरिजन महिलाओं के जुलूस के साथ-साथ सात मील पैदल चलकर नर्मदा किनारे पहुँची। पर अन्य सम्पन्न परिवारों की सदस्याएँ मोटरों पर ही जा सकीं। जब अस्थि-प्रवाह के उपरान्त संयोजित सभा के घेरे में इन पैदल आने वालों को स्थान नहीं दिया गया, तब सुभद्रा जी का क्षुब्ध हो जाना स्वाभाविक ही था। उनका क्षात्रधर्म तो किसी प्रकार के अन्याय के प्रति क्षमाशील हो नहीं सकता था। जब उन हरिजनों को उनका प्राप्य दिला सकीं तभी वे स्वयं सभा में सम्मिलित हुई।

उसके स्नेह ने घर को सदा सुरक्षित रखा। सुभद्रा जब महादेवी के घर आती थी, तो उनकी नौकरानी भक्तिन तक रौब झाड़ती थी एवं उनके सामने महादेवी भक्तिन को नहीं डाँटती थी। वे सुभद्रा की स्नेह के बारे में लिखती हैं।

बंगले में आकर देखती कि सुभद्राजी रसोई या बरामदे में भानमती का पिटारा खोल बैठी है और उसमें से अद्‌भुत वस्तुएँ निकल रही हैं। छोटी-छोटी पत्थर या शीशे की प्यालियाँ, मिर्च का अचार, बासी पूरी, पेड़े, रंगीन चकला-बेगन, चुटीली, नीली-सुनहरी चूड़ियाँ आदि-आदि सब कुछ मेरे लिए आया है, इस पर कौन विश्वास करेगा। पर वह आत्मीय उपहार मेरे निमित्त ही आता है।

ऐसे भी अवसर आ जाते थे, जब वे किसी कवि-सम्मेलन में आते-आते प्रयाग उतर नहीं पाती थीं। और मुझे स्टेशन जाकर ही उनसे मिलना पड़ता था। ऐसी कुछ क्षणों की भेंट में भी एक दृश्य की अनेक आवृत्तियाँ होती ही रहती थीं। वे अपने थैले से दो चमकीली चूड़ियाँ निकालकर हँसती हुई पूछतीं, "पसन्द हैं ? मैंने दो तुम्हारे लिए खरीदी थीं। तुम पहनने में तोड़ डालोगी। लाओ अपना हाथ, मैं पहना देती हूँ।" पहन लेने पर वे बच्चों के समान प्रसन्न हो उठतीं।

जब दोनों मिलती थी तो सदैव हँसती रहती थी। उन्होंने निश्चय किया कि सभा में नहीं हँसेंगी पर सुभद्रा जी गांभीर्य को तोड़ देती थी।

अनेक कवि-सम्मेलनों में हमने साथ भाग लिया था, पर जिस दिन मैंने अपने न जाने का निश्चय और उसका औचित्य उन्हें बता दिया उस दिन से अन्त तक कभी उन्होंने मेरे निश्चय के विरुद्ध कोई आग्रह नहीं किया।

आर्थिक स्थितियाँ उन्हें ऐसे निमंत्रण स्वीकार करने के लिए विवश कर देती थीं, परन्तु मेरा प्रश्न उठते ही वह कह देती थीं, मैं तो विवशता से जाती हूँ, पर महादेवी नहीं जाएगी, नहीं जाएगी।

साहित्य-जगत में आज जिस सीमा तक व्यक्तिगत स्पर्द्धा, ईर्ष्या-द्वेष है, उस सीमा तक तब नहीं था, यह सत्य है। पर एक-दूसरे के साहित्य-चरित्र स्वभाव सम्बन्धी निन्दा पुराण तो सब युगों में नानी की कथा के समान लोकप्रियता पा लेता है। अपने किसी भी परिचित-अपरिचित साहित्य-साथी की त्रुटियों के प्रति सहिष्णु रहना और उनके गुणों के मूल्यांकन में उदारता से काम लेना सुभद्रा जी की निजी विशेषता थी। अपने को बड़ा बनाने के लिए दूसरों को छोटा प्रमाणित करने की दुर्बलता उनमें असम्भव थी।

महादेवीजी अन्त में लिखती है—एक बार सुभद्रा से बात करते-करते मृत्यु की चर्चा चल पड़ी थी। महादेवी कहती है मैंने कहा 'मुझे तो उस लहर की-सी मृत्यु चाहिए जो तट पर दूर तक आकर चुपचाप समुद्र में लौट कर समुद्र बन जाती है।' सुभद्रा बोलीं, 'मेरे मन में तो मरने के बाद भी धरती छोड़ने की कल्पना नहीं है। मैं चाहती हूँ, मेरी एक समाधि हो, जिसके चारों ओर नित्य मेला लगता रहे, बच्चे खेलते रहें, स्त्रियाँ गाती रहें और कोलाहल होता रहे। अब बताओ तुम्हारी नामधाम रहित लहर से यह आनन्द अच्छा है या नहीं।' ❑

प्रश्न 3. सुभद्राकुमारी जी का चरित्र-चित्रण कीजिए।

उत्तर-

सुभद्राकुमारी का चरित्र-चित्रण

'सुभद्रा' शीर्षक संस्मरण महादेवी वर्मा ने वीर-रस, श्रृंगार-रस एवं वात्सल्य-रस की प्रसिद्ध कवयित्री तथा स्वतंत्रता आन्दोलन में सक्रिय सहयोग देने वाली सुभद्राकुमारी चौहान को आधार बनाकर लिखा है। इस संस्मरण के अनुसार सुभद्राजी के चरित्र में निम्नलिखित विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं-

1. लक्ष्य पथ पर अडिग रहना—अपने लक्ष्य के मार्ग पर अडिग रहना और हँसते-हँसते सब कुछ सहना सुभद्राजी का स्वाभाविक गुण है। बचपन में उन्होंने एक दिन कृष्ण तथा गोपियों की कथा सुनी और निश्चय किया कि वे भी गोपी बनकर ग्वालों के साथ कृष्ण को खोजेंगी। दूसरे दिन वे लाठी लेकर गायों के झुंड के साथ कीकर और बबूल से भरे जंगल में पहुँच गयीं। संध्या के समय ग्वाले और गायें तो घर लौट आये, पर सुभद्राजी कृष्ण को ही खोजती रह गयीं। उनके पैरों में काँटे चुभ गये, कँटीली झाड़ियों में उलझकर कपड़े फट

गये, प्यास से गला सूख गया और पसीने पर धूल की पर्त जम गई। इतने कष्ट सहकर भी धुन की पक्की बालिका सुभद्रा घर लौटने को तैयार नहीं हुई, उसी रात घर वालों ने उन्हें खोजना आरम्भ किया और ग्वालों से पूछते-पूछते उन्हें अँधेरे करील वन में पाया।

2. कठिन परीक्षा से समझौता न करने वाली—सुभद्राजी के पति लक्ष्मण सिंह वर्मा विवाह से पहले ही स्वतंत्रता-आन्दोलन में कूद चुके थे। विवाह के बाद सुभद्राजी ने भी उनका साथ दिया। घर और जेल के बीच उनकी गृहस्थी चलती रही। अपने पति से उन्होंने कभी कोई माँग नहीं की। वे छोटे बच्चों को जेल के भीतर और बड़ों को बाहर रखती थीं। जेल के जीवन में सुभद्राजी के सामने बहुत-सी कठिनाइयाँ परीक्षा बनकर आयीं, परन्तु उन्होंने किसी से समझौता नहीं किया। जहाँ सम्पन्न सत्याग्रही माताओं के बच्चे बाहर से आया मेवा-मिष्ठान खाते थे, वहाँ एक दिन भूख से रोती बालिका को बहलाने के लिए सुभद्राजी ने अरहर के दाने तवे पर भूनकर खिलाये।

3. हीनता की ग्रंथि से रहित—सुभद्राजी ने कभी हीनता की भावना मन में नहीं आने दी। घर से बाहर बैठकर वे कोमलता और ओज-भरे छंद लिखने वाले हाथों से घर में गोबर के कंडे थापतीं, बर्तन माँजतीं और आँगन लीपती थीं। अपने छोटे से अधबने घर को सुभद्राजी ने विशाल उपवन समझकर पेड़ों-लताओं, साग-सब्जियों और गाय-बछड़ों से सजाया।

4. विद्रोहिणी—राजनीतिक जीवन के समान ही पारिवारिक जीवन में भी सुभद्राजी विद्रोहिणी रहीं। उस समय ऐसे अनेक सामाजिक बंधन थे जो अजगर की कुंडली के समान स्त्री के व्यक्तित्व को चूर-चूर कर देते थे। उन्हें सुभद्रा जी ने तोड़ फेंका। पत्नी पति की अर्धांगिनी एवं अनुगामिनी होती है, इसे न मानकर सुभद्राजी ने अपने पति लक्ष्मणसिंह जी से मित्र का कर्तव्य निभाया। पुत्री के विवाह के समय सुभद्राजी को अपने परिवार से विशेष संघर्ष करना पड़ा। उस समय क्या, आज भी सब गृहस्थ मूक-भाव से कन्यादान की प्रथा का पालन करते हैं। इस कन्यादान के विरुद्ध सुभद्राजी ने घोषणा की, "मैं कन्यादान नहीं करूँगी, क्या मनुष्य मनुष्य को दान कर सकता है? क्या वह विवाह के उपरान्त मेरी बेटी नहीं रहेगी?"

5. अन्याय के प्रति क्षमाशील नहीं—सुभद्राजी ने अन्याय को न कभी सहन किया और न अन्यायी को क्षमा किया। जिस स्वतंत्रता को पाने के लिए सुभद्राजी ने अपना वसंती यौवन अंगारों पर रख दिया था, उसकी प्राप्ति के उपरान्त जब उन्हें सभी ओर अभाव और पीड़ा दिखाई दी, तब उन्होंने अपने संघर्षशील साथियों से भी विद्रोह किया। बापू के अस्थि-विसर्जन के समय सुभद्राजी की अन्याय के विरुद्ध उग्रता अन्तिम बार देखी गयी। सुभद्राजी कई सौ हरिजन महिलाओं के जुलूस के साथ सात मील पैदल चलकर नर्मदा नदी के किनारे पहुँचीं। अस्थि-प्रवाह के बाद हुई सभा में जब कारों द्वारा आने वाली सम्पन्न परिवार की महिलाओं को ही स्थान दिया गया, पैदल आने वाली हरिजन महिलाओं को नहीं, तो सुभद्राजी अत्यन्त उग्र हो उठीं और जब तक हरिजन महिलाओं को सभा में स्थान नहीं मिला, तब तक सुभद्राजी उस सभा में सम्मिलित नहीं हुईं।

इस प्रकार सुभद्रा जी के चरित्र में विभिन्न विशिष्ट विद्यमान थीं। ❑

महत्वपूर्ण व्याख्याएँ

1. संकेत- हमारे शैशवकालीन अतीत और प्रत्यक्ष वर्तमान के बीच में समय-प्रवाह का पाट ज्यों-ज्यों चौड़ा होता जाता है त्यों-त्यों हमारी स्मृति में अनजाने ही एक परिवर्तन लक्षित होने लगता है। शैशव की चित्रशाला के जिन चित्रों से हमारा रागात्मक

सम्बन्ध गहरा होता है, उनकी रेखाएँ और रंग इतने स्पष्ट और चटकीले होते चलते हैं कि हम वार्धक्य की धुँधली आँखों से भी उन्हें प्रत्यक्ष देखते रह सकते हैं। पर जिनसे ऐसा सम्बन्ध नहीं होता वे फीके होते-होते इस प्रकार स्मृति से धुल जाते हैं कि दूसरों के स्मरण दिलाने पर भी उनका स्मरण कठिन हो जाता है।

सन्दर्भ—प्रस्तुत गद्यावतरण सुश्री महादेवी वर्मा द्वारा रचित संस्मरण-संग्रह 'पथ के साथी' के 'सुभद्रा' नामक संस्मरणात्मक रेखाचित्र से अवतरित है।

प्रसंग—'सुभद्रा' शीर्षक संस्मरणात्मक रेखाचित्र के इस प्रारम्भिक गद्यावतरण में महादेवीजी स्पष्ट करती हैं कि उनके शैशव काल की साथिन सुभद्रा उनके जीवन में अमिट संस्मरण किस प्रकार बन गई।

व्याख्या—महादेवीजी कहती हैं कि वर्तमान जबकि प्रत्यक्ष रूप में हमारे सामने होता है, शैशव अतीत की वस्तु बन चुका होता है। शैशव के अतीत एवं वर्तमान के बीच में समय का प्रवाह जितना ही अधिक होता जाता है, उतना ही स्मृति में अनायास परिवर्तन दिखाई देने लगता है अर्थात् शैशवावस्था तथा वर्तमान समय के बीच की दूरियाँ जैसे-जैसे अधिक होती जाती हैं, वैसे-वैसे मस्तिष्क के अन्दर अचानक परिवर्तन होने लगता है। शैशव-काल में मानव का जिन व्यक्तियों अथवा वस्तुओं से जितना अधिक गहरा रागात्मक सम्बन्ध होता है, शैशव काल दूर की वस्तु हो जाने पर भी उससे रागात्मक सम्बन्ध उतना ही अधिक प्रगाढ़ हो जाता है। कहने का आशय यह है कि शैशव में जिन लोगों से अधिक गहरा रागात्मक सम्बन्ध रहा है, उनका प्रभाव और चित्र हृदय पर इतनी अधिक गहराई से अंकित हो जाता है कि लम्बा समय व्यतीत हो जाने के वाद भी हम उनको धुँधली आँखों से प्रत्यक्ष देख सकते हैं, परन्तु शैशव में जिनसे गहरा रागात्मक सम्वन्ध नहीं होता, उनकी स्मृति का चित्र समय के आगे बढ़ने के साथ-साथ धीरे-धीरे इस प्रकार विस्तृत हो जाता है कि स्मृति दिलाने पर भी उनका स्मरण नहीं आता।

2. संकेत- नारी के हृदय में जो गंभीर ममता-सजल वीर-भाव उत्पन्न होता है वह पुरुष के उग्र शौर्य से अधिक उदात्त और दिव्य रहता है। पुरुष अपने व्यक्तिगत या समूहगत राग-द्वेष के लिए भी वीर धर्म अपना सकता है और अहंकार की तृप्ति-मात्र के लिए भी। पर नारी अपने सृजन की बाधायें दूर करने के लिए या अपनी कल्याणी सृष्टि की रक्षा के लिए ही रुद्र बनती है। अतः उसकी वीरता के समकक्ष रखने योग्य प्रेरणाएँ संसार कोश में कम हैं। मातृशक्ति का दिव्य रक्षक उद्धारक रूप होने के कारण ही भीमाकृति चंडी, वत्सला अम्बा भी है, जो हिंसात्मक पाश्विक शक्तियों को चरणों के नीचे दवाकर अपनी सृष्टि के मंगल की साधना करती है।

संदर्भ—पूर्ववत्।

प्रसंग—इस गद्यांश में लेखिका ने नारी हृदय के ममत्व से अनुप्राणित वीर-भाव का सूक्ष्म तथा प्रभावशाली विवेचन किया है।

व्याख्या—महादेवी जी कहती हैं कि नारी के हृदय में स्थित वीर-भाव उसके ममत्व भाव से सजल रहता है, जिससे उसमें गंभीरता आ जाती है, जिसके कारण वह पुरुष के उग्र शौर्य से अधिक उदात्त तथा दिव्य हो जाता है, क्योंकि पुरुष के शौर्य में ममत्व नहीं रहता। स्त्री का वीरभाव ममत्व से परिपूर्ण होने के कारण अधिक उदात्त, अधिक दिव्य तथा अधिक गंभीर वन जाता है। पुरुष का वीर-धर्म तो व्यक्तिगत या समूहगत रागद्वेष के लिए भी हो सकता है और वह अपने अहंकार को संतुष्ट करने के लिए भी वीर-धर्म को अपना सकता है, परन्तु नारी ऐसा नहीं कर सकती। उसका रौद्र रूप सृजन की बाधाओं को दूर करने के लिए तथा इस

कल्याणकारी सृष्टि की रक्षा के लिए ही प्रकट होता है। वह तभी रौद्र रूप धारण करती है, जब उसे ऐसा प्रतीत होने लगता है कि सृष्टि की रक्षा करने के लिए ऐसा करना आवश्यक है। महादेवी जी कहती हैं संसार के कोश में कम ही प्रेरणाएँ ऐसी हैं, जिन्हें नारी के वीर-भाव के समकक्ष रखा जा सकता है। वह मातृशक्ति का दिव्य-रक्षक तथा उद्धारक रूप है। इसी कारण वह भीम जैसी विशाल आकृति वाली चंडी बनती है, परन्तु इसके साथ ही वह वत्सला अम्बा भी है, जो हिंसक तथा पाशविक शक्तियों को अपने पैरों तले कुचल डालती है तथा सृष्टि का मंगल करती है। इस प्रकार नारी का वीर रूप संसार के कल्याण के लिए ही होता है। ❑

यात्रा वृत्तान्त : सौन्दर्य की नदी नर्मदा (अमृतलाल वेगड़)

(अंश-ओंकारेश्वर से खलघाट)

प्रश्न 4. यात्रा-साहित्य के बारे में आप क्या जानते है ? विस्तार से लिखिए।

अथवा

यात्रा-वृत्तान्त से आप क्या समझते हैं ?

अथवा

यात्रा-वृत्तान्त के स्वरूप एवं विकास पर प्रकाश डालिये।

अथवा

हिन्दी गद्य के विभिन्न रूपों में यात्रा-साहित्य के विकास का वर्णन कीजिये।

उत्तर-

यात्रा-वृत्तान्त (यात्रा-साहित्य)

यात्रा-वृत्तान्त गद्य साहित्य की एक रोचक और मनोरंजक विधा और स्वरूप है। लेखक इसके अन्तर्गत स्वयं की हुई किसी विशेष स्थल या भाग की यात्रा का अतीव सरस और भावपूर्ण रूप में चित्रण करता है। इसे पढ़कर पाठक भले उस स्थान की यात्रा न कर सके, लेकिन मानसिक रूप से तो उसकी यात्रा कर आनन्दमग्न हो उठता है। इससे उसे बिना प्रयास उन प्राकृतिक स्थलों-दृश्यों, वहाँ के निवासियों के आचार-विचार, रहन-सहन, खान-पान आदि के विषय में बखूबी ज्ञान प्राप्त हो जाता है। यात्रा-वृत्तान्त के विषय में यह निर्विवाद रूप से स्पष्ट है कि यह विधा अनौपचारिक संस्मरणात्मक, मनोरंजक और आत्म कलात्मक होती है। यात्रा वृत्तान्त में आत्मकथा, संस्मरण और रिपोर्ताज तीनों ही तत्व एक साथ पाये जाते हैं।

भारत में यातायात की सुविधाओं के कारण यहाँ यात्राओं की विविधता और प्रचुरता रही है। उनके वर्णन भी हुए हैं। यात्रा साहित्य के अन्तर्गत इन सभी वर्णों को स्वीकार किया जा सकता है, लेकिन यहाँ यह ध्यान देना आवश्यक है कि साहित्यिक श्रेणी का यात्रा-वर्णन सामान्य श्रेणी के यात्रा वर्णन से सदा भिन्न होता है। कुछ तत्व सामान्य विवरण से भिन्न होते हैं। उन्हें स्वतन्त्र अस्तित्व प्रदान करना ही साहित्यकता होती है।

हिन्दी साहित्य में यात्रा-वृत्तान्त के लेखन का विकास भारतेन्दु युग से पूर्व हो चुका था, लेकिन उसमें साहित्यिकता और यायावरी का अभाव रहा है और उसमें धार्मिकता और भौगोलिकता की प्रचुरता रही, यही वजह है कि इस प्रकार के यात्रा-वृत्तान्त लेखन को यात्रा-साहित्य के अन्तर्गत रखना सर्वथा अनुचित और गलत होगा। विभिन्न युगों में यात्रा वृत्त के विकास का विवेचन इस प्रकार हैं—

(i) भारतेन्दु युग (1867 से 1900)—यात्रावृत्त को भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने अपनी पत्रिका कवियन सुधा में महत्वपूर्ण स्थान दिया। 'सरयूपार की यात्रा', लखनऊ की यात्रा,

विहार की यात्रा, वैधनाथ की यात्रा जैसे उनके लेखों में प्रकृति के सौन्दर्य के चित्रण के तिरिक्त लोकजीवन पर भी प्रकाश डाला गया है। हिन्दी प्रदीप में बालकृष्ण भट्ट ने गया यामा और प्रतापनारायण मिश्र ने विलायत यात्रा नामक रचनाएँ लिखीं। पुस्तकार रूप में श्रीमती रदेवी रचित लन्दन यात्रा, भगवानदास रचित लन्दन का यात्री, दामादोर शास्त्री रचित मेरी व दिग्यात्रा और मेरी दक्षिण दिग्यात्रा भी उस काल के महत्वपूर्ण यात्रावृत्त है।

(ii) द्विवेदी युग (1900 से 1920)—यह काल यात्रावृत्त की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान रखता है। 1912 में 'मर्यादा' में प्रकाशित स्वामी [illegible] की 'मारीशस यात्रा' 1913 में 'मर्यादा' ही में प्रकाशित श्रीधर पाठक की 'देहरादून-शिमला यात्रा' 1914 की गृहलक्ष्मी में प्रकाशित उमा नेहरू की युद्ध क्षेत्र की सैर और इन्दु के सितम्बर 1915 के अंक में प्रकाशित लोचन प्रसाद पाण्डेय की 'हमारी यात्रा' जैसी रचनाएँ इस काल के यात्रा साहित्य के उदाहरण हैं। गोपालराम गहमरी ने लंका यात्रा का विवरण लिखा। ठाकुर कदाधर सिंह की यात्राओं में रोचक विवरण चीन में तेरह मास तथा हमारी एडवर्ड तिलक यात्रा शीर्षक से प्रकाशित हुए। स्वामी सत्यदेव परिव्राजक इस काल के सबसे महत्वपूर्ण यात्रावृत्त लेखक हैं। 'अमेरिका दिग्दर्शन', 'मेरी कैलाश यात्रा', उनकी प्रसिद्ध कृतियाँ हैं। उन्होंने अपने देश और विदेश के दर्शनीय स्थलों और सामाजिक जीवन का वर्णन अत्यन्त रोचक शैली में किया है। उनकी रचनाओं में से प्रल्फुटित होती देश प्रेम की भावना पाठक का ध्यान आकृष्ट करती है।

(iii) शुक्लयुग (1920 से 1947)—इस युग में यात्रावृत्त लेखन का पर्याप्त विकास हुआ। रामनारायण मिश्र, गणेश नारायण सोमानी, सत्यदेव परिव्राजक, कन्हैयालाल मिश्र, शिवप्रसाद गुप्त, सेठ गोविन्ददास आदि लेखकों ने यात्रा साहित्य की रचना की। रामनारायण मिश्र और गणेशनारायण सोमानी ने अपनी यूरोप यात्राओं के अनुभव लिखे। सत्यदेव परिव्राजक ने मेरी जर्मन यात्रा, यूरोप की सुखद स्मृतियाँ, अमेरिका प्रवास की मेरी अद्भुत कहानी शीर्षक से महत्वपूर्ण यात्रावृत्त लिखे। उन्होंने अमेरिका के प्राकृतिक दृश्यों के अतिरिक्त वहाँ के सामाजिक जीवन का रोचक चित्रण किया है। हिन्दी भाषा के यात्रा साहित्य में राहुल सांकृत्यायन का स्थान शीर्षस्थ लेखकों में है। राहुलजी घुमक्कड़ थे और मानते थे कि घुमक्कड़ी से जीवन की जड़ता और संकीर्णता दूर होती है। उन्होंने लिखा है—सच्चा घुमक्कड़ धर्म, जाति, देश, काल सभी सीमाओं से मुक्त होता है, वह सच्चे अर्थों में मानवता के प्रेम का उपासक होता है। उनकी यात्राओं के पीछे उनकी जिज्ञासा और ज्ञान पिपासा की महत्वपूर्ण भूमिका रही। तिब्बत में सवा बरस, मेरी यूरोप यात्रा, मेरी तिब्बत यात्रा, मेरी लद्दाख यात्रा, रूस में पच्चीस मास, हिमालय परिचय, किन्नर देश आदि उनकी रचनाएँ हैं। केदाररूप राय ने इसी समय हमारी विलायत यात्रा में यूरोप के दर्शनीय स्थलों का चित्रण किया है।

(iv) स्वातंत्र्योत्तर युग या शुक्लोत्तर युग (1947 के बाद)—भारत में स्वतन्त्र होते ही हिन्दी साहित्य का विकास तीव्र गति से हुआ। इस युग में हिन्दी भाषा के पत्रों के देश-विदेश के यात्रावृत्तों के प्रकाशन को काफी महत्व दिया जाने लगा है। 1955 में प्रकाशित कर्नल सज्जन सिंह की रचना 'लद्दाख यात्रा की डायरी' महत्वपूर्ण कृति है। रामवृक्ष बेनीपुरी ने पैरों में पंख बाँधकर तथा उड़ते चलो, उड़ते चलो में अपने यूरोप प्रवास के अनुभव लिखे हैं। यशपाल की कृति लोहे की दिवार के दोनों ओर में जर्मनी के समाजवादी तथा पूँजीवादी हिस्सों का तुलनात्मक विश्लेषण है। रामधारी सिंह दिनकर ये यात्रावृत्त देश-विदेश तथा मेरी यात्राएँ में संग्रहीत है। वह दुनिया तथा कलकत्ता से पीकिंग भगवतशरण उपाध्याय के उल्लेखनीय संग्रह हैं, जिनमें उनकी विदेश यात्राओं के संस्मरण हैं। अज्ञेय इस विधा के महत्वपूर्ण लेखक

हैं। 'अरे यायावर रहेगा याद' और 'एक बूँद सहसा उछली' उनके संकलन हैं। धर्मवीर भारती, श्रीकान्त वर्मा और कमलेश्वर ने भी विदेश यात्रा के संस्मरण लिखे हैं, जिनमें एक आधुनिक भारतीय की दृष्टि उभरकर सामने आती है। मोहन राकेश का यात्रावृत्त आखिरी चट्टान एक महत्वपूर्ण रचना है। यशपाल जैन से देश-विदेश के यात्रावृत्त भी उल्लेखनीय हैं। लोहे की दीवार के दोनों ओर तथा राह बीती श्री यशपाल की महत्वपूर्ण यात्रा विषयक रचनाएँ हैं। ❑

प्रश्न 5. यात्रा-वृत्तान्त 'सौन्दर्य की नदी नर्मदा' का परिचय दीजिए।

उत्तर- प्रकृति का सौन्दर्य हमें भी मन से सुन्दर होने की प्रेरणा देता है। प्राकृतिक सौन्दर्य में एक पावन भाव होता है। ऐसा मनुष्य द्वारा निर्मित सौन्दर्य में नहीं हो पाता है। नर्मदा भारत के मध्य भाग से पूरब से पश्चिम की ओर बहने वाली एक प्रमुख बड़ी नदी है। यह गंगा के समान ही पूजनीय है। नर्मदा नदी की उत्पत्ति महाकाल पर्वत के अमरकण्टक शिखर से हुई है। इसके उद्भव से लेकर संगम तक लगभग दस करोड़ तीर्थ स्थान हैं।

नर्मदा का उद्गम विंध्याचल की मैकाल पहाड़ी-श्रृंखला में अमरकंटक नामक स्थान में हुआ है। इस कारण इसे मैकाल कन्या भी कहते हैं। स्कंद पुराण में इस नदी का वर्णन रेवाखंड के अन्तर्गत किया गया। कालिदास के 'मेघदूतम्' में नर्मदा को रेवा सम्बोधन किया गया है। जिसका अर्थ है- पहाड़ी चट्टानों से कूदने वाली।

नर्मदा की तेज धारा वास्तव में पहाड़ी चट्टानों पर और भेड़ाघाट में संगमरमर की चट्टानों के ऊपर से उछलती हुई बहती है। अमरकंटक में सुन्दर सरोवर में स्थित शिवलिंग से निकलने वाली इस पावन धारा को रूद्रकन्या भी कहते हैं, जो आगे चलकर विशाल नर्मदा नदी का रूप धारण कर लेती है। पवित्र नदी नर्मदा के तट पर अनेक तीर्थ हैं, जहाँ श्रद्धालुओं का ताँता लगा रहता है। अमरकंटक की पहाड़ियों से निकलकर छत्तीसगढ़, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र और गुजरात से होकर करीब 1310 कि.मी. का सफर तय कर नर्मदा भरौंच के आगे खंभात की खाड़ी में गिरकर विलीन हो जाती है। परम्परा के अनुसार नर्मदा की परिक्रमा का प्रावधान है, जिससे श्रद्धालुओं को पुण्य की प्राप्ति होती है। पुराणों में बताया गया है कि नर्मदा नदी के दर्शन-मात्र से समस्त पापों का नाश होता है।

नर्मदा नदी के तट पर पर जबलपुर शहर बसा हुआ है। इस नदी के मुहाने पर डेल्टा नहीं है। जबलपुर के निकट नर्मदा का भेड़ाघाट जलप्रपात काफी प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि यहाँ किसी युग में भृगु ऋषि तपस्या करते थे। चट्टानों के निर्मल और सुन्दर स्वरूप को देखकर आज भी ऐसा प्रतीत होता है मानो असंख्य ऋषि-मुनि नर्मदा के तट पर तपस्या में लीन हैं। नर्मदा जल में खड़ी चट्टानें भी उनकी संगति में पुण्यता को प्राप्त होती हैं। इन संगमरमर की चट्टानों पर जब चाँद आता है, तो चाँद सी चमक उठती हैं और सूरज के सान्निध्य में तप उठती हैं। सतपुड़ा की संगमरमर की चट्टानों पर गिरकर नर्मदा प्राकृतिक सुन्दरता का अनूठा दृश्य प्रस्तुत करती है। इस स्थान पर उसका रूप तथा वेग उसके यौवन का प्रतीक माना जाता है। ओंकारेश्वर एवं महेश्वर नामक नगर इसके तट पर बसे हैं। यहाँ उत्तरी किनारे पर अनेक मंदिर, महल एवं स्नान घाट बने हुए हैं। नर्मदा की लहरों की कल-कल ध्वनि तीर्थ यात्रियों का उत्साह बढ़ाती है। इसके बाद नर्मदा भरूच पहुँचकर अन्त में खंभात की खाड़ी में समा जाती है।

नर्मदा का केवल प्राकृतिक सौन्दर्य ही नहीं, बल्कि आध्यात्मिक सौन्दर्य भी है, लोग इसके जल को पवित्र मानकर विभिन्न धार्मिक कृत्यों में उपयोग करते हैं। नर्मदा मध्यप्रदेश

जीवन रेखा है। मध्यप्रदेश के निवासी इसे गंगा से भी अधिक पवित्र मानते हैं। उनकी
ता है कि साल में एक बार गंगा स्वयं काली गाय का रूप लेकर इसमें स्नान करने आती
र श्वेत होकर चली जाती है। धार्मिक मान्यतानुसार विश्व में प्रत्येक शिव मंदिर में इसी
य नदी के नर्मदेश्वर शिवलिंग विराजमान हैं, जिनकी प्राण प्रतिष्ठा की आवश्यकता नहीं
ती। गंगा में स्नान से पुण्य की प्राप्ति होती है, परन्तु नर्मदा के दर्शन से ही व्यक्ति के सर्व
नष्ट हो जाते हैं, ऐसी मान्यता है। ❑

'ओंकारेश्वर से खलघाट' अंश की समीक्षा कीजिए।

न 6. 'ओंकारेश्वर से खलघाट' की समीक्षा

र-

'सौन्दर्य की नदी नर्मदा' श्री अमृतलाल बेगड़ द्वारा रचित एक प्रसिद्ध यात्रा वृत्तान्त है।
का प्रत्येक अंश अपना एक अलग महत्व रखता है। 'ओंकारेश्वर से खलघाट' अंश में
ुक ने नर्मदा के सबसे बड़े तीर्थ ओंकारेश्वर से साटक संगम पर बने खलघाट पुल तक
जटिल यात्रा को रोचक शब्दों में वर्णन किया है। इस अंश की भाषा सरल, सरस और
राप्रवाह है। इसमें शब्दों का ताना-बाना कुछ इस प्रकार बुना गया है कि पढ़ना आरम्भ करने
जिज्ञासा बढ़ती जाती है कि अब आगे कहाँ पहुँचेंगे, कहाँ रुकेंगे, कहाँ भोजन करेंगे और
का अगला पड़ाव क्या होगा। ओंकारेश्वर से खलघाट तक नर्मदा के रूप की विविधता
दर्शन कवि ने शब्दचित्र के माध्यम से कराए हैं।

नर्मदा के सौन्दर्य के साथ ही लेखक आसपास की प्रकृति, परिवेश और वेशभूषा से
परिचित कराते चलते हैं। इस पदयात्रा में लेखक को कुछ अन्य लोग भी मिलते हैं जिनके
र्मदा प्रेम के समक्ष लेखक स्वयं को तुच्छ समझने लगते हैं और विचार करने लगते हैं कि
तना जीवट, इतनी हिम्मत, इतना लगन ये लोग कहाँ से लाते हैं। नावड़ाटोड़ी में नर्मदा के
ट पर महेश्वर नगर में लेखक को रिटायर्ड सरकारी अधिकारी मिले जो अपनी सारी पेंशन
ुत्तों पर खर्च करते थे और एक चाय की दुकान पर पड़ी बेंच को अपना घर मानते थे। वे
किसी देवी-देवता, साधु-संत को नहीं मानते थे, परन्तु नर्मदा के प्रति अपार श्रद्धा रखते थे।
ये नर्मदा को हर पल देखना चाहते थे, इसी कारण बरसात में बाढ़ का पानी जब तक इस बेंच
को छूता नहीं था, तब तक यहीं रहते थे। इस प्रकार के रोचक प्रसंग यात्रा वृत्तांत में जोड़कर
उन्होंने यात्रा वृत्तान्त को काफी प्रभावशाली बना दिया है।

नर्मदा के सौन्दर्य का उल्लेख लेखक ने इस अंश के कई स्थानों पर किया है। यथा-
ओंकारेश्वर पहाड़ी नदी का पहाड़ी तीर्थस्थान। नर्मदा यहाँ गर्भस्थ शिशु सी जान पड़ती है।
संकरी नर्मदा के दोनों ओर खड़ी चट्टानी कगारें हैं। इस तट पर मांधाता, उस तट पर
ओंकारेश्वर, दोनों मिलकर ओंकार-मांधाता और बीच में अलग गति से बहती शांत, नीरव
नर्मदा। नदी बहती भी रूकी जान पड़ती है। महेश्वर की सहस्त्रधारा के सौन्दर्य का वर्णन
लेखक ने इस प्रकार किया है- नर्मदा यहाँ खूब फैल गई है, हजारों धाराओं में बँट गई है।
इन धाराओं में छोटे-छोटे प्रपात फड़फड़ा रहे हैं। चारों ओर धाराओं का जाल सा फैला हुआ
है। इन आड़ी-टेड़ी, आंकी-बांकी जलधाराओं से नर्मदा ने यहाँ मानो झीली-झीनी बीनी रे
चदरिया। पानी की चादर, जलधाराओं के ताने-बाने, चट्टानों का करघा। ऐसी चादर तो बस
नर्मदा ही बुन सकती है और बस धरती ही ओढ़ सकती है। चलते-चलते एक टीले पर गया
तो ऊँचे झरोखे से सहस्त्रधारा के नन्हें-मुन्ने प्रपात एक साथ दिखाई दे रहे हैं। नन्हें-मुन्ने क्या,
एकदम दुधमुँहे। इनके मुँह से दूध अभी छूटा ही कहाँ।

अमृतलाल बेगड़ की भाषा के सन्दर्भ में मोहनलाल बाजपेयी ने 'नयन न तिरपत भेल' शीर्षक के अन्तर्गत लिखा है- "शिल्प की साधना करते-करते अमृतलाल ने भाषा को किस प्रकार साध लिया, यह एक रहस्य है। अवश्य ही वे कोई भारी-भरकम भ्रमण वृत्तांत लिखने नहीं बैठे, उनकी गायकी ध्रुपद की नहीं, लोकगीति की है जिसमें मनुज के सुख-दुख, उतार-चढ़ाव, धूप-छांह कब आते और चले जाते हैं आहट ही नहीं मिलती। यह सहज भाषा की सिद्धि है जिसे सजने-संवरने का न आग्रह होता न प्रयोजन। वे कहते हैं कि कोलाहल नहीं रहता, कलरव तभी सुनाई देता है। उनका विश्वास है कि हर भाषा में कुछ शब्द अश्वमेध यज्ञ के घोड़े की तरह होते हैं। सीमाओं को वे नहीं मानते, उन्हें रोकना आसान नहीं। रूपक, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति आदि अमृतलाल के निकट बिन बुलाए चले आते हैं।"

विख्यात साहित्यकार रमेशचन्द्र शाह ने 'नर्मदा की बात' शीर्षक से लिखा है- "वह (सौन्दर्य की नदी नर्मदा) सच्चे अर्थों में एक सांस्कृतिक यात्रा है; एक कलाकार, तपस्वी और भारतीय श्रद्धा-बुद्धि के साथ अद्‌भुत ढंग से समरस व्यक्ति की यात्रा, जिसका हर अध्याय एक अक्षय ताजगी और संवेदनात्मक समृद्धि से परिपूर्ण है। कई-कई बरसों के आर-पार सम्पन्न की गई यह यात्रा एक अत्यन्त रोचक श्रृंखलाबद्ध कथा बन गई है, जिसमें औपन्यासिकता भी है और कवित्व भी। एक ऐसी गाथा जिसका केन्द्रीय चरित्र स्वयं सौन्दर्य की नदी नर्मदा है। सचमुच यह नर्मदा लेखक की तरह हमारी भी स्मृति का अविच्छेद्य अंग बन जाती है: स्मृति, जो केवल व्यक्तिगत नहीं, हम सब भारतवासियों की जातीय स्मृति है। लेखक और उसके सहयात्री तो इस अद्‌भुत उपन्यास के सदाजागृत, सदासजीव पात्र हैं ही, साथ में जनजीवन के जो अविस्मरणीय चलचित्र इस वृत्तांत में यहाँ से वहाँ तक गुथे पड़े हैं, उनमें बीसियों ऐसे 'चरित्र' हैं जो भले थोड़ी देर के लिए आए हों, किन्तु ऐसी जीवंत नाटकीयता में वे प्रस्तुत होते हैं कि ओझल होकर भी नहीं होते-सदा-सदा के लिए हमारी स्मृति में बस जाते हैं।"

अमृतलाल बेगड़ ने अपने यात्रा-वृत्तांत के सन्दर्भ में लिखा है- "मेरी इस यात्रा के सौ साल बाद तो क्या, पच्चीस साल बाद भी कोई इसकी पुनरावृत्ति न कर सकेगा। पच्चीस साल में नर्मदा पर कई बाँध बन जाएँगे और इसकी सैकड़ों मील लम्बा तट जलमग्न हो जाएगा। न वे गाँव रहेंगे, न पगडंडियाँ। पिछले 25000 वर्षों में नर्मदा तट का भूगोल जितना नहीं बदला है, उतना आने वाले 25 वर्षों में बदल जाएगा।"

इस विकराल वास्तविकता को देखते हुए अमृतलाल बेगड़ का यह यात्रा-वृत्तांत अपना एक दूसरा महत्वपूर्ण पहलू उद्‌घाटित करने लगा है: इसका दुर्लभ दस्तावेजी महत्व, जिसे अनदेखा करना अनर्थकारी होगा। भले हम इसे श्रद्धावान लेखक के साथ यह सोचकर अपने मन को सांत्वना दे लें कि "नर्मदा तो बस नर्मदा ही है, जैसा भव्य उसका अतीत है, वैसा ही उज्जवल उसका भविष्य है।"

इस प्रकार स्पष्ट है कि अमृतलाल जी का यात्रा-वृत्तांत 'सौन्दर्य की नदी नर्मदा' हिन्दी साहित्य की दृष्टि से ही नहीं अपितु ऐतिहासिक और भौगोलिक दृष्टि से भी अति-महत्वपूर्ण दस्तावेज है।

महत्वपूर्ण व्याख्याएँ

1. संकेत- नर्मदा तट के छोटे से छोटे तृण और छोटे से छोटे कण न जाने कितने परिव्राजकों, ऋषि-मुनियों और साधु-संतों की पदधूलि से पावन हुए होंगे। यहाँ के वनों में अनगिनत ऋषियों के आश्रम रहे होंगे। वहाँ उन्होंने धर्म पर विचार किया होगा, जीवन मूल्यों की खोज की होगी और संस्कृति का उजाला फैलाया होगा। हमारी

कृति आरण्यक संस्कृति रही। लेकिन अब ? हमने उन पावन वनों को काट डाला है पशु-पक्षियों को खदेड़ दिया है या मार डाला है। धरती के साथ यह कैसा आघात है।

संदर्भ—प्रस्तुत गद्यांश अमृतलाल वेगड़ द्वारा रचित यात्रा- वृत्तांत 'सौन्दर्य की नदी नर्मदा' के अंश 'ओंकारेश्वर से खलघाट' से उद्धृत है।

प्रसंग—इस गद्यांश में नर्मदा के सबसे बड़े तीर्थ ओंकारेश्वर की प्राचीन महिमा और वर्तमान दुर्दशा पर प्रकाश डाला गया है।

व्याख्या—लेखक ओंकारेश्वर के नर्मदा के तट की महिमा का बखान करते हुए कहते हैं कि यहाँ का छोटे से छोटा तिनका और छोटे से छोटा कण भी न जाने कितने परिव्रज्या ग्रहण करके भिक्षा माँगकर जीवन निर्वाह करने वाले संन्यासियों, ऋषि-मुनियों और साधु-संतों के चरणों की धूल से पवित्र हुए होंगे। तात्पर्य यह है कि यहाँ तट पर अनेक साधु-संतों ऋषि-मुनियों आदि का आश्रम रहा है जिससे यहाँ का कण-कण अति पवित्र हो गया है। यहाँ वनों में अनेक ऋषियों के आश्रम रहे हैं। इन आश्रमों में निवास करते हुए ऋषि-मुनियों ने धर्म पर अनेक दृष्टिकोणों से विचार किया है। उन्होंने जीवन मूल्यों की खोज की है और भारतीय संस्कृति का प्रकाश चारों ओर फैलाया है। भारत की संस्कृति वनों की संस्कृति रही है। परन्तु आज सब कुछ बदल रहा है। मानव ने अपने तुच्छ स्वार्थ के लिए पवित्र वनों को काट-काटकर नष्ट कर दिया है। वनों में पेड़-पौधे न रहने से पशु-पक्षियों का निवास भी नष्ट हो गया है। अनेक पशु-पक्षियों को तो मनुष्य ने अपनी शिकार की प्रवृत्ति की तुष्टि के लिए मार डाला है। अनेक पेड़-पौधे तथा पशु-पक्षी तो आज लुप्त होने की कगार पर हैं। इस प्रकार मनुष्य ने धरती को उजाड़कर उसके साथ विश्वासघात किया है।

विशेष—(1) लेखक ने नर्मदा तट की महत्ता बताने के साथ-साथ पर्यावरण के विनाश पर चिंता व्यक्त की है।

(2) भाषा तत्सम शब्दों से युक्त खड़ी बोली है।

2. संकेत- देवी-देवता में मेरा कोई विश्वास नहीं। साधु-संतों पर भी नहीं। बाहर से धर्मात्मा होने का ढोंग रचते लोगों के ऊपर से नीचे तक गंदगी में डूबा हुआ देख चुका हूँ। बस, एक नर्मदा को मानता हूँ। मुझे वह हर घड़ी दिखनी चाहिए। बरसात में बाढ़ का पानी जब तक इस बेंच को छूता नहीं, तब तक नहीं जाता। नर्मदा के बिना मैं नहीं रह सकता।

सन्दर्भ—पूर्ववत्।

प्रसंग—नर्मदा की पदयात्रा करते हुए जब लेखक रानी अहिल्याबाई के नगर महेश्वर पहुँचे तो वहाँ उन्हें एक सरकारी अफसर मिले जिन्हें अब पेंशन मिलती है। वे अपनी सारी पेंशन कुत्तों पर खर्च कर देते थे। मनुष्य के प्रति उनके मन में कटुता और नर्मदा के प्रति असीम प्रेम है। वे लेखक से कहते हैं-

व्याख्या—देवी-देवता के प्रति मुझे कोई विश्वास नहीं है अर्थात् मैं किसी भी देवी-देवता को नहीं मानता हूँ। साधु-संतों में भी मेरी कोई आस्था नहीं है क्योंकि मैं इनका बुरा रूप देख चुका हूँ। ये साधु-संत बाहर से तो धर्मात्मा दिखते हैं अर्थात् गेरुआ वस्त्र, तिलक, माला, कमंडल आदि धारण करते हैं। ये ढोंग करने वाले धर्मात्मा अंदर से कितने गंदे होते हैं, यह मैं देख चुका हूँ। मैं अपने जीवन में केवल नर्मदा को ही मानता हूँ। उसी की पूजा-अर्चना करता हूँ और उसके दिव्य रूप को अपने दिल में बसाये रहता हूँ। वर्षा ऋतु में बाढ़

के समय जब इस चाय वाले की बेंच को बाढ़ का पानी स्पर्श करने लगता है, तब ही मैं यहाँ से जाता हूँ। अन्यथा पूरे वर्ष यह बेंच ही मेरा घर है। यहीं से मैं हर पल नर्मदा के दर्शन करता रहता हूँ। मैं नर्मदा के दर्शन के बिना नहीं रह सकता।

विशेष-(1) सेवानिवृत्त सरकारी अफसर का नर्मदा-प्रेम वास्तव में धन्य है। ❑

(2) भाषा सामान्य बोलचाल की हिन्दी है।

व्यंग्य : भोलाराम का जीव (हरिशंकर परसाई)

प्रश्न 7. हरिशंकर परसाई का संक्षिप्त जीवन-परिचय देते हुए उनकी साहित्यिक रचनाओं का उल्लेख कीजिए।

अथवा

हरिशंकर परसाई के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालिये।

उत्तर- जीवन-परिचय—हरिशंकर परसाई मध्यप्रदेश ही नहीं समस्त भारत के जाने-माने व्यंग्यकार हैं। स्वायंत्रोत्तर भारत में पनपी जीवन स्थितियों को व्यंग्य के माध्यम से व्यक्त करने में परसाईजी का हिन्दी जगत में महत्वपूर्ण स्थान है। श्री परसाईजी का जन्म 22 अगस्त 1924 ई. को मध्यप्रदेश के होशंगाबाद जिले के जमानी नामक गाँव में हुआ था। इन्होंने नागपुर विश्वविद्यालय से हिन्दी में एम. ए. किया। कुछ वर्षों तक इन्होंने अध्यापन का कार्य भी किया, परन्तु सन् 1947 में अध्यापन कार्य छोड़कर जबलपुर में रहकर स्वतन्त्र रूप से लेखन का कार्य करने लगे। परसाईजी ने जबलपुर से 'वसुधा' नामक एक साहित्यिक पत्रिका का कई वर्षों तक प्रकाशन किया, बाद में 'देशबन्धु' दैनिक में सम्पादकीय परामर्शदाता के रूप में कार्य करते रहे। वहीं से प्रकाशित होने वाली 'प्रहरी' पत्रिका में उन्होंने 'उदार' नाम से लिखना प्रारम्भ किया था। बाद में वे हिन्दी की प्राय: सभी प्रमुख पत्रिकाओं से स्तम्भ लेखक के रूप में जुड़े रहे। इनका अगस्त 1995 में निधन हो गया।

रचनाएँ—परसाईजी ने अनेक विधाओं में अपनी रचना की है। उनकी व्यंग्यपूर्ण रचनाएँ अत्यन्त रोचक एवं प्रभावशील है। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं—तट की खोज, सदाचार का ताबीज, भूत के पाँव पीछे, रानी नागफनी की कहानी, हँसते हैं, रोते हैं, जैसे उनके दिन फिरे, वैष्णव की फिसलन, ठिठुरता हुआ गणतंत्र, विकलांग श्रद्धा का दौर, निठल्ले की डायरी, शिकायत मुझे भी है, तिरछी रेखाएँ, पगडंडियों का जमाना और अन्त में बेईमानी की परत इत्यादि। परसाईजी की समस्त रचनाएँ परसाई रचनावली (छह भाग) में संचलित की गयी है।

साहित्यिक सेवा—परसाईजी ने अपनी व्यंग्य रचनाओं में विविध विषय चुने हैं अर्थात् उन्होंने समाज, शासन, राजनीति, धर्म, न्याय व्यवस्था, पुलिस, साहित्य आदि क्षेत्रों में व्याप्त विसंगतियों पर अपनी व्यंग्य रचनाएँ लिखी हैं। परसाईजी अपनी व्यंग्य रचनाओं के विषय सामान्य जीवन से उठाते हैं। मध्यवर्गीय जीवन की साधारण घटनाओं को लेकर वे उसकी तह तक जाते हैं और छोटी-छोटी बातों को महत्व देते हैं। परसाईजी की रचनाएँ हास्य और विनोद से परिपूर्ण है, पर मुख्य रूप से वे आज की विषमताओं, विसंगतियों और अन्ध-परम्पराओं पर तीखी और सार्थक चोट करती है।

परसाईजी का व्यंग्य मुख्य रूप से राजनीति व्यवस्था पर है। वे समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, व्यक्ति की धन लिप्सा और स्वार्थ वृत्ति के लिए राजनीति की व्यवस्था को दोषी ठहराते हैं। उनके निबन्धों में व्यंग्यात्मक ढंग से यही प्रतिपादित किया गया है कि किस प्रकार शोषणवादी प्रवृत्तियाँ इस व्यवस्था का लाभ उठाती है। परसाईजी ने विसंगतियों की चर्चा के साथ-साथ कहीं-कहीं स्वरूप चिन्तन के आधार पर दिशा-निर्देश भी किया है।

भाषा-शैली—विषय की विविधताओं के अनुरूप परसाई की भाषा-शैली की भी अनेक भंगिमायें हैं। उनकी भाषा सीधी, सरल है, परन्तु उसमें अनूठी वक्रता है। वे कहीं पौराणिक कथा सन्दर्भों का उपयोग करते हैं, तो कहीं लोक-कथाओं का, कहीं फेंटेसी का सहारा लेते हैं और संवाद तथा नाट्य शैली का भी उपयोग करते हैं। सूक्तियाँ, उपमाओं, समीक्षाओं चुटीले प्रयोग उनकी कला की विशिष्टता है। ❑

प्रश्न 8. **हरिशंकर परसाई द्वारा लिखित 'भोलाराम का जीव' व्यंग्य का सार अपने शब्दों में लिखिए।** **अथवा**
'भोलाराम का जीव' व्यंग्य का सारांश लिखिए।

भोलाराम का जीव

उत्तर-

मनुष्यों के कर्म के विश्लेषण के आधार पर उसकी आत्मा को स्वर्ग या नर्क में भेजने वाले धर्मराज के समक्ष आज एक विकट संकट उपस्थित हो गया था। सामने बैठे चित्रगुप्त अपने रजिस्टर के पन्ने बार-बार पलट रहे थे। किन्तु भूल पकड़ में नहीं आ रही थी। हुआ यूँ कि भोलाराम नाम के एक अध्यापक का 5 दिन पूर्व शरीर घूटा (देहान्त हुआ) और उसका जीव यमदूत के साथ यमलोक को रवाना भी हुआ किन्तु अभी तक यमलोक में नहीं पहुँचा। परेशान हुए यमराज ने चित्रगुप्त से यमदूत के विषय में पूछा, तब चित्रगुप्त ने बतलाया कि वह भी लापता है। इसी समय द्वार खुले और एक घबराया हुआ यमदूत वहाँ आया। उसे देखते ही चित्रगुप्त का क्रोध फूट पड़ा चिल्लाते हुए उन्होंने पूछा—"भोलाराम का जीव कहाँ है" यमदूत ने विनम्रतापूर्वक उत्तर दिया कि इस बार जैसा धोखा कभी नहीं हुआ। बड़े-बड़े कुशल वकीलों के प्राण भी मुझ से छूट कर न भाग पाए किन्तु भोलाराम के जीव ने तो कमाल ही कर दिया। मृत्यु के उपरान्त जीव को लेकर मैं जैसे ही यमलोक की ओर प्रस्थित हुआ कि नगर के बाहर ही वह जीव मुझे चकमा देकर वहाँ से गायब हो गया, मुझे पता भी नहीं चला।

चित्रगुप्त ने भी यमदूत का बचाव करते हुए धर्मराज से कहा—"महाराज आजकल पृथ्वी पर इस प्रकार का व्यापार बहुत चला है। लोग दोस्तों को फल भेजते हैं और वे रास्ते में रेल्वे वाले ही उड़ा लेते हैं ..... राजनैतिक दलों के नेता विरोधी नेता को उड़ाकर कहीं बन्द कर देते हैं। कहीं भोलाराम के जीव को भी किसी विरोधी ने मरने के बाद भी खराबी करने के लिए नहीं उड़ा दिया।"

चित्रगुप्त अभी धर्मराज को समझा ही रहे थे कि वीणा बजाते नारद वहाँ आ पहुँचे। धर्मराज को किंचित चिंतित देखकर पूछ ही बैठे—"क्या नर्क में निवास-स्थान की समस्या अभी हल नहीं हुई ?" धर्मराज ने बतलाया कि भ्रष्टाचारी ठेकेदार व रिश्वतखोर इंजीनियरों के नर्कागमन के आवास की समस्या हल हो गई उन्होंने नर्क में कई इमारतें बना दी हैं। फिर धीरे से उन्होंने भोलाराम के जीव की समस्या बतला दी। नारद ने पहले तो इन्कम टैक्स वालों पर संदेह व्यक्त किया कि उन्होंने तो नहीं रोक लिया और यह जान कर कि वह तो भुखमरा मास्टर था, तो उसकी खोज के लिए पृथ्वी पर चले आए।

माँ-बेटों के सम्मिलित क्रन्दन से नारद भोलाराम का मकान पहचान गए। घर के द्वार पर जाकर 'नारायण नारायण' की गुहार लगाई। लड़की ने भिखारी को समझाकर आगे जाने के लिए कहा। इस पर नारदजी ने कहा—"मुझे भिक्षा नहीं चाहिए। मुझे भोलाराम के बारे में कुछ पूछताछ करनी है।" तब भोलाराम की पत्नी बाहर आई और उसने भोलाराम की दुखद कहानी सुनाते हुए कहा कि उनकी मृत्यु का कारण गरीबी थी। रिटायर होने के 5 साल बाद भी पेंशन नहीं मिल पाई। इस सदमें से वे मर गए। फिर नारद मुख्य बात पर आते हुए बोले—

"माँ, यह तो बताओ कि यहाँ किसी से क्या विशेष प्रेम था, जिसमें उनका जी लगा हो। कुछ समय तक बात करने के पश्चात् भी कोई रहस्य हाथ न लगा।" अंत में नारद वहाँ से चल दिए। चलते समय स्त्री ने पेंशन-केस में कुछ मदद करने की प्रार्थना की।

भोलाराम के घर से नारद जी सीधे सरकारी दफ्तर पहुँचे। वहाँ पहिले ही कमरे में बैठे बाबू से उन्होंने भोलाराम के पेंशन-केस के विषय में बातचीत की। उत्तर मिला—"भोलाराम ने दरख्वास्तें तो भेजी थीं पर उन पर वजन नहीं रखा था, इसलिए कहीं उड़ गई होगी।"

पहिले बाबू ने नारद को दूसरे बाबू के पास जाने को कहा। नारद उसके पास गए। उसने तीसरे के पास भेजा; तीसरे ने चौथे के पास। चौथे ने पाँचवे के पास। इस प्रकार नारद पच्चीस-तीस बाबू और अफसरों से मिले किन्तु बात आगे न बढ़ सकी। तब एक चपरासी ने उन्हें सीधे बड़े साहब से मिलने के लिए कहा।

नारद बड़े साहब के कमरे में पहुँचे। पहले तो उन्हें कमरे में सीधे घुस आने के लिए डाँट खानी पड़ी और फिर बात दान-दक्षिणा पर आ गई। साधु वीणा पर साहब की नजर ललचाई और उसने नारद से कह दिया कि वह अपनी सुन्दर वीणा का वजन भोलाराम की दरख्वास्त पर रख दें, तो तुरन्त काम हो जायेगा। बात यह थी कि साहब की बच्ची संगीत सीखती थी, सो वीणा उनके लिए उपयोगी थी।

भोलाराम का पेंशन-केस सुलझ जाए, इस हेतु नारद ने अपनी वीणा साहब की टेबल पर रख दी। इस पर साहब ने उन्हें कुर्सी पर बिठलाया और घंटी बजाई। फिर चपरासी को फाइल लाने का आदेश दिया। चपरासी भोलाराम की सौ-डेढ़-सौ दरख्वास्तों से भरी फाइल लेकर आया। साहब ने निश्चित करने के लिए नाम पूछा और नारद ने यह समझकर कि साहब ऊँचा सुनता हैं कुछ जोर से कहा—'भोलाराम'।

सहसा विचित्र घटना घटी। फाइल में से आवाज आई "कौन पुकार रहा है मुझे? पोस्टमैन है क्या? पैंशन का आर्डर आ गया?" साहब डरकर कुर्सी से लुढ़क गए। नारद भी चौंके। किन्तु शीघ्र ही समझ गए और फिर उन्होंने पूछा—"भोलाराम" तुम क्या भोलाराम के जीव हो? और 'हाँ' उत्तर पाकर नारद ने उसे स्वर्ग चलने के लिए कहा। इस पर भोलाराम के जीव ने कहा—"मैं तो पेंशन की दरख्वास्तों में अटका हूँ। यही मेरा मन लगा है। मैं अपनी दरख्वास्तें छोड़कर नहीं जा सकता.....।"

व्यंग्य के विषय में विशेष कथन—प्रस्तुत व्यंग्य हरिशंकर परसाई की श्रेष्ठ रचना है। इसमें लेखक ने समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार और सरकारी कार्यालयों में व्याप्त लाल फीताशाही और रिश्वत का उल्लेख किया है। प्रभावपूर्ण भाषा-शैली से व्यंग्य सजीव हो उठा है। समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार का सटीक एवं यथार्थ चित्रण हुआ है। यह एक प्रभावपूर्ण, सशक्त यथार्थवादी व्यंग्य प्रधान कहानी है।

प्रश्न 9. 'भोलाराम का जीव' व्यंग्य की समीक्षा कीजिए।

अथवा

हरिशंकर परसाई द्वारा रचित व्यंग्य 'भोलाराम का जीव' की समीक्षा कीजिए।

उत्तर-

'भोलाराम का जीव' व्यंग्य की समीक्षा

हरिशंकर परसाई द्वारा रचित व्यंग्य-कथा 'भोलाराम का जीव' वर्तमान सरकारी कार्यालयों में व्याप्त भ्रष्टाचार को उजागर करती है। इसमें पौराणिक प्रतीकों के माध्यम से भोलाराम नामक एक साधारण व्यक्ति की सेवानिवृत्ति के बाद आने वाली समस्याओं का

व्यात्मक चित्रण किया गया है। कथा के तत्वों के आधार पर 'भोलाराम का जीव' नामक व्यंग्य कथा की समीक्षा प्रस्तुत है-

1. कथानक—'भोलाराम का जीव' हरिशंकर परसाई की व्यंग्य-कथा है जिसका कथानक छोटा है। एक सामान्य व्यक्ति भोलाराम को सरकारी नौकरी से रिटायर हुए पाँच वर्ष हो गए थे, परन्तु उसकी पेंशन शुरू नहीं हो सकी थी। घर के सब गहने-कपड़े, बर्तन आदि बिक गए और अब तो भूखों मरने की नौबत आ गई। इसी भूख के कारण भोलाराम पाँच दिन पहले मर गया। भोलाराम पेंशन के लिए इतना बेचैन था कि यमदूत के हाथों से भागकर अपनी पेंशन की फाइल में जा छिपा। जब नारद जी ने पेंशन दफ्तर के बड़े साहब को अपनी वीणा रिश्वत के रूप में दी तब पेंशन की फाइल पर कार्यवाही शुरू हो गई। तब नारद जी ने भोलाराम से कहा कि अब तो स्वर्ग चलो, पर भोलाराम मना कर देता है क्योंकि उसका जीव तो पेंशन की दरख्वास्तों में अटका हुआ है। इस प्रकार लेखक ने इस व्यंग्य के माध्यम से नौकरशाही, लालफीताशाही, घूसखोरी और प्रशासकीय लेटलतीफी की ज्वलंत समस्याओं पर करारा प्रहार किया है।

2. पात्र एवं उनका चरित्र-चित्रण—इस व्यंग्य में यद्यपि अनेक पात्र हैं तथापि मुख्य पात्र भोलाराम और नारद जी दो ही हैं। मुख्य पात्रों के अलावा धर्मराज, चित्रगुप्त, यमदूत, भोलाराम की पत्नी, दो लड़के, एक लड़की, दफ्तर के बाबू, चपरासी, बड़े बाबू आदि गौण पात्र हैं। भोलाराम की पत्नी के संवाद के माध्यम से भोलाराम की स्थिति का पता चलता है-"क्या बताऊँ, गरीबी की बीमारी थी। पाँच साल हो गए पेंशन पर बैठे, पर पेंशन अभी तक नहीं मिली। हर दस-पंद्रह दिन में एक दरख्वास्त देते थे, परन्तु वहाँ से यही जवाब मिलता 'विचार हो रहा है।' इन पाँच सालों में सब गहने बेचकर हम लोग खा गए फिर बर्तन बिके। अब कुछ नहीं बचा था। फाके होने लगे थे। चिंता में घुलते-घुलते और भूखे मरते-मरते उन्होंने दम तोड़ दिया।"

सरकारी कार्यालयों में व्याप्त भ्रष्टाचार को उजागर करता एक स्थल प्रस्तुत है-"जब नारद पच्चीस-तीस बाबुओं और अफसरों के पास घूम आए तब चपरासी ने कहा कि महाराज, आप क्यों इस झंझट में पड़ गए। आप अगर साल भर भी यहाँ चक्कर लगाते रहें तो भी काम नहीं होगा। आप तो सीधे बड़े साहब से मिलिए। उन्हें खुश कर लिया तो आपका अभी काम हो जाएगा।"

इस प्रकार पात्रों के माध्यम से सरकारी कर्मचारियों की पोल खोली गई है और इससे उनके चरित्र पर भी प्रकाश पड़ता है।

3. संवाद अथवा कथोपकथन—यद्यपि संवाद नाटक का अनिवार्य तत्व होते हैं तथापि कथा-कहानी में संवाद ही पात्रों को जीवंत बनाते हैं। 'भोलाराम का जीव' व्यंग्य कथा में भी लेखक ने संवादों की योजना की है। इसके संवाद सरल, सरस और पात्रों के अनुकूल हैं। संवादों की भाषा सामान्य बोलचाल के शब्दों से युक्त और प्रवाहमान है। प्रस्तुत व्यंग्य से छोटे-बड़े संवाद का उदाहरण प्रस्तुत है-

नारद ने कहा—"कैसे भेजता? चपरासी सो रहा है।"

"क्या काम है?" साहब ने रौब से पूछा।

नारद ने भोलाराम का पेंशन-केस बतलाया।

साहब बोले, "आप हैं बैरागी! दफ्तरों के रीति-रिवाज नहीं जानते। असल में भोलाराम ने गलती की। भई, यह भी एक मंदिर है। यहाँ भी दान-पुण्य करना पड़ता है। आप भोलाराम के आत्मीय मालूम होते हैं। भोलाराम की दरख्वास्तें उड़ रही हैं, उन पर वजन रखिए।"

इस प्रकार स्पष्ट है कि 'भोलाराम का जीव' व्यंग्य की संवाद योजना सफल है।

4. देशकाल और वातावरण—'भोलाराम का जीव' व्यंग्य का देश जबलपुर शहर का धमापुर मुहल्ला है। प्रस्तुत व्यंग्य का काल संभवत: स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद का है। उस समय सरकारी कार्यालयों में भ्रष्टाचार ने जड़ें जमाना शुरू कर दिया था और धीरे-धीरे ये जड़ें दृढ़ से दृढ़तर होती गईं। वातावरण के लिए धर्मलोक, जबलपुर में भोलाराम का टूटा-फूटा मकान और पेंशन दफ्तर की योजना की गई है। धर्मराज के लोक का एक उदाहरण प्रस्तुत है-

सामने बैठे चित्रगुप्त बार-बार थूक से पन्ने पलट, रजिस्टर पर देख रहे थे। गलती पकड़ नहीं आ रही थी। आखिर उन्होंने खोजकर रजिस्टर इतने जोर से बंद किया कि मक्खी चपेट में आ गई। उसे निकालते हुए वे बोले- "महाराज ! रिकार्ड सब ठीक है। भोलाराम के जीव ने पाँच दिन पहले देह त्यागी और यमदूत के साथ इस लोक के लिए रवाना भी हुआ, परन्तु यहाँ अभी तक नहीं पहुँचा।"

सरकारी दफ्तर के वातावरण का एक दृश्य प्रस्तुत है-साहब बोले भाई, सरकारी पैसे का मामला है। पेंशन का केस बीसों दफ्तरों में जाता है। देर लग ही जाती है। जितनी पेंशन मिलती है, उतनी ही स्टेशनरी लग जाती है, हाँ जल्दी भी हो सकता है, मगर ..... साहब रुके।

5. भाषा-शैली—'भोलाराम का जीव' व्यंग्य की भाषा सामान्य बोलचाल की हिन्दी है जिसमें अंग्रेजी तथा उर्दू के शब्द भी प्रयुक्त हैं। इसमें अंग्रेजी के शब्द अलॉट, रजिस्टर, रिकार्ड, रेलवे, पार्सल, रिटायर, इंजीनियर, इन्कम टैक्स, पेंशन, पेपर वेट, विजिटिंग कार्ड, स्टेशनरी, आर्डर आदि हैं। इसमें उर्दू के शब्द सिफारिश, कसर, दोस्त, दिलचस्प, दरख्वास्त, जवाब, फुरसत, मुद्दा, जिंदगी, वजन, दफ्तर आदि हैं। इसमें लेखक ने चकमा देना, चंगुल से छूटना, उड़ा देना, पैसा हड़पना, वजन रखना आदि मुहावरों का प्रयोग भाषा को रोचक तथा प्रभावी बनाने हेतु किया है। वाक्य प्राय: छोटे ही हैं, परन्तु बड़े अथवा लम्बे वाक्य भी आसानी से समझ में आ जाते हैं। व्यंग्य की शैली प्राय: संवादात्मक ही है परन्तु कहीं-कहीं भावात्मक और विवरणात्मक शैली का प्रयोग भी मिलता है। इस प्रकार भाषा-शैली की दृष्टि से 'भोलाराम का जीव' एक सफल व्यंग्य है।

6. उद्देश्य—प्रत्येक रचना किसी-न-किसी उद्देश्य को लेकर की जाती है, 'भोलाराम का जीव' शीर्षक व्यंग्य भी इसका अपवाद नहीं है। इस रचना का प्रधान उद्देश्य सरकारी दफ्तरों में व्याप्त भ्रष्टाचार का पर्दाफाश करना है। इसका उद्देश्य मात्र त्रुटियों को उजागर करना और किसी को चोट पहुँचाना नहीं है बल्कि प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में परदु:खकातरता, संवेदनशीलता और कर्तव्यपरायणता की भावना को जाग्रत करना भी है। सरकारी कर्मचारी भी मनुष्य ही होता है। उसे मनुष्य होकर दूसरे मनुष्य के दर्द, परिस्थिति आदि को समझकर अपने कर्तव्य का पालन ईमानदारी से करना होगा तभी सामाजिक व्यवस्था सुचारू से चल सकेगी।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'भोलाराम का जीव' नामक व्यंग्य कहानी-कला के सभी तत्वों के मापदंडों पर खरा उतरता है और यह एक सफल-सार्थक व्यंग्य रचना है। ❑

महत्वपूर्ण व्याख्याएँ

1. संकेत- दयानिधान! मैं कैसे बतलाऊँ कि क्या हो गया? अज तक मैंने धोखा नहीं खाया था, पर भोलाराम का जीव मुझे चकमा दे गया। पाँच दिन पहले जब जीव ने भोलाराम की देह को त्यागा, तब मैंने उसे पकड़ा और इस लोक की यात्रा आरम्भ की। नगर के बाहर ज्यों ही मैं उसे लेकर एक तीव्र वायु-तरंग पर सवार हुआ त्यों ही वह

चंगुल से छूटकर न जाने कहाँ गायब हो गया। इन पाँच दिनों में मैंने सारा ब्रह्माण्ड न डाला, पर उसका कहीं पता नहीं चला।

सन्दर्भ—प्रस्तुत गद्यांश हरिशंकर परसाई द्वारा रचित व्यंग्य-कथा 'भोलाराम का जीव' लिया गया है।

प्रसंग—यमदूत जब पाँच दिन बाद यमलोक लौटा तो चित्रगुप्त ने झल्लाकर पूछा कि तने दिन तुम कहाँ रहे और भोलाराम का जीव कहाँ हैं, तब उस यमदूत ने उत्तर देते हुए जो कहा वही इस गद्यांश का विषय है।

व्याख्या—चित्रगुप्त के प्रश्न का उत्तर देते हुए यमदूत हाथ जोड़कर कहने लगा कि ह दया के भण्डार चित्रगुप्त जी, मैं समझ नहीं पा रहा कि आपको क्या बताऊँ। सदियों बीत गई पृथ्वी से जीव लाते-लाते, पर आज तक कोई चूक नहीं हुई। कभी भी किसी जीव को लाने में मुझसे गलती नहीं हुई, परन्तु भोलाराम न जाने किस प्रकार धोखा दे गया। मुझे आश्चर्य है कि वह मेरे हाथ से निकल कैसे गया। पाँच दिन पहले जब भोलाराम ने प्राणों को त्यागा था, तब मैंने उसके जीव को पकड़ा और यमलोक की ओर चल दिया। नगर के बाहर आकार मैं भोलाराम का जीव लेकर जैसे ही एक वायु की तरंग पर सवार हुआ, उसी समय वह जीव मेरे हाथ से छूटकर पता नहीं कहाँ गायब हो गया। ऐसा मेरे साथ पहली बार हुआ था। मैं बहुत डर गया और निश्चय किया कि उस जीव को खोजकर ही यमलोक जाऊँगा। मैंने पाँच दिन तक उसकी खोज की। उसे खोजने के लिए मैंने सारे ब्रह्मांड को छान डाला, लेकिन उसका कहीं पता नहीं चला।

विशेष—(1) लेखक न पौराणिक पात्रों के माध्यम से मानव की चतुराई का चित्रण किया है। (2) भाषा सरल, सुबोध, खड़ी बोली और शैली विवरणात्मक है।

2. संकेत- महाराज, आजकल पृथ्वी पर इस प्रकार का व्यापार बहुत चला है। लोग दोस्तों को कुछ भेजते हैं और उसे रास्ते में ही रेलवे वाले उड़ा लेते हैं। हौजरी के पार्सलों के मोजे रेलवे अफसर पहनते हैं। मालगाड़ी के डिब्बे के डिब्बे रास्ते में कट जाते हैं। एक बात और हो रही है, राजनैतिक दलों के नेता विरोधी नेता को उड़ाकर बंद कर देते हैं। कहीं भोलाराम के जीव को भी तो किसी विरोधी दल ने मरने के बाद दुर्गति के लिए तो नहीं उड़ा दिया?

संदर्भ—पूर्ववत्।

प्रसंग—प्रस्तुत गद्यांश में लेखक ने चित्रगुप्त के माध्यम से रेलवे और राजनैतिक दलों के भ्रष्टाचार को उजागर किया है।

व्याख्या—भोलाराम का जीव गायब होने के प्रति चित्रगुप्त अपनी संभावना व्यक्त करते हुए धर्मराज से कहते हैं कि महाराज, पृथ्वीलोक में तरह-तरह के भ्रष्टाचार पनप चुके हैं। लोग पार्सल के माध्यम से अपने मित्रों को जो उपहार भेजते हैं, रेलवे के कर्मचारी, अधिकारी उसे रास्ते में पड़ने वाले स्टेशनों से चुरा लेते हैं और स्वयं अपने उपयोग में ले लेते हैं। हौजरी के पार्सलों में जो मोजे, बनियान, रूमाल आदि भेजे जाते हैं उन्हें गायब कर कर्मचारी अफसरों के घर पहुँचा देते हैं। रेलवे के अफसर उन मोजों को खुलेआम पहनते हैं। मालगाड़ी के डिब्बे रास्ते में ही खोल लिए जाते हैं और माल गायब कर दिया जाता है। कभी-कभी तो पूरे डिब्बे ही गायब कर कबाड़ियों से कटवा दिए जाते हैं। आजकल एक बात और हो रही है वह यह कि सत्तासीन दल के राजनैतिक नेता विरोधी दल के नेताओं का अपहरण कर उन्हें कैद कर

लेते हैं। कहीं भोलाराम के जीव को भी किसी विरोधी दल ने मरने के बाद बुरी दशा करने के लिए तो नहीं गायब कर दिया।

विशेष—(1) लेखक ने रेलवे के पार्सलों से चोरी करने वाले कर्मचारियों-अधिकारियों पर व्यंग्य किया है। (2) भाषा, सरल, सुबोध, खड़ी बोली है जिसमें रेलवे और पार्सल अंग्रेजी के शब्द हैं। ❑

जीवनी : उत्तर योगी श्री अरविन्द (शिवप्रसाद सिंह)

(अंश - मनुष्य प्रकृति की सर्वोच्च प्रयोगशाला)

प्रश्न 10. हिन्दी गद्य साहित्य में जीवनी लेखन के उद्‌भव एवं विकास पर प्रकाश डालिये।

उत्तर- जीवनी साहित्य का उद्‌भव एवं विकास

जीवनी लेखन हिन्दी साहित्य की कोई नयी विधा नहीं है। जीवनी साहित्य का प्रारम्भ 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता', 'दो सौ वैष्णवन की वार्ता' से मान सकते हैं, लेकिन जीवनी लेखन का वैज्ञानिक दृष्टिकोण हमें पश्चिम की देन हैं। पूर्ण वैज्ञानिक विश्लेषण, सम्यक निरुपण एवं मनोवैज्ञानिक चित्रण की दृष्टि से हिन्दी का जीवनी साहित्य अब लगातार प्रगति करता जा रहा है। इसलिए जीवनी साहित्य का महत्व हिन्दी में दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है। वैसे देखा जाये, तो उसका आधार निश्चित रूप से विविधपूर्ण और विस्तृत है। इसका कारण है कि जीवन का आधार सत्यता है, इसके लेखन में लेखक बुद्धि व भावना का उपयोग तो करता है, पर कल्पना का योग प्राय: शून्य ही रहता है। वह उन घटनाओं के प्रकाश में उसके व्यक्तित्व को उभारने का प्रयत्न करता है। उसके साथ ही उसकी पुन: रचना करता है और पाठकों पर भावात्मक व क्रियात्मक प्रभाव डालना चाहता है। 'रामनाथ-सुमन' का कथन है कि "जीवनी लेखन की कला वहीं सार्थक होती, जहाँ लेखक व चरित्र नायक के जीवन में छिपे उसके विकास, उसके व्यक्तित्व के रहस्य को उसकी मुख्य जीवनधारा को घोलकर पाठकों के सामने रख देता हे। मनुष्य के ऊपरी आवरण और रूप को ही दिखाकर जीवनी लेखन-कला संतुष्ट नहीं होती वह उस आवरण को भेदकर अन्त: स्वरूप और आन्तरिक सत्य को प्रत्यक्ष करती है।"

सुमनजी के इस कथन से स्पष्ट होता है कि जीवन महान् पुरुषों के आन्तरिक व बाह्य स्वरूप को बड़े रोचक व कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करना है, परन्तु सच्ची घटनाओं का प्रयोजन विशेष रूप से होता है।

इसी कारण आज तक जितने भी महान जीवन लेखक हुए हैं, उन्होंने अपने चरित्र नायकों को पूर्णत: खरी रूप में प्रस्तुत किया है, जैसे कि वे अपने वास्तविक जीवन में थे, परन्तु उनके व्यक्तित्व को और भी सजीव तथा प्रेरणास्पद बनाने के लिए वे उनकी घटनाओं को कलात्मकता का पुट देकर प्रस्तुत करते हैं।

वैसे जीवनी किसी व्यक्ति के जीवन का लिखित या वर्णन किया हुआ वृत्तान्त है इसको हम किसी सीमा तक उस व्यक्ति का इतिहास भी कह सकते हैं। इतिहास के लेखक की तरह जीवनी लेखक भी अपने नायक के जीवन का वर्णन अक्षरश: सत्य घटनाओं के आधार पर ही प्रस्तुत करता है और इसके विपरीत जीवन में व्यक्तिगत जीवन का ही महत्व अधिक होता है।

जीवनी किसी महान् पुरुष के सम्बन्ध में बिखरी हुई विस्तृत सामग्री को एकत्रित करके इस प्रकार से सजाने का प्रयत्न करता है, जिस प्रकार एक चित्रकार चित्रफलक पर विभिन्न रंगों से सजीव चित्र को प्रस्तुत करता है।

जीवनी में यथार्थवादी प्रवृत्ति होने के कारण जीवनियाँ अधिक लिखी जाने लगी हैं। राष्ट्रनायकों से सम्बन्धित जीवन कथाओं में विभिन्न लेखकों द्वारा लिखित लोकमान्य तिलक, महात्मा गाँधी, डॉ. राजेन्द्रप्रसाद, जवाहरलाल नेहरू, सरदार वल्लभभाई पटेल, लालबहादुर शास्त्री की जीवनियाँ प्रमुख हैं। स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानियों के रूप में चन्द्रशेखर आजाद, सरदार भगतसिंह, लाला लाजपतराय तथा सुभाषचन्द्र बोस की भी जीवनियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। इतिहास प्रसिद्ध व्यक्तियों की जीवन कथाओं में गौरीशंकर चटर्जी द्वारा लिखित 'हर्षवर्धन' तथा रूपनारायण पांडेय द्वारा लिखित 'सम्राट अशोक' उल्लेखनीय हैं। समाज सुधारकों, गम्भीर चिन्तकों तथा मनीषियों में राजाराम मोहनराय, स्वामी दयानन्द सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, सन्त कबीर तथा विश्वयोगी अरविन्द की जीवनियाँ प्रमुख हैं। साहित्यकारों की जीवन कथाओं में विशेष रूप से—कीर्तिप्रसाद खत्री द्वारा लिखित मीराबाई का चरित्र, ब्रजरत्नदास कृत भारतेन्दु का जीवन चरित्र और बनारसीदास चतुर्वेदी द्वारा लिखी गयी पं. सत्यनारायण की जीवनी और बालमुकुन्द गुप्त द्वारा लिखित प्रतापनारायण मिश्र का जीवन चरित्र अपना विशेष महत्व रखता है। भारत के प्रमुख वैज्ञानिकों की जीवनियाँ भी कई प्रसिद्ध लेखकों द्वारा प्रस्तुत की गयी है। विदेशी महापुरुषों में कार्लमार्क्स, स्टालिन, बिस्मार्क और हिटलर पर जीवनियाँ लिखी गयी हैं। आजकल साधारण व्यक्तियों की भी जीवनियाँ लिखी जाने लगी हैं। इस प्रकार की जीवनियों में जैनेन्द्रकुमार जैन द्वारा लिखित 'ये और वे' तथा हर्षदेव मालवीय द्वारा प्रणीत 'मुरली बादशाह' झुन-खलीफा और 'ढुलकते इक्के-पक्के आम' प्रसिद्ध हैं। ❑

प्रश्न 11. शिवप्रसाद सिंह का साहित्यिक परिचय दीजिए।

शिव प्रसाद सिंह का परिचय

उत्तर-

हिन्दी के विख्यात साहित्यकार शिवप्रसाद सिंह का जन्म 19 अगस्त, 1928 को वनारस (वाराणसी) के जलालपुर गाँव में एक जमींदार परिवार में हुआ था। आपने सन् 1949 में उदयप्रताप कॉलेज से इंटरमीडिएट, 1951 में वनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से बी.ए. और 1953 में हिन्दी में एम.ए. प्रथम श्रेणी में किया। उन्होंने एम.ए. में कीर्तिलता और अवहट्ठ भाषा पर जो लघु शोध प्रवन्ध प्रस्तुत किया, उसकी प्रशंसा राहुल सांकृत्यायन और हजारी प्रसाद द्विवेदी ने की थी। शिवप्रसाद जी यद्यपि हजारीप्रसाद जी के शुरू से ही प्रिय शिष्यों में थे पर इस लघु शोध के पश्चात् उन्हें विशेष प्यार मिलने लगा। द्विवेदी जी के निर्देशन में उन्होंने 'सूर पूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य' विषय पर शोध सम्पन्न किया जो अपने प्रकार का उत्कृष्ट और मौलिक कार्य था।

डॉ. शिवप्रसाद सिंह काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में सन् 1953 में प्रवक्ता नियुक्त हुए, जहाँ से 31 अगस्त 1988 को प्रोफेसर पद से उन्होंने अवकाश ग्रहण किया था। भारत सरकार की नई शिक्षा के अन्तर्गत यू.जी.सी. ने 1986 में उन्हें 'हिन्दी पाठ्यक्रम विकास केन्द्र' का समन्वयक नियुक्त किया था। इस योजना के अन्तर्गत उनके द्वारा प्रस्तुत हिन्दी पाठ्यक्रम को यू.जी.सी. ने 1989 में स्वीकृति प्रदान की थी और उसे देश के समस्त विश्वविद्यालयों के लिए जारी किया था। वे 'रेलवे बोर्ड के राजभाषा विभाग' के मानद् सदस्य भी रहे और साहित्य अकादमी, बिरला फाउंडेशन, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान जैसी अनेक संस्थाओं से किसी-न-किसी रूप में सम्बद्ध रहे थे।

शिवप्रसाद सिंह प्रायः अपने बाबा की जमींदारी के वैभव की चर्चा अवश्य करते थे, परन्तु इस वातावरण से सदैव असंपृक्त रहते थे। उनके विकास में उनकी दादी माँ, पिता और माँ का विशेष योगदान रहा। दादी माँ की अक्षुण्ण स्मृति उन्हें अंत तक रही और यह उसी का प्रभाव था कि उन्होंने पहली कहानी 'दादी माँ' लिखी, जिससे हिन्दी कहानी को नया आयाम मिला। 'दादी माँ' कहानी से ही नई कहानी का प्रवर्तन स्वीकार किया जाता है और इसे पहली आंचलिक कहानी होने का गौरव प्राप्त है। उस समय तक फणीश्वरनाथ रेणु का आंचलिकता के क्षेत्र में आविर्भाव नहीं हुआ था। शिवप्रसाद सिंह ने अपनी कहानियों में आंचलिकता के जो प्रयोग किए वह प्रेमचंद और रेणु से पृथक् थे। उनका मार्ग एक प्रकार से दोनों के बीच का मार्ग था और यही कारण है कि उनकी कहानियाँ पाठकों को अधिक आकर्षित कर सकी थीं। इसे विडंबना ही कहा जा सकता है कि जिसकी रचनाओं को साहित्य की नई धारा के प्रवर्तन का श्रेय प्राप्त हो उसने अपने को किसी भी आन्दोलन से नहीं जोड़ा। वे स्वतन्त्र रूप से अपने ढंग के लेखन में व्यस्त रहे और संभवतः इसी कारण कालजयी उपन्यास और कहानियाँ लिख सके।

कृतियाँ

उपन्यास—अलग-अलग वैतरणी, गली आगे मुड़ती है, नीला चाँद, शैलूष, हनोज दिल्ली दूर अस्त, औरत, वैश्वानर।

कहानी-संग्रह—आर-पार की माला, कर्मनाशा की हार, शाखामृग, इन्हें भी इंतजार है, मुर्दा सराय, राग गूजरी, भेदिए।

निबन्ध-संग्रह—शिखरों के सेतु, कस्तूरी मृग, चतुर्दिक।

आलोचना—विद्यापति, आधुनिक परिवेश और नवलेखन, आधुनिक परिवेश और अस्तित्ववाद।

रिपोर्ताज—अंतरिक्ष के मेहमान।

जीवनी—उत्तरयोगी श्री अरविंद।

सम्पादन—शांतिनिकेतन से शिवालिक तक।

शिवप्रसाद सिंह को उनके उपन्यास 'नीला चाँद' के लिए सन् 1990 में साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

हिन्दी साहित्य का यह दैदीप्यमान साहित्यकार 28 सितम्बर, 2008 को सदा के लिए इस दुनिया को छोड़ गया। ❑

प्रश्न 12. शिवप्रसाद सिंह द्वारा रचित जीवनी 'उत्तर योगी जी अरविन्द' का अंश मनुष्य : प्रकृति की सर्वोच्च प्रयोगशाला का सारांश लिखिए।

अथवा

मनुष्य : प्रकृति की सर्वोच्च प्रयोगशाला अध्याय का सार अपने शब्दों में लिखिए।

उत्तर- 'मनुष्य : प्रकृति की सर्वोच्च प्रयोगशाला' अध्याय का सार

शिवप्रसादर सिंह द्वारा लिखित जीवनी 'उत्तरयोगी श्री अरविंद' का ग्यारहवां अध्याय है- मनुष्य : प्रकृति की सर्वोच्च प्रयोगशाला। इसमें विभिन्न दार्शनिकों की मानव सम्बन्धी विचारधारा के साथ ही श्री अरविंद के दर्शन का भी समावेश है। अध्याय का सार इस प्रकार है-

मानव सृष्टि की अनुपम उपलब्धि—वेदों, उपनिषदों आदि में मनुष्य को प्रकृति का ...श्रेष्ठ प्राणी कहा गया है। पवित्र आन्दोलन के समय कहा गया कि 'बड़े भाग मानुष तन ...पाता'। बाइबिल में मनुष्य को आश्चर्यजनक रचना कहा गया है। **फ्रांसिस बेकारने** मनुष्य को स्वर्ग का मास्टरपीस (कुशलतम निर्माण) कहते हैं। **इमर्सन** ने मनुष्य को 'साक्षात देवता' कहा है। मनुष्य की सर्वश्रेष्ठता की यह धारणा सर्वप्रथम पश्चिम में ही विकसित हुई। **मार्कट्वेन** मानव को सभी जीवों से घृणित कहते हैं। **रस्किन** के अनुसार, आदमी एक हायसीन जड़ीला जानवर है जो खून चूस सकता है, डंक मार सकता है, पर कभी कुछ बुन नहीं सकता। पूर्व और पश्चिम के सभी चिंतक परेशान हैं कि मानव के दारुण अवमूल्यन को कैसे रोका जाए। यह रुक भी सकता है या नहीं।

श्री अरविंद की विचारधारा—श्री अरविंद के अनुसार सम्पूर्ण सृष्टि ब्रह्म की अभिव्यक्ति है। सब कुछ उसी परा चैतन्य से प्रस्फुटित होता है और उसी के भीतर उसी के द्वारा संचालित हो रहा है। प्राचीन ऋषियों ने इस परमोच्च दिव्य तत्व को सच्चिदानंद की संज्ञा दी थी। "कहा जाता है कि पशु एक ऐसी सजीव प्रयोगशाला रही है जिसके अंदर प्रकृति ने मनुष्य को गढ़ा। उसी तरह संभव है कि मनुष्य एक ऐसी विचारशील और सजीव प्रयोगशाला हो, जिसके अन्दर उसके सचेतन सहयोग से प्रकृति अतिमानस के देवता का निर्माण करना चाहती है।" श्री अरविंद का पूरा दर्शन, मनोविज्ञान और साधनारूप सभी इसी दिव्य प्रेरणाप्रद सूत्र से संचालित हैं। चूँकि मनुष्य एकमात्र सोचने-विचारने वाला प्राणी है इसलिए उसके विकास की प्रक्रिया स्वाभाविक होते हुए भी बहुत कुछ उसके 'सहयोग' पर निर्भर करती है। यह सहयोग श्री अरविंद की साधना का मूलमंत्र है। यहा आकर मनुष्य सिर्फ एक मशीन की नहीं, उसके संचालन में सहकर्मी की भूमिका में खड़ा हो जाता है।

चेतना—श्री अरविंद कहते हैं कि प्राचीन चिंतकों को यह कहना ठीक था कि अपनी जाग्रत अवस्था में भी हम जिसे चेतना कहते हैं, वह हमारी समग्र सचेतन सत्ता में से निर्वाचित किया गया एक छोटा-सा भाग ही है। इससे पीछे इससे कहीं विशाल एक अवगूढ़ या अवचेतन मानस है जो हमारी चेतना का महत्तर भाग है और उसमें ऐसी ऊँचाइयाँ और गम्भीरताएँ हैं जिन्हें कोई मनुष्य अब तक न पा सका है, न थाह सका है। श्री अरविंद ने चेतना को दो भागों में बाँटा-चेतना का वह रूप, जो अब तक विकास के परमोच्च पर है अर्थात् मानसिक और दूसरा वह जो विकास के माध्यम से भविष्य में पाया जा सकेगा अर्थात् अतिमानसिक। मनुष्य ने मानसिक चेतना को विकास के दौर में पा लिया है, परन्तु वह चेतना के विकास की मूलभूत प्रक्रिया को विश्लेषण और हृदयंगम न कर पाने के कारण जानता ही नहीं कि मानसिक चेतना के आगे क्या है। हर जीवन-पदार्थ पर चेतना की विजय का एक चरण है, यह तब तक चलता रहेगा, जब तक पदार्थ को अनुशासित करके चेतना उसे पूर्ण आत्मा की अभिव्यक्ति का सीधा साधन और माध्यम नहीं बना देती।

चैत्यपुरुष—मनुष्य के भीतर विद्यमान चैत्यपुरुष ऐसी शुद्ध और पवित्र अग्निशिखा है जिसे इसके सम्पर्क में आने वाली कोई भी वस्तु या हमारे कोई भी अनुभव कभी भी अपवित्र नहीं कर सकते या कोई भी चीज इसे बुझा नहीं सकती। यह आत्मिक, अयोनिज और पूर्ण दीप्त तत्व है इसलिए यह तुरंत सगेपन के साथ और सीधे प्रकृति के और अस्तित्व के सत्य को जान लेता है। यह पूरी गहराई से 'सत्यं शिवं सुंदरं' के प्रति जागरूक होता है क्योंकि ये चीजें इसके मूल स्वभाव से अथवा इसके तात्विक रूपाकार से बहुत घनिष्ठ रूप से सम्बन्ध रखती हैं। यह

चैत्यपुरुष तब तक उन्मीलित नहीं हो सकता, जब तक हम आंतरिक रूप से शांत नहीं होते, अपने मस्तिष्क की हलचलों और आपाधापी की क्रियाओं को स्थगित नहीं कर देते।

एक ओर जहाँ आज के विश्व में मनुष्य की निम्नतम क्षुद्रता की बात कही जा रही है, वहीं दूसरी ओर श्री अरविंद ने उसकी चेतना की विराट वर्तुल गरिमा का और उसकी अद्भुत संभावनाओं के द्वारा उन्मुक्त किया है। इसे कोरा दर्शन मात्र न रखकर इसे अपने कार्यों से प्रमाणित भी किया है। यह सब हमें मानव की नियति पर नये सिरे पर सोचने के लिए प्रेरणा देता है। संसार में कोई भी आन्दोलन, कोई भी विचारधारा, कोई भी सुधार का प्रयत्न या मनुष्य-जीवन को बेहतर बनाने की असंख्य क्रांतियाँ तब तक सफल न होंगी, जब तक मनुष्य के मानसयंत्र का उच्चस्तरीय रूपांतरण नहीं होता। पाश्चात्य मनोविज्ञान ने मानव मन की एक बंद कोठरी के गलीज को ही बिखेर कर अवचेतन की क्षमता की इयत्ता मान ली है। उसी अवचेतन से पराचैतन्य की एक ज्योति-शिखा भी है। इसे श्री अरविंद दिखाते हैं और जिन्हें ज्योति से प्यार है, वे इस ओर से आँखे नहीं मूँद सकते। ❑

महत्वपूर्ण व्याख्याएँ

1. संकेत- मनुष्य की एक ऐसा प्राणी है जो मन-तत्व का अधिष्ठाता है। इसलिए मनुष्य को समझने के लिए उसके मानसिक गठन का सर्वांग विश्लेषण अनिवार्य हो जाता है। पहले ही कहा गया कि श्री अरविंद वेदांत की उस मान्यता में विश्वास रखते हैं कि सम्पूर्ण सृष्टि ब्रह्मा की, जो सच्चिदानंदात्मक है, अभिव्यक्ति है। यों तो उसकी सभी निरुपाधिक शक्तियाँ पूरी सृष्टि में अनुवर्तित हैं, पर उनका स्फुटन सर्वत्र एक जैसा नहीं हो सकता। चाहें तो हम यें भी कह सकते हैं कि सृष्टि के नामरूप जो वैविध्य दिखाई पड़ता है, वह दिव्य शक्ति के कमोवेश प्रस्फुटन का ही परिणाम है। श्री अरविंद ने सब कुछ को ब्रह्मा माना, इसीलिए संसार को वे उसका उचित महत्व दे सके।

सन्दर्भ—प्रस्तुत गद्यांश शिवप्रसाद सिंह द्वारा लिखित जीवनी 'उत्तरयोगी श्री अरविंद' के अध्याय 'मनुष्य : प्रकृति की सर्वोच्च प्रयोगशाला' से उद्धृत है।

प्रसंग—इस गद्यांश में लेखक ने मनुष्य के विषय में अपने तथा श्री अरविंद के विचार व्यक्त किए हैं।

व्याख्या—लेखक कहते हैं कि इस संसार में केवल मनुष्य ही एकमात्र ऐसा प्राणी है जो मन का नियामक है अर्थात् मनुष्य ही मन का स्वामी है वही इसे नियंत्रण में रखता है। यही कारण है कि मनुष्य को समझने के लिए उसके मानसिक गठन का पूर्ण रूप से विश्लेषण करना आवश्यक ही नहीं बल्कि अनिवार्य हो जाता है। सारे संसार की रचना सत्, चित् और आनन्द स्वरूप ब्रह्मा ने ही की है। उस ब्रह्मा की माया-मोह से रहित शक्तियाँ समस्त संसार में व्याप्त हैं परन्तु उनका विकास सभी जगह एक समान नहीं है। इसे हम अन्य रूप में इस प्रकार भी कह सकते हैं कि सृष्टि की महान रचना मनुष्य में नाम या रूप की जो विविधता दिखाई पड़ती है उसका कारण दिव्य शक्ति का कम या अधिक विकास होना है। इस प्रकार श्री अरविंद ने इस जगत का नियंता ब्रह्मा को ही माना और चूंकि समस्त सृष्टि उस ब्रह्मा की ही रचना है इसलिए उन्होंने समस्त संसार को वही महत्व दिया जो उन्होंने सच्चिदानंद रूप ब्रह्मा को प्रदान किया है।

विशेष—(1) श्री अरविंद मनुष्य को ब्रह्म की रचना मानते हैं इसी कारण वे उसे अत्यधिक महत्व देते हैं। (2) गद्यांश की भाषा शुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली है।

2. संकेत- मानव के उच्चतर सत्ता में रूपांतरण के कार्य को श्री अरविंद चेतना-विकास का अनिवार्य चरण मानते हैं। पर आज तक ऐसा हुआ क्यों नहीं? बड़े-बड़े दार्शनिक पैदा हुए, सिद्ध-संन्यासी उपदेश देते रहे, पर दर्द बढ़ता ही गया, ज्यों-ज्यों दवा होती रही। आखिर क्यों? श्री अरविंद ने इसका कारण बताते हुए कहा कि- "ऐसा इसलिए हुआ कि अध्यात्म के नाम पर जगत् से उदासीनता का उपदेश और साधना के नाम पर व्यक्तिगत मुक्ति का प्रयत्न ही मुख्य उद्देश्य बन गया। मानव मात्र के विकास पर कभी दृष्टि टिकी ही नहीं। इसीलिए श्री अरविंद का पूर्ण योग शरीर, प्राण, मन, जीवन-जगत् से अलग होने का नहीं, इन्हीं के बीच उच्चतर क्रिया से इनके रूपांतर पर बल देता है।

सन्दर्भ—पूर्ववत्।

प्रसंग—प्रस्तुत गद्यांश में श्री अरविंद ने मानव चेतना का विकास न होने का कारण स्पष्ट किया है।

व्याख्या—श्री अरविंद की मान्यता है कि मनुष्य में जो सत्ता विद्यमान है उस सत्ता के निम्न से उच्चतर रूप में बदलने का कार्य मानवीय चेतना के विकास का अनिवार्य सोपान है। लेकिन मानव की सत्ता में यह परिवर्तन आज तक नहीं हो सका, इसका क्या कारण है। देश-विदेश में बड़े-बड़े दार्शनिकों ने इसकी खोज की, अनेक सिद्ध और संन्यासी सत्ता के उच्चतर सत्ता में परिवर्तन पर लम्बे-लम्बे उपदेश देते रहे, परन्तु समस्या और भी बढ़ती गई अर्थात् मानव में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। इसका कारण स्पष्ट करते हुए श्री अरविंद कहते हैं कि मनुष्य को अध्यात्म के नाम पर इस संसार से उदासीन रहने का उपदेश दिया गया और साधना के नाम पर स्वयं की मुक्ति पर बल दिया गया। तात्पर्य यह है कि हमारे धर्मगुरुओं, संत-महंतों ने संसार से विरक्ति को अध्यात्म का नाम दिया और व्यक्तिगत मुक्ति के प्रयास को ही साधना स्वीकार किया है। ऐसे लोगों ने अर्थात् संत-महंत, साधु-सन्यासी आदि ने व्यक्ति के विकास पर अपना ध्यान केन्द्रित ही नहीं किया। यदि ऐसा किया होता तो आज मानव चरम विकास को प्राप्त होता। इसी कारण श्री अरविंद ने पूर्ण योग का जो दर्शन प्रदान किया, वह शरीर, प्राण, मन, जीवन तथा जगत से अलग न होने पर बल देता है और इन्हीं के मध्य अपने उच्चतर कार्याकलापों से शरीर, प्राण, मन, जीवन और जगत के रूपांतर पर बल देता है।

विशेष—(1) श्री अरविंद का मानना है कि व्यक्ति का विकास ही परमशक्ति का विकास है इसलिए दार्शनिकों को व्यक्ति-विकास पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। ❑

(2) भाषा तत्सम शब्दों से युक्त साहित्यिक खड़ी बोली है।

आत्मकथा : क्या भूलूँ क्या याद करूँ (हरिवंशराय 'बच्चन')

(अंश - श्यामा प्रसंग पृ. 169 से 174 तक)

प्रश्न 13. आत्मकथा किसे कहते हैं? इसके स्वरूप एवं विकास पर प्रकाश डालिए।

अथवा

'आत्मकथा' से क्या आशय है? उसके उद्भव और विकास को समझाइये।

उत्तर- 'आत्मकथा' जीवनी लेखन की एक विधा है। पूर्व में यह स्पष्ट हो गया है कि जीवन किसी दूसरे व्यक्ति के द्वारा लिखी गयी जीवन कथा है, जबकि आत्मकथा किसी व्यक्ति की स्वलिखित जीवनगाथा है। इसमें वह अपनी दृष्टि से अपने जीवन का वर्णन और उसकी व्याख्या करता है। वैसे देखा जाये, तो आत्मकथा भी एक प्रकार का इतिहास है, जिसकी रचना

भी तटस्थ भाव से की जाती है। वैसे जीवन में लेखक अपने चरित्र नायक की अत्यधिक प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता, जबकि आत्मकथा लेखक अपने जीवन का सिंहवलोकन करते समय प्राय: अपने गुणों पर विशेष बल देते हैं, पर साथ में कमजोरी के पक्ष को भी उजागर करते हैं। वैसे कमियों को खोलकर रखना बड़े साहस का कार्य है। यह आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, महात्मा गाँधी तथा जवाहरलाल नेहरू जैसे बिरले लोग ही कर सकते हैं। उनकी आत्मकथा हम आदर्श के रूप में अपना सकते हैं।

जवाहरलाल नेहरू के विचार है किसी आदमी को अपने बारे में खुद लिखना मुश्किल भी है और दिलचस्प भी, क्योंकि अपनी बुराई या निन्दा लिखना खुद हमें बुरा मालुम होता है और अगर हम तारीफ करें तो पाठकों को उसे सुनना नागवार मालूम होता है। इस कथा के आधार पर हम कह सकते हैं कि 'आत्मकथा' में व्यक्ति अपने अच्छे पक्ष को ही अधिक महत्व देना चाहता है।

आत्मकथा लिखकर लेखक, आत्म-समीकरण एवं आत्म परिष्कार करना चाहता है। इसके अतिरिक्त वह यह भी चाहता है कि उसके खट्टे-मीठे अनुभवों का लाभ संसार के अन्य लोग उठा सकें। इसके साथ ही आत्मकथा से उस समय का प्रामाणिक चित्रण जो उसके जीवन में बीता है, उसका भी वर्णन अनायास मिल जाता है। इससे उस समय की तात्कालीन परिस्थितियों का आभास भी पढ़ने वाले व्यक्ति को ही जाता है।

आत्मकथाएँ प्राय: दो रूपों में मिलती हैं या तो सम्बद्ध रूप में या स्फुट निबन्धों के रूप में। सम्बद्ध रूप में हम महात्मा गाँधी की आत्मकथा ले सकते हैं तथा सियारामशरण गुप्त का 'बाल्य-स्मृति' को स्फुट निबन्धों के रूप में ले सकते हैं।

'आत्मकथा' का जन्म जैन कवि बनारसीदास की 'अर्द्धकक्ष' से मानते हैं। इसे हिन्दी की प्रथम आत्मकथाओं में गिनी जाती है। ये अकबर के समकालीन थे। बनारसीदासजी ने इसमें अपनी बुराइयों, कमजोरियों और दयनीय परिस्थितियों का उद्‌घाटन किया है। आधुनिक युग में साहित्य की अन्य विधाओं के साथ-साथ आत्मकथा लेखन का भी विकास हुआ। कुछ आत्मकथाएँ तो उन लोगों की है, जिनका जीवन, धर्म और आध्यात्मिकता से अनुप्राणित रहा है। इसमें वियोगी हरि की आत्मकथा 'मेरा जीवन प्रवाह', स्वामी दयाल सन्यासी की 'प्रवासी की आत्मकथा', हरिभाऊ उपाध्याय की 'साधना के पथ पर' और स्वामी श्रद्धानन्द की आत्मकथा 'कल्याण पथ का पथिक' मुख्य है। राष्ट्र के उन्नायकों में महात्मा गाँधी की आत्मकथा, जवाहरलाल नेहरू की 'मेरी कहानी' और डॉ. राजेन्द्रप्रसाद की 'मेरी आत्मकथा।' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। साहित्यकार की आत्मकथाओं में भारतेन्दु हरिशचन्द्र की 'कुछ आप बीती कुछ जग बीती' (अपूर्ण) अम्बिकादत्त व्यास 'निज वृत्तान्त' महावीर प्रसाद द्विवेदी की आत्मकथा, डॉ. श्यामसुन्दर की 'मेरी आत्म कहानी' राहुल सांस्कृत्यायन की 'मेरी जीवन यात्रा', डॉ. गुलाबराय मेरी असफलताएँ, सियारामशरण गुप्त की 'झूठ सच' और बाल्य स्मृति, देवेन्द्र सत्यार्थी की 'चाँद सूरज के नीरज', कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी की 'स्वप्न' सिद्धि की खोज में प्रधान हैं। ❑

प्रश्न 14. आत्मकथा की विशेषताएँ लिखिए।

उत्तर- **आत्म-कथा की विशेषताएँ**—आत्म-कथा की निम्नंकित विशेषताएँ हैं—

(1) संकोच रहित आत्म-प्रकाशन, आत्म-विश्लेषण और आत्म-विवेचन।

(2) अपने ही जीवन और मन-मस्तिष्क के विवेचन-विश्लेषण का प्रयास।

(3) व्यष्टि दर्शन के उदाहरण से समष्टि दर्शन का उपाय।
(4) व्यक्तिगत मानवीय अनुभवों के प्रकाशन का श्रेष्ठ-साधन।
(5) अपने गुप्त मनोभावों को परखने और व्याख्या करने का आधार।
(6) अन्तस् और वाह्य तथा अतीत और वर्तमान को समन्वित कर अभिव्यक्त करने की कला।
(7) चरित्र-नायक के सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विश्लेषण का सबल आधार।
(8) माध्यम निरपेक्ष साक्षात् आत्माभिव्यक्ति।
(9) भोगे हुए यथार्थ का पुनरुत्थान।
(10) व्यक्तिगत ठोस अनुभवों, कोमल अनुभूतियों, तरल संवेदनाओं, सहज उद्भावनाओं एवं मार्मिक भावनाओं की सरल अभिव्यक्ति। ❑

प्रश्न 15. आत्मकथा की उपयोगिता पर प्रकाश डालिए।

उत्तर- **आत्म-कथा की उपयोगिता**—संक्षेप में आत्म-कथा की निम्नांकित उपयोगिताएँ हैं-

(1) क्रान्तिकारियों, राजनेताओं एवं संघर्षशील व्यक्तियों के जीवन-रहस्यों की सरलतापूर्वक पाठकों को उपलब्धि।
(2) दूसरों के रहस्यों के विषय में जिज्ञासा की सहज तृप्ति का सरलतम साधन।
(3) लोकोपकारक महापुरुषों द्वारा अपने गुण-दोषों की स्पष्ट समीक्षा से जनसामान्य का पथ-प्रदर्शन।
(4) लेखकों, कवियों एवं साहित्यकारों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के विषय में प्रमाणिक अन्त:साक्ष्यों की संप्राप्ति।
(5) अनन्य प्राप्त तथ्यों की तुलना में सत्यांकित इतिहास और भावात्मक सत्य के चित्रण का सुदृढ़ आश्वासन।
(6) कवियों, लेखकों द्वारा अपनी सृजन प्रक्रिया के विवेचन से काव्य-धर्म की निर्भ्रान्त व्याख्या तथा ऐतिहासिक समीक्षा में सहयोग। ❑

प्रश्न 16. हरिवंशराय 'बच्चन' का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

उत्तर-

हरिवंशराय 'बच्चन' का परिचय

हरिवंशराय 'बच्चन का जन्म प्रयाग में सन् 1907 में एक सम्पन्न कायस्थ परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम श्री प्रतापनारायण था। इन्होंने काशी (वाराणसी) और इलाहाबाद (प्रयागराज) में शिक्षा प्राप्त की तथा कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय से अंग्रेजी साहित्य में पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त की। सन् 1941 से 1952 ई. तक आप इलाबाद विश्वविद्यालय में अंग्रेजी के अध्यापक रहे। सन् 1955 में आप दिल्ली में विदेश मंत्रालय में हिन्दी विशेषज्ञ होकर आये। यहीं से इन्होंने अवकाश ग्रहण किया। सन् 1966 में भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्णन ने इन्हें राज्यसभा का सदस्य मनोनीत किया। कुछ समय तक बच्चन जी आकाशवाणी के साहित्यिक कार्यक्रमों से भी जुड़े रहे तथा कुछ वर्षों बाद अपने पुत्र प्रसिद्ध अभिनेता अभिताभ बच्चन के पास मुम्बई चले गए और जीवन के अन्तिम समय तक साहित्य की सेवा करते हुए वहीं रहे। 18 जनवरी, 2003 ई. को 96 वर्ष की आयु में आपका यह स्थूल शरीर पंचतत्व में विलीन हो गया।

कृतियाँ

काव्य-संग्रह-तेरा हार (1932), मधुशाला (1935), मधुबाला (1936), मधुकलश (1937), निशा निमंत्रण (1938), एकांत संगीत (1939), आकुल-अंतर (1943), मिलनयामिनी (1950), आरती और अंगारे (1958), बुद्ध और नाचघर (1958), त्रिभंगिमा (1961), चार खेमे चौसठ खूँटे (1962), दो चट्टानें (1965), बहुत दिन बीते (1967), जाल समेटा (1973), सोऽहम् हंस: (1981), नई से नई पुरानी से पुरानी (1985)।

आत्मकथा—क्या भुलूँ क्या याद करूँ (1969), नीड़ का निर्माण फिर (1970), बसेरे से दूर (1977), दशद्वार से सोपान तक (1985)।

डायरी—प्रवास की डायरी।

अनुवाद—हैमलेट, जनगीता, मैकबेथ।

हरिवंशराय बच्चन को वर्ष 1992 में उनकी आत्मकथा के चौथे खंड 'दशद्वार से सोपान तक' के लिए भारतीय साहित्य का सर्वोत्तम साहित्यिक सम्मान 'सरस्वती पुरस्कार' प्रदान किया गया। इसके अलावा राष्ट्रपति द्वारा प्रदत्त पद्मविभूषण, सम्मेलन प्रयाग द्वारा साहित्य वाचस्पति सम्मान, सोवियतलैंड नेहरू पुरस्कार, एफ्रो-एशियन राइटर्ज कॉन्फ्रेंस लोटस पुरस्कार और साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया जा चुका है। ❑

प्रश्न 17. हरिवंशराय 'बच्चन' की आत्मकथा 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ' का अंश 'श्यामा प्रसंग' का सारांश लिखिए।

अथवा

'श्यामा प्रसंग' का सार अपने शब्दों में लिखिए।

उत्तर-

'श्यामा प्रसंग' का सार

हरिवंशराय बच्चन ने अपनी आत्मकथा चार भागों में लिखी है जिसके पहले भाग का नाम क्या भूलूँ क्या याद करूँ' है। इसकी रचना सन् 1963 से 1969 तक हुई, जिसमें लेखक ने अपने कायस्थ वर्ण के नाम, उद्भव, विकास और महत्व पर विस्तृत निबन्ध लिखते हुए अपने अमोढ़ा वंश की सात पीढ़ियों की कथा इतने विस्तार से लिखी है जो इस खंड के अर्धांश से कुछ ही कम भाग को आवृत्त किए हुए है। इसके पश्चात् लेखक ने अपने जन्म, शैशव, शिक्षा के अभ्यास, गृह, परिवार, परिवेश और प्रतिवेशियों का सविवरण चित्रण करते हुए स्कूल कॉलेज के मित्रों और गुरुजनों से अपने सम्बन्धों और सम्पर्कों की विस्तृत जानकारी प्रदान की है। इसी खंड में अपने कैशोर्य काल एवं यौवनारंभ के प्रणय तथा भावुकता के विशिष्ट क्षणों का अंकन हुआ है। विशेष रूप से लेखक के हृदय पर सबसे अधिक छा जाने वाले तीन प्रणयाभिसारों के चित्र बहुत चमकीले रंगों में उभरे हुए दिखाई देते हैं- (1) कर्कल-चंपा प्रसंग, (2) श्री कृष्ण-प्रकाशो प्रकरण तथा (3) श्यामा संदर्भ।

इन तीनों प्रेम प्रसंगों ने जहाँ लेखक के भावुक मन पर अमिट संस्कारों को प्रत्यांकित किया, वहीं आशा-निराशा, उल्लास एवं अवसाद की भावनाओं का ऐसा ताना-बाना बुना जिसने लेखक के साहित्य सृजन की आधारशिला स्थापित की। फलस्वरूप सन् 1932 में 'तेरा हार', 1935 में 'मधुशाला' और 'ख्याम की मधुशाला' का अनुवाद तथा 1936 में 'मधुबाला' काव्य प्रकाशित हुए। सन् 1936 में ही 'मधुकलश' का भी निर्माण हुआ जो सन् 1937 में प्रकाशित हुआ। सन् 1936 में आन्त्रक्षय रोग की दुष्परिणति से कवि बच्चन की प्रथम पत्नी श्यामा बिना किसी शिशु को जन्म दिए स्मृति शेष हो गई। तभी कवि की लेखनी द्वारा 'निशा निमंत्रण'

कृतियाँ

काव्य-संग्रह-तेरा हार (1932), मधुशाला (1935), मधुबाला (1936), मधुकलश (1937), निशा निमंत्रण (1938), एकांत संगीत (1939), आकुल-अंतर (1943), मिलनयामिनी (1950), आरती और अंगारे (1958), बुद्ध और नाचघर (1958), त्रिभंगिमा (1961), चार खेमे चौसठ खूँटे (1962), दो चट्टानें (1965), बहुत दिन बीते (1967), जाल समेटा (1973), सोऽहम् हंस: (1981), नई से नई पुरानी से पुरानी (1985)।

आत्मकथा—क्या भुलूँ क्या याद करूँ (1969), नीड़ का निर्माण फिर (1970), बसेरे से दूर (1977), दशद्वार से सोपान तक (1985)।

डायरी—प्रवास की डायरी।

अनुवाद—हैमलेट, जनगीता, मैकबेथ।

हरिवंशराय बच्चन को वर्ष 1992 में उनकी आत्मकथा के चौथे खंड 'दशद्वार से सोपान तक' के लिए भारतीय साहित्य का सर्वोत्तम साहित्यिक सम्मान 'सरस्वती पुरस्कार' प्रदान किया गया। इसके अलावा राष्ट्रपति द्वारा प्रदत्त पद्मविभूषण, सम्मेलन प्रयाग द्वारा साहित्य वाचस्पति सम्मान, सोवियतलैंड नेहरू पुरस्कार, एफ्रो-एशियन राइटर्ज कॉन्फ्रेंस लोटस पुरस्कार और साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया जा चुका है। ❑

प्रश्न 17. हरिवंशराय 'बच्चन' की आत्मकथा 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ' का अंश 'श्यामा प्रसंग' का सारांश लिखिए।

अथवा

'श्यामा प्रसंग' का सार अपने शब्दों में लिखिए।

उत्तर- 'श्यामा प्रसंग' का सार

हरिवंशराय बच्चन ने अपनी आत्मकथा चार भागों में लिखी है जिसके पहले भाग का नाम क्या भूलूँ क्या याद करूँ' है। इसकी रचना सन् 1963 से 1969 तक हुई, जिसमें लेखक ने अपने कायस्थ वर्ण के नाम, उद्भव, विकास और महत्व पर विस्तृत निबन्ध लिखते हुए अपने अमोढ़ा वंश की सात पीढ़ियों की कथा इतने विस्तार से लिखी है जो इस खंड के अर्धांश से कुछ ही कम भाग को आवृत्त किए हुए है। इसके पश्चात् लेखक ने अपने जन्म, शैशव, शिक्षा के अभ्यास, गृह, परिवार, परिवेश और प्रतिवेशियों का सविवरण चित्रण करते हुए स्कूल कॉलेज के मित्रों और गुरुजनों से अपने सम्बन्धों और सम्पर्कों की विस्तृत जानकारी प्रदान की है। इसी खंड में अपने कैशोर्य काल एवं यौवनारंभ के प्रणय तथा भावुकता के विशिष्ट क्षणों का अंकन हुआ है। विशेष रूप से लेखक के हृदय पर सबसे अधिक छा जाने वाले तीन प्रणयाभिसारों के चित्र बहुत चमकीले रंगों में उभरे हुए दिखाई देते हैं- (1) कर्कल-चंपा प्रसंग, (2) श्री कृष्ण-प्रकाशो प्रकरण तथा (3) श्यामा संदर्भ।

इन तीनों प्रेम प्रसंगों ने जहाँ लेखक के भावुक मन पर अमिट संस्कारों को प्रत्यांकित किया, वहीं आशा-निराशा, उल्लास एवं अवसाद की भावनाओं का ऐसा ताना-बाना बुना जिसने लेखक के साहित्य सृजन की आधारशिला स्थापित की। फलस्वरूप सन् 1932 में 'तेरा हार', 1935 में 'मधुशाला' और 'ख्याम की मधुशाला' का अनुवाद तथा 1936 में 'मधुबाला' काव्य प्रकाशित हुए। सन् 1936 में ही 'मधुकलश' का भी निर्माण हुआ जो सन् 1937 में प्रकाशित हुआ। सन् 1936 में आन्त्रक्षय रोग की दुष्परिणति से कवि बच्चन की प्रथम पत्नी श्यामा बिना किसी शिशु को जन्म दिए स्मृति शेष हो गई। तभी कवि की लेखनी द्वारा 'निशा निमंत्रण'

एकांत संगीत' और 'आकुल अंतर' आदि का सृजन हुआ। लेखक ने इन सभी पुस्तकों के लेखन व प्रकाशन की कथा 'नीड़ का निर्माण फिर' में वर्णीकृत की है। 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ' की कथा का क्रम लेखक की प्रारम्भिक 29 वर्षों की आयु से सम्बन्धित है और 1936 में प्रिय पत्नी श्यामा के देहावसान के साथ ही यह खंड पूर्ण हो जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस मनोरम, रसभीनी एवं श्रृंगार रस के संयोग-वियोग पक्षों के सजीव चित्रण से युक्त कथा की गहन स्मृतियों के तीव्र उफान के साथ ही लेखक ने इस खंड का समापन उचित समझा। यद्यपि अबाध सरिता के समान-जीवन-कथा निरंतर चलती रही। पहली दृष्टि से देखने पर लगता है कि उपर्युक्त 'निशा निमंत्रण' आदि तीन करुणा काव्यों के सृजन एवं प्रकाशन की कथा का प्रासंगिक औचित्य प्रथम खंड के अंत में बनता था क्योंकि यौवनारंभ में लेखक के द्वारा भोगी गई तीन नायिकाओं की विरहवेदना के परिणामस्वरूप ही इस करुण काव्यत्रयी की सृष्टि हुई थी।

'श्यामा प्रसंग' का सार इस प्रकार है- श्यामा के साथ हरिवंशराय का विवाह सन् 1926 में हुआ था। उस समय हरिवंशराय की उम्र 18 वर्ष और श्यामा की उम्र लगभग 14 वर्ष थी। अपने से बड़ी उम्र वाले कर्कल की मित्रता और मृत्यु से, चंपा के साथ अपने असाधारण सम्बन्ध से और अंततः जीवन के एक बड़े करुण-मार्मिक पश्चातपपूर्ण अनुभव से होकर गुजरने के कारण हरिवंश जी अधिक परिपक्व हो चुके थे और श्यामा उनके सामने एक भोली-भाली, नादान और हँसमुख बच्ची के समान थी। हरिवंशराय एक ऐसी पत्नी चाहते थे जो उनको समझ सके, उनके हृदय का भार कम कर सके। जिसके समक्ष वे अपने संताप-पाप स्वीकार करके जी हल्का कर सकें। परन्तु जब उन्होंने उसका घूँघट हटाया तो उन्हें वह सरल मन बालिका के समान प्रतीत हुई।

हरिवंशराय विचार करने लगे कि इस बालिका से मैं अपने पिछले जीवन की कुछ बातें करूँ भी तो वह मेरी क्रूरता ही होगी बल्कि नादानी भी होगी। फिर एकाएक उनके मन में विचार कौंधा कि श्यामा मेरे स्तर तक नहीं उठ सकती तो मैं तो इसकी सतह पर उतर सकता हूँ। श्यामा को पत्नी समझना उस पर अत्याचार होता अतः उसे हरिवंशराय ने अपने खेल की सहेली बना लिया। श्यामा के व्यवहारों से उन्हें विश्वास हो गया था कि यह सहेली किसी दिन मेरे सुख-दुख, आशा-निराशा, सुकून और संघर्ष की सहभागिनी और सहभोगिनी बनेगी। विवाह के बाद जब विदा होकर वह पहली बार हरिवंश जी के घर आई तो एक सप्ताह ही वहाँ रही। हरिवंश जी ने अपनी पत्नी श्यामा को 'ज्वाय' नाम दिया और वे सदैव इसी नाम से पुकारते थे। लेकिन परिवार के सदस्य और उनके मित्र शायद ही यह नाम जानते हों। श्यामा को जीवन ने सदा 'ज्वाय' तो नहीं रहने दिया था, परन्तु अपने कष्ट में असंतुष्ट या दुखी रहने की चर्चा करना तो दूर रहा, उसका संकेत भी उसने कभी किसी से नहीं किया। श्यामा ने लम्बी-लम्बी बीमारियाँ पाईं, काफी तकलीफदेय बीमारियों को झेला, परन्तु उसने कोई शिकवा-शिकायत, आह-कराह न की। एक बार जब हरिवंशराय ने श्यामा के मुख से 'हाय' शब्द सुना, तब वे समझ गए कि अब यह नहीं बचेगी।

हरिवंशराय जी के नाते-रिश्तेदारों में यह नियम-सा बन गया था कि जिस वर्ष जिसकी शादी होती उसके अगले वर्ष वह परीक्षा में फेल हो जाता, परन्तु हरिवंश जी ने इस परम्परा को तोड़ते हुए सन् 1927 में इण्टर की परीक्षा द्वितीय श्रेणी में पास की। इसी वर्ष उन्हें अपने पुश्तैनी घर से हटकर एक किराए के घर में जाना पड़ा। इसी दौरान हरिवंश के पिताजी ने कटघर में राजा बारा से कुछ जमीन सालाना किराए पर लेकर उस पर मकान बनवाना शुरू

कर दिया। मकान आधा ही बन पाया था कि किराए का मकान छोड़कर उनको कटघर वाले मकान में आना पड़ा। इस मकान में रहते हुए भी कई दिनों तक काम चलता रहा। जिस जमीन पर हरिवंश के पिताजी ने मकान बनवाया था वह कटघर में कही जाती थी, पर म्युनिसिपैलिटी की नाप-जोख के हिसाब से वह मुट्ठीगंज में आती थी। वहाँ की जमीन पर बनने वाला पहला मकान हरिवंश जी का ही था। मकान के पूरब और उत्तर में बड़ा-सा खाली मैदान पड़ा था। पश्चिम में गणेशबाग का अहाता था। दक्षिण में कुछ छोटे-छोटे खपरैल वाले मकान थे, जिनके पार जमुना रोड थी। रोड पर मिशन स्कूल-कॉलेज का लम्बा-चौड़ा कम्पाउंड था जिसके नीचे चौड़े पाट और रेतीले किनारे वाली यमुना बहती थी।

जमुना रोड मिशन कम्पाउंड के सामने से होती हुई जमुना पुल को चली गई थी जो संभवत: संसार का सबसे लम्बा दुहरा पुल है, ऊपर दोनों पर रेल की पटरियाँ, नीचे एक पुल लोगों के आने-जाने के लिए और एक इक्के तांगे, मोटर आदि सवारी गाड़ियों के लिए। हरिवंशजी के घर से सड़क पार कर मिशन स्कूल के अहाते से होते हुए तीन मिनट में जमुना के तट पर पहुँचा जा सकता है। तट के दाहिनी ओर राजा बनारस की कोठी, बलुआ घाट और आगे नहाने का पक्का घाट बारादरी, बायीं ओर दूर तक यमुना का खुला किनारा, जमुना पुल के ठीक नीचे गऊ घाट जहाँ संगम को जाने के लिए नावें मिलती थीं। यहाँ से कुछ दूरी पर गंगा-जमुना के संगम पर बने अकबर के किले की दीवारें दिखाई देती थीं।

हरिवंशजी के पिताजी ने नए मकान का नक्शा बनवाने में नए समय की आवश्यकताओं को ध्यान में रखा था। मकान दो तल्ले का बनवाया गया- ऊपर दो बड़े कमरे, दो छोटे कमरे, दो छतें, दो परछत्तियाँ। एक छोटा एक बड़ा कमरा हरिवंश और उनकी पत्नी के लिए और इसी प्रकार उनके छोटे भाई और उनकी भावी पत्नी के लिए, एक-एक छत-परछत्तियाँ मौसम के अनुसार खुले या छाया में अलग-अलग सोने के लिए। नीचे अलग-अलग कमरे पिताजी तथा माता जी के लिए थे। बहन के लिए कोई विशेष कमरा नहीं था। घर के अन्य आवश्यक स्थान पूजाघर, भंडारगृह, रसोई, स्नानघर आदि भी बनवाये गए थे। बाहर दो बैठकें भी बनवाई थीं। इस प्रकार घर को बहुत बड़ा या शानदार तो नहीं कहा जा सकता, परन्तु घर के सदस्यों की सुविधा और निजीपन के लिए उसमें सब कुछ था। तीन ओर मकान किसी से मिला नहीं था, पर चौथी ओर एक वकील साहब ने अपना मकान बनवाया था। हरिवंश के पिताजी को इस बात से विशेष संतोष था कि हमारे मकान के ठीक सामने गली पार गणेश बाग में एक मंदिर था जिसका एक दरवाजा उनके घर के सामने था, परन्तु वह दरवाजा किसी कारण से स्थायी रूप से बंद रहता था। पिताजी ने उसे खुलवाने का भरसक प्रयास किया, परन्तु वे असफल रहे। अत: उन्होंने जयपुर से गणेश जी की एक मूर्ति मँगाकर मुख्य द्वार पर लगवाई जो आज 'प्रतीक्षा' मुम्बई में स्थापित हैं।

महत्वपूर्ण व्याख्याएँ

1. संकेत- अठारह की उम्र कम नहीं होती, फिर अपने से बड़ी उम्र वाले कर्कल की मैत्री और मृत्यु से, चंपा के साथ अपने असाधारण सम्बन्ध से, और अंतत: जीवन के एक बड़े करुण-मार्मिक, पश्चातापपूर्ण अनुभव से होकर गुजरने के कारण मैं अधिक परिपक्व हो गया था, या अपने को ऐसा समझता था। श्यामा मेरे सामने बिलकुल बच्ची थी- भोली नन्ही, नादान, अनजान, हँसमुख, किसी ऐसे मधुवन की टटकी गुलाब की कली- 'नवल कलिका थी वह'- जिसमें न कभी पतझर आया हो और न जिसने कभी काँटों की निकटता जानी हो।

सन्दर्भ—प्रस्तुत गद्यांश डॉ. हरिवंशराय 'बच्चन' द्वारा रचित आत्मकथा 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ' के 'श्यामा प्रसंग' से उद्धृत है।

प्रसंग—मई 1926 ई. में साढ़े अठारह साल की आयु में चौदह वर्षीया श्यामा से बच्चन का घरेलू आयोजित विवाह सम्पन्न हो गया। उसकी प्रतिक्रिया और मन पर पड़े संस्कारों का चित्रण इन पंक्तियों में सुंदर ढंग से किया गया है।

व्याख्या—कभी-कभी व्यक्ति को अल्पायु में बड़े-बड़े अनुभव प्राप्त हो जाते हैं, तो वह मानसिक रूप से प्रौढ़ होने लगता है। ऐसी ही अनैसर्गिक प्रौढ़ता को प्राप्त कर लेखक अपनी अठारह वर्ष की आयु को परिपूर्ण आयु सिद्ध करते हुए लिखा है कि वैसे तो अनुभूतिप्रवणता, विचारशीलता, भावुकता, तन्मयता और कर्मठता आदि के लिए अठारह वर्ष की आयु पर्याप्त होती है, लेकिन यदि संयोगवश कुछ कड़वे-मीठे अनुभव भोगने पड़ गए हों तो व्यक्ति असमय ही प्रौढ़ हो जाता है। इस विवाह से पूर्व कुछ बड़ी-बड़ी घटनाएँ ऐसी हो गई थीं, जिन्होंने सुकवि बच्चन के संवेदनशील हृदय पर अमिट छाप छोड़ी। अपने से बड़ी आयु, किन्तु कम लौकिक अनुभव वाले कर्कल से उनकी अपूर्व शैली की मित्रता बनी। उसी सम्बन्ध से मित्र-पत्नी चम्पा परकीया होकर भी उनके लिए आत्मीय बन गई, किन्तु क्रूर नियति ने वर्ष भर में ही उन दोनों को छीन लिया तो वे सब अनुभव उनके लिए कितने शोक, अवसाद, व्यथा और पश्चाताप से युक्त रहे होंगे, इन सबको झेलने वाला व्यक्ति यदि असमय ही प्रौढ़ हो गया तो कुछ अस्वाभाविक नहीं है। फिर भी लेखक ने लिखा है कि अपनी मानसिक प्रौढ़ता के विषय में यह उनकी निजी धारणा थी। इसके ठीक विपरीत श्यामा बहुत ही अल्पायु, अनुभव से कच्ची, जीवन-संघर्ष से सर्वथा अपरिचित, अत्यन्त भोली-भाली, एक निरीह शिशु के समान थी। उसके लिए जिन विशेषणों का लेखक ने प्रयोग किया वे एक ओर कभी पत्नी के गुणों तथा स्वभाव को बतलाते हैं, दूसरी ओर उसका साक्षात् बिंब सा उपस्थित करते हैं। वह भोली-भाली, नादान, बहुत छोटी, मुग्धा, अनुभव रहित, सदैव हँसमुख रहने वाली, ठीक इतनी निश्छल और सुंदर थी जैसे किसी मधुवन की नयी खिली हुई गुलाब की अछूती कली हो। कवि ने इस गद्य की अभिव्यक्ति को काव्य का सुनहरा फ्रेम चढ़ाने के लिए अपनी गीत-पंक्ति भी उद्धृत की है जिसका अर्थ है कि वह तो एक ऐसी कलिका थी जिसके जीवन में कभी कोई दुःख, कष्ट, अभाव या वेदना का अवसर हीं नहीं आया और जिसने कभी काँटों की चुभन या दुखों का स्पर्श झेला या भोगा ही नहीं था।

विशेष—(1) विवाह से पूर्व श्यामा के विषय में उसके प्रस्तावक श्री मोहन ने निश्चयपूर्वक कहा था कि श्यामा उनके लिए पूर्णतः अनुकूल संगिनी होगी।

(2) इस गद्यांश की भाषा मधुर-मनोहर शब्दों से युक्त खड़ी बोली हिन्दी है।

2. संकेत- बलिहारी ऐसी अक्लमंदी की! पर मेरे सामने जो स्थिति थी उसका सामना तो करना ही था। मैं अपने पिछले जीवन की कुछ बातें करूँ भी तो वह बेचारी क्या समझेगी। इसके सामने ऐसी चर्चा छेड़ना क्रूरता भी होगी, नासमझी भी। न जाने कैसे बिजली की धारा की तेजी से एक विचार मेरे मन में कौंध गया। यह मेरे स्तर तक नहीं उठ सकती तो मैं तो इसकी सतह पर उतर सकता हूँ। यौवन के एक जटिल अनुभव से गुजर चुका हूँ, पर अभी अपने कैशोर्य से इतनी दूर नहीं चला गया हूँ कि उसे बिल्कुल भूल गया हूँ।

सन्दर्भ—पूर्ववत्।

प्रसंग—प्रस्तुत गद्यांश में हरिवंशराय अपने मित्र मोहन और पत्नी श्यामा के बारे में जो विचार करते हैं, उसी का वर्णन किया गया है।

व्याख्या—हरिवंशराय ने अपनी पत्नी का घूँघट उठाया तो वह उन्हें सरल हृदय बालिका-सी लगी। अब तो उन्हें श्री मोहन की बुद्धि पर संदेह हुआ क्योंकि मोहन को श्यामा हरिवंश के योग्य तथा अनुकूल संगिनी प्रतीत हुई थी। हरिवंशराय को उसकी बुद्धि पर तरस आ रहा था, ऐसी अक्लमंदी पर वे न्यौछावर होना चाहते थे। यह सब तो ठीक था, परन्तु जो स्थिति हरिवंशराय के समक्ष थी, उसका सामना तो उन्हें करना ही था। हरिवंशराय सोचने लगे कि मैं श्यामा से अपने बीते हुए समय की बात करूँ तो यह अबोध बालिका पता नहीं क्या को क्या समझ सकेगी। ऐसी बातें करना श्यामा के प्रति निर्ममता ही होगी और मूर्खता भी होगी। इसी समय एक विचार विद्युत गति के समान तेजी से उनके दिमाग में उत्पन्न हुआ कि श्यामा मेरे स्तर तक तो नहीं पहुँच सकती पर मैं तो इसके स्तर तक नीचे आ ही सकता हूँ। यह सच है कि हरिवंशराय अपनी जवानी के अत्यधिक उलझे हुए दौर से गुजर चुके हैं। संभवतः यह कर्कल और चंपा का दौर रहा होगा क्योंकि ये दोनों एक वर्ष तक साथ रहकर इस दुनिया से विदा हो चुके थे। यह आघात हरिवंशराय के लिए असहनीय था। हरिवंशराय अभी किशोर अवस्था से इतने दूर नहीं हुए थे कि उसे बिल्कुल भूल ही जाते। तात्पर्य यह है कि हरिवंशराय को अपनी किशोर अवस्था की सभी बातें और घटनाएँ याद थीं।

विशेष—(1) हरिवंशराय की विचारधारा काफी प्रौढ़ थी तभी तो वे श्यामा के स्तर तक उतर सके थे। उन्होंने अपनी पत्नी श्यामा को अपने खेल की सहेली बना लिया था।

(2) गद्यांश की भाषा मधुर-मनोहर शब्दों से युक्त खड़ी बोली हिन्दी है। ❑

डायरी : कठिन समय में (रमेशचन्द्र शाह)

(अंश - दि. 25.04.2010)

प्रश्न 18. डायरी लेखन से क्या आशय है? इसके विकास के बारे में बताइये।

उत्तर- डायरी भी आत्मकथा का ही एक रूप है। डायरी में विशेष रूप से प्रतिदिन के ताजे अनुभवों को ही लिखा जाता है। कभी-कभी समयानुसार पुराने अनुभवों का पुनर्मूल्यांकन भी होता है। डायरी लेखक घटनाओं का वर्णन करने के साथ-साथ स्वयं का आत्म विश्लेषण भी करता जाता है। इसलिए डायरी लेखक आत्मकथा तथा जीवनी के व्यक्तित्व से भी ज्यादा प्रमाणिक प्रकाशन है। डायरी लेखन में रोज का विवरण होने के कारण उसमें सम्बद्धता और शिल्पगत कलात्मकता का अभाव-सा ही रहता है, परन्तु कथन की स्पष्टता, व्यंग्यतात्मक वक्रता और सजीव वर्णन डायरी लेखन कला के मूल तत्व हैं।

हिन्दी में डायरी लेखन कला का आरम्भ केवल 5 दशक पूर्व ही हुआ था। हिन्दी में प्रथम डायरी लेखक नरदेश शास्त्री वेदतीर्थ को माना जाता है। घटनाओं का सजीव चित्रण ही इस डायरी की विशेषता है। घनश्यामदास बिड़ला जो अब हमारे बीच नहीं रहे ने सन् 1931 की गोलमेज कान्फ्रेंस का वर्णन डायरी के रूप में किया है। उनकी इस डायरी का नाम 'डायरी के कुछ पन्ने' महादेव देसाई जो गुजराती के लेखक हैं। उन्होंने महात्मा गाँधी के सन्दर्भ में अपनी डायरी लिखी है, उस डायरी के महत्वपूर्ण अंश हिन्दी में अनुवादित हो चुके हैं। 'गाँधीजी की कारावास कथा' नामक डायरी, जो कि सुशीला नायर के द्वारा लिखी गयी है, यह डायरी साहित्य में विशेष स्थान रखती है। सज्जनसिंह ने लद्दाख यात्रा को डायरी के जरिये से अपनी लद्दाख-यात्रा के अनुभवों को व्यक्त किया है। निर्मला देशपांडे की डायरी

सर्वोदय पद यात्रा' और दमोदरदास मूंदड़ा की डायरी 'विनोबा के साथ' भी उल्लेखनीय हैं। भारत विभाजन की कहानी' ऐलेन कैम्पवैल की लोकप्रिय डायरी का हिन्दी अनुवाद भी उल्लेखनीय है। इलाचन्द्र जोशी द्वारा लिखित 'मेरी डायरी के नीरस पृष्ठ' अत्यन्त ही सजीव तथा सरस रचना है। वैसे देखा जाये, तो हिन्दी डायरी को साहित्यिक रूप देने का श्रेय वास्तव में इलाचन्द्र जोशी को ही है। इनके अतिरिक्त कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, धर्मवीर भारती और जगदीश गुप्त के नाम भी डायरी-लेखन कला की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। ❑

प्रश्न 19. रमेशचंद्र शाह का जीवन परिचय दीजिए।

रमेशचंद्र शाह का परिचय

उत्तर-

बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी श्री रमेशचंद्र शाह का जन्म सन् 1937 में उत्तर प्रदेश के अल्मोड़ा के एक पहाड़ी गाँव में मध्यम वित्तीय परिवार में हुआ था जो अब उत्तराखंड राज्य के अंतर्गत है। आपकी इंटर तक की शिक्षा ओल्मोड़ा में हुई। आगे की शिक्षा इलाहाबाद (प्रयागराज) और आगरा में पूरी करने के बाद वे सन् 1961 में हमीदिया महाविद्यालय (भोपाल) में अंग्रेजी के अध्यापक नियुक्त हुए और सन् 1997 में वहीं से अंग्रेजी विभागाध्यक्ष के पद से सेवानिवृत्त हुए। इसके बाद आप सन् 2000 तक भोपाल में निराला सृजनपीठ के निदेशक रहे।

औपन्यासिक कृति 'विनायक' (2011) के लिये वर्ष 2015 में साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न श्री रमेशचन्द्र शाह ने साहित्य की सभी विधाओं में महत्वपूर्ण योगदान किया है। इनके सात काव्य संग्रह (जिनमें हिन्दी साहित्य सम्मेलन की 'आधुनिक कवि माला' के अन्तर्गत छपा संकलन भी शामिल है), ग्यारह उपन्यास, छह कहानी संग्रह, दस साहित्यालोचन ग्रंथ, अनेक वैचारिक और ललित निबंध संकलन, यात्रावृत्त, व्याख्यान और डायरी संकलन प्रकाशित हैं। मध्यप्रदेश शासन संस्कृति विभाग के शिखर सम्मान (1997-98), मैथिलीशरण गुप्त राष्ट्रीय सम्मान तथा भारतीय भाषा परिषद् कोलकाता के पुरस्कार के अतिरिक्त इन्हें भवानी प्रसाद मिश्र पुरस्कार, आचार्य नंददुलारे वाजपेयी पुरस्कार, वीरसिंह देव पुरस्कार, गजानन माधव मुक्तिबोध राष्ट्रीय साहित्य सम्मान (2015), केन्द्रीय भाषा संस्थान द्वारा 'महापण्डित राहुल सांस्कृत्यायन पुरस्कार' के.के. बिड़ला फाउन्डेशन द्वारा 'व्यास सम्मान' (2001) तथा राष्ट्रपति द्वारा 'पद्मश्री' (2004) अलंकरण से विभूषित किया जा चुका है।

प्रमुख कृतियाँ

उपन्यास—गोबर गणेश (1978), किस्सा गुलाम (1986), पूर्वापर (1990), आखिरी दिन (1992), पुनर्वास (1995), चाक पर गणेश, विनायक (2011), सफेद परदे पर आत्मनायक (2012), असबाबे-वीरानी (2012), आप कहीं नहीं रहते विभूति बाबू।

कहानी संग्रह—जंगल में आग (1979), मुहल्ले का रावण (1982), मानपत्र (1992), थिएटर (1998), प्रतिनिधि कहानियाँ।

कविता संग्रह—कछुए की पीठ पर, हरिश्चन्द्र आओ, नदी भागती आई, प्यारे मुचकुंद को, देखते हैं शब्द भी अपना समय, चाक पर समय, अकेला मेला, उकाव हुलार, चाक पर, अनागरिक, आधुनिक कवि माला।

निबंध—रचना के बदले (1967), शैतान के बहाने (1980), आड़ू के पेड़ (1984), सबद निरन्तर (1987), पढ़ते-पढ़ते (1990), स्वाधीन इस देश में (1995), स्वधर्म और कालगति (1996), जड़ की बात, अगुन-शगुन बीच (2012), हिन्दी की दुनिया में।

समालोचना—छायावाद की प्रासंगिकता (1973), समानंतर (1973), वागर्थ (1981), सबद निरन्तर (1987), भूलने के विरुद्ध (1990), 'अज्ञेय' , वागर्थ का वैभव (1995), आलोचना का पक्ष (1998), जयशंकर प्रसाद, समय संवादी, अल्मोड़ा, स. ही. वात्स्यायन 'अज्ञेय' (जीवन और लेखन)।

नाटक—मारा जाई खुसरो, मटियाबुर्ज।

साक्षात्कार—मेरे साक्षात्कार।

डायरी—अकेला मेला, इस खिड़की से, आज और अभी, जंगल जुही, कठिन समय में।

यात्रावृत्तांत—एक लम्बी छाँह (2000)।

प्रश्न 20. रमेशचन्द्र शाह की डायरी 'कठिन समय में' का परिचय देते हुये उसके अंश '25 अप्रैल 2010' के बारे में बताइए।

अथवा

(अ) 'कठिन समय में' डायरी का परिचय दीजिये।

(ब) '25 अप्रेल 2010' डायरी का अंश लिखिये।

उत्तर- **'कठिन समय में' डायरी का परिचय**

वर्ष 2018 में प्रकाशित डायरी 'कठिन समय में' हिन्दी की वरिष्ठतम पीढ़ी के अनूठे रचनाकार रमेशचन्द्र शाह द्वारा रचित पाँचवीं डायरी है। आपकी पहली डायरी 'अकेला मेला' में लेखक के सन् 1981 से 1985 तक के अनुभवों का संसार शामिल है। दूसरी डायरी 'इस खिड़की से' में सन् 1986 से 2004 तक का अनुभव संसार समाहित है। तीसरी डायरी 'आज और अभी' में सन् 2004 से सन् 2009 तक का अनुभव शामिल है। चौथी डायरी 'जंगल जुही' में सन् 2013 तक का कालखण्ड समाहित है। अपनी इस डायरी में श्री शाह ने रामप्पा, ऋषियों की घाटी, यादगिरिगुट्टा और भोंगीर का किला, नागार्जुनकोंडा, हम्पी आदि की यात्राओं के माध्यम से एक अद्भूत संसार से परिचय कराया है।

श्री शाह की पाँचवीं डायरी 'कठिन समय में' 15 सितम्बर, 2009 में जयपुर से शुरु हुई। बाह्य तथा अन्त: यात्रा अन्त में 23 फरवरी, 2017 को भोपाल के हिन्दी भवन में हुये शरद व्याख्यान पर समाप्त होती है। इस डायरी में भी वही रस, प्रवाह, गहराई और अंतरंगता विद्यमान है जो उनकी पूर्व डायरियों में था। इस डायरी में विश्व के अधुनातन और पुरातन सभी कला क्षेत्र सहजता से स्थान पा गये हैं। इसमें लेखक ने अपने जीवन के 8 वर्ष 5 माह में हुई घटनाओं, रोचक प्रसंगों तथा विशेष अनुभवों को समटेने का प्रयास किया है। डायरी विधा के सन्दर्भ में रमेशचन्द्र शाह की मान्यता है कि ''डायरी ऐसी विधा है जिस पर निर्भरता लागू नहीं होती। दैनंदिनी घटनाओं, चरित्रों और यात्रा प्रसंगों के लिये डायरी सही स्थान है क्योंकि इसमें आत्मसंवाद भी रहता है और संवाद भी, लेकिन एक बहुपठित निश्छल साहित्यिक, रसिक और खोजी मनुष्य उसमें इस प्रकार लीन हो जाता है कि उसकी समझ का आकाश और विस्तृत हो जाता है।'' समय के विस्तृत होने का कारण यह है कि लेखक वास्तव में व्यक्ति को नहीं उसे उसकी परम्परा में देखना पसन्द करते हैं। यही कारण है कि लेखक सीमन्तनी को देखकर रांगेय राघव और उनकी स्फूर्ति स्मरण हो आती है। कान फिल्म फेस्टिवल में पुरस्कृत हुई अंतोनियो की फिल्म 'आइडेंटिफिकेशन ऑफ वुमेन' देखकर लेखक इस प्रश्न से जूझता है कि नायक को आखिर क्या चाहिये।

रमेशचन्द्र शाह की डायरी का शीर्षक यद्यपि 'कठिन समय में' है तथापि इसमें खुशी पलों को भी संजोया गया है। 17 मार्च, 2010 को लेखक की फोन पर तीन लोगों से तीत हुई और तीनों से ही अच्छी खबर सुनने को मिली। पहली अच्छी खबर यह थी कि न्दी साहित्य सम्मेलन के श्री शशि शुक्ल ने फोन पर कहा कि 'आधुनिक कवि माला' 24वें प के रूप में लेखक रमेशचन्द्र जी काव्य-संकलन छप चुका है और आज ही दस लेखकीय तियाँ उनके लिये भेजी जा रही हैं। लेखक ने यह संकलन स्व. सत्यप्रकाश मिश्र की प्रेरणा बड़ी लगन से तैयार किया था। साहित्य अकादमी की एक फेलोशिप के अन्तर्गत राजस्थान श्वविद्यालय जयपुर के गेस्टहाउस में रहते हुये नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली के सुरेन्द्र लिक के आग्रह पर लेखक ने अपना 'कविता समग्र' अनुक्रमणिका सहित तैयार किया था। सरी अच्छी घटना यह रही कि जिन सुरेन्द्र मलिक से साल भर से बात नहीं हो पा रही थी, नसे बात हो गई। तीसरी अच्छी खबर दिल्ली विश्वविद्यालय के अंग्रेजी विभागाध्यक्ष प्रो. रीश त्रिवेदी से मिली कि उन्हें लेखक की 'दस स्पोक भर्तृहरि' मिल गई जिसे उन्होंने पढ़ भी लिया। इस पुस्तक में मेरा पद्यानुवाद त्रिवेदी जी को काफी अच्छा लगा।

रमेश जी के जीवन में पीड़ा के पल भी आए जिसका उल्लेख उन्होंने अपनी डायरी में किया है। 6, फरवरी 2014 के पृष्ठ पर वे लिखते हैं कि सविता आज पूर्वान्ह में ही आ गयी थी। बहुत पीड़ादायी व्यायाम करवाने लगी है। कहती है- यह सहना पड़ेगा। तभी जोड़ों की जकड़ने पिघलेगी। उसका आत्मविश्वास अपनी जगह है परन्तु मुझे घबराहट होती है। बगैर इस फिजियोथेरेपी के प्रपंच में पड़े, मैं जैसा जो भी कर रहा था, उससे कम से कम यथास्थिति तो बनी हुई थी। काहे को मैंने यह अतिरिक्त पीड़ा आमंत्रित की।

इस प्रकार रमेशचन्द्र शाह ने अपनी डायरी 'कठिन समय में' में अपने जीवन के खट्टे मीठे, चित्र-विचित्र रोचक अवसरों को संजोया है जिसे पढ़कर यह सहज की ज्ञात हो जाता है कि लेखक का संवाद समय के अपने सरीखे शिखर व्यक्तियों से चलता रहता है। वह किताबों पर टिप्पणियाँ इस प्रकार करते हैं कि पढ़ने वाले को उस पुस्तक का पूरा ब्यौरा मिल जाए।

डायरी का अंश 25 अप्रेल, 2010

डायरी के 25 अप्रेल, 2010 के अंश में लेख रमेशचन्द्र शाह लिखते हैं कि आज अनुपम मिश्र का फोन आया और उनसे काफी रुचिकर और प्रेरक बातचीत हुई। लेखक ने कल ही तो जैसलमेर के तालाबों पर छपा उनका लेख किसी पत्रिका में पढ़ा था। मिश्र जी यह लेख काफी मार्मिक और प्रभावशाली था। अनुपम जी वास्तव में परम पुरुषार्थी व्यक्ति हैं। विना किसी आशा के बस कर्तव्य कर्म करते जाना ही उनका लक्ष्य है। वास्तव में ऐसे कर्मठ और पुरुषार्थी व्यक्ति ही हमें कभी निराश नहीं होने देते। उनका जीवन निराशा के क्षणों में हमारा प्रेरक बन जाता है। ऐसे लोगों से ही देश का वर्तमान और भविष्य उज्जवल होता है। जिस प्रकार आशा जाग्रत रखने के लिये कुछ कर्तव्य करने होते हैं उसी प्रकार निराशा को दूर भगाने के भी लिये भी कुछ कर्तव्य करने होते हैं। ऐसे ही अद्भुत व्यक्तित्व के स्वामी हैं अनुपम मिश्र। उनके द्वारा रचित पुस्तकें खूब बिक रही हैं। यह तथ्य भी उनके व्यक्तित्व के समान ही एक चमत्कार है। ❑

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (उत्तर सहित)

1. ''मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र समझता हूँ। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों का उद्‌घाटन करना ही उपन्यास का काम है।'' यह शब्द कहे हैं-
(अ) डॉ. श्याम सुन्दरदास (ब) प्रेमचन्द
(स) डॉ. गुलाबराय (द) रामचन्द्र शुक्ल। उत्तर-(ब)

2. उपन्यास होते हैं-
(अ) घटना प्रधान (ब) चरित्र प्रधान
(स) उक्त दोनों (द) उक्त दोनों नहीं। उत्तर-(स)

3. हिन्दी के सबसे पहले उपन्यासकार थे-
(अ) लाला श्रीनिवासदास (ब) ठाकुर जगमोहन सिंह
(स) बालकृष्ण भट्ट (द) राधाकृष्णन दास। उत्तर-(अ)

4. हिन्दी के उपन्यास सम्राट कहे जाते हैं-
(अ) किशोरीलाल गोस्वामी (ब) जयशंकर प्रसाद
(स) रामचन्द्र शुक्ल (द) मुंशी प्रेमचन्द। उत्तर-(द)

5. हिन्दी उपन्यास परम्परा को कितने कालों में विभक्त किया गया है-
(अ) तीन (ब) चार
(स) पाँच (द) छः। उत्तर-(अ)

6. 'रामगढ़ की रानी' उपन्यास में किस वर्ष की घटनाओं का वर्णन है-
(अ) 1850 ई. (ब) 1857 ई.
(स) 1860 ई. (द) 1867 ई.। उत्तर-(ब)

7. 'रामगढ़ की रानी' उपन्यास के अनुसार रामगढ़ में कौन-सी नदी है-
(अ) खरमेर (ब) बुड़नेर
(स) नर्मदा (द) ताप्ती। उत्तर-(अ)

8. रामगढ़ की रानी कौन है-
(अ) लक्ष्मीबाई (ब) दुर्गावती
(स) अवन्तीबाई (द) इनमें से कोई नहीं। उत्तर-(स)

9. 'रामगढ़ की रानी' उपन्यास के पात्र राजा शंकरशाह कहाँ के मालगुजार हैं-
(अ) खड़देवरा (ब) पुरवा
(स) जवेरा (द) शाहपुरा। उत्तर-(ब)

10. रानी अवन्तीबाई के पति का नाम राजा विक्रमादित्यसिंह है पर वहाँ की जनता उन्हें किस नाम से पुकारती है-
(अ) विक्रमसिंह (ब) विक्रमासिंह
(स) विक्रमाजीत सिंह (द) विक्रमादित्य। उत्तर-(स)

11. 'रामगढ़ की रानी' उपन्यास के अनुसार सात साल से मण्डला का डिप्टी कमिश्नर कौन है-

(अ) वॉडिंगटन (ब) क्लार्क
(स) अर्सकिन (द) कोकबर्न। उत्तर-(अ)

12. निम्न में से कौन-सी कहानी चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' द्वारा लिखित नहीं है-
(अ) हार की जीत (ब) सुखमय जीवन
(स) उसने कहा था (द) बुद्धू का काँटा। उत्तर-(अ)

13. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की कहानी 'उसने कहा था' का सरस्वती पत्रिका में प्रकाशन कब हुआ था-
(अ) सन् 1911 (ब) सन् 1913
(स) सन् 1915 (द) सन् 1917 उत्तर-(स)

14. 'उसने कहा था' कहानी का नायक कौन है-
(अ) बोधासिंह (ब) वजीरासिंह
(स) हजारासिंह (द) लहनासिंह। उत्तर-(द)

15. 'पंच परमेश्वर' कहानी के लेखक कौन हैं-
(अ) जयशंकर प्रसाद (ब) प्रेमचंद
(स) सुदर्शन (द) वृंदावन लाल वर्मा। उत्तर-(ब)

16. जुम्मन शेख और अलगू चौधरी प्रेमचंद की किस कहानी के पात्र हैं-
(अ) नमक का दरोगा (ब) ईदगाह
(स) पूस की रात (द) पंच परमेश्वर। उत्तर-(द)

17. निम्न में से कौन-सी कहानी जयशंकार प्रसाद द्वारा लिखित नहीं है-
(अ) इन्द्रजाल (ब) पुरस्कार
(स) रक्षाबन्धन (द) आकाशदीप। उत्तर-(स)

18. जयशंकर प्रसाद की कहानी 'पुरस्कार' का प्रधान पात्र है-
(अ) अरुण (ब) मधूलिका
(स) कौशल नरेश (द) इनमें से कोई नहीं। उत्तर-(ब)

19. 'वापसी' कहानी के लेखक कौन हैं-
(अ) उषा प्रियंवदा (ब) मन्नू भंडारी
(स) कृष्णा सोबती (द) शिवानी। उत्तर-(अ)

20. 'वापसी' कहानी का प्रमुख पात्र कौन है-
(अ) अमर (ब) बसंती
(स) गजाधर बाबू (द) नवीन बाबू। उत्तर-(स)

21. 'लहरों के राजहंस' नाटक का नायक कौन है-
(अ) श्यामांग (ब) नंद
(स) गौतम बुद्ध (द) इनमें से कोई नहीं। उत्तर-(ब)

22. नंद की पत्नी का नाम क्या है-
(अ) कामिनी (ब) अलका
(स) सुन्दरी (द) रागिनी। उत्तर-(स)

23. 'लहरों के राजहंस' मूलतः किस प्रकार का नाटक है-
(अ) ऐतिहासिक (ब) सामाजिक
(स) समस्या प्रधान (द) घटना प्रधान। उत्तर-(अ)

24. डॉ. नागेन्द्र ने हिन्दी एकांकी के विकास का श्रेय किसे दिया है-
(अ) जयकुमार वर्मा (ब) भारतेंदु हरिशचन्द्र
(स) जयशंकर प्रसाद (द) सियारामशरण गुप्त। उत्तर-(स)

25. हिन्दी की प्रथम एकांकी निम्न में से कौन-सी है-
(अ) एक घूँट (ब) बादल की मृत्यु
(स) अंधेर नगरी (द) कारवाँ। उत्तर-(ब)

26. निम्न में से कौन-सी एकांकी रामकुमार वर्मा द्वारा रचित नहीं है-
(अ) दीपदान (ब) रेशमी टाई
(स) पर्दे के पीछे (द) रजतरश्मि। उत्तर-(स)

27. 'दीपदान' एकांकी का प्रमुख पात्र कौन है-
(अ) उदयसिंह (ब) पन्नाधाय
(स) चन्दन (द) बनवीर। उत्तर-(ब)

28. दीपदान महोत्सव का आयोजन राजमहल के किस कुण्ड में किया गया था-
(अ) केदार कुण्ड (ब) दारापक्ष
(स) मयूरपक्ष (द) उपरोक्त में कोई नहीं। उत्तर-(स)

29. 'टूटते हुए' एकांकी के लेखक कौन है-
(अ) चिरंजीत (ब) रेवतीसरन शर्मा
(स) सुरेशचन्द्र शुक्ल (द) विनोद रस्तोगी। उत्तर-(स)

30. 'टूटते हुए' एकांकी में एक मध्यमवर्गीय परिवार के कितने सदस्यों को कथा का आधार बनाया गया है-
(अ) दो (ब) तीन
(स) चार (द) पाँच। उत्तर-(स)

31. 'मित्रता' निबंध के लेखक कौन हैं-
(अ) भारतेंदु हरिश्चन्द्र (ब) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
(स) हजारी प्रसाद द्विवेदी (द) श्यामसुन्दर दास। उत्तर-(ब)

32. लेखक ने विश्वासपात्र मित्र की तुलना किससे की है-
(अ) कच्ची मिट्टी से (ब) कमल से
(स) औषधि से (द) व्याधि से। उत्तर-(स)

33. भिन्न-भिन्न स्वभाव के लोगों में भी मित्रता हो सकती है, लेखक ने अपने इस कथन के समर्थन में किसका उदाहरण दिया है-
(अ) राम-लक्ष्मण का (ब) अर्जुन-भीम का
(स) कर्ण-दुर्योधन का (द) (अ) व (स) दोनों का।
उत्तर-(द)

34. शुक्ल जी ने 'मित्रता' निबंध में किसके ज्वर को सबसे भयानक कहा है-
(अ) मलेरिया के ज्वर को (ब) शीत ज्वर को
(स) कुसंग के ज्वर को (द) पीत ज्वर को। उत्तर-(स)

35. 'अशोक के फूल' निबंध के लेखक कौन है-
(अ) हजारीप्रसाद द्विवेदी (ब) प्रतापनारायण मिश्र
(स) सरदार पूर्णसिंह (द) श्यामसुन्दर दास। उत्तर-(अ)

36. संस्कृत साहित्य में सर्वप्रथम किसने 'अशोक के फूल' का उल्लेख किया-
(अ) भारवि (ब) दंडी
(स) कलिदास (द) बाणभट्ट। उत्तर-(स)

37. अशोक-वृक्ष की पूजा से जुड़े 'मदनोत्सव' का उल्लेख किस ग्रंथ में प्राप्त होता है-
(अ) सरस्वती कंठाभरण में (ब) मालविकाग्निमित्र में
(स) रत्नावली में (द) उपरोक्त सभी में। उत्तर-(द)

38. अशोक-वृक्ष का सीधा सम्बन्ध किस संस्कृति से था-
(अ) गंधर्व संस्कृति (ब) आर्य संस्कृति
(स) नाग संस्कृति (द) हूण संस्कृति। उत्तर-(अ)

39. 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' निबन्ध के लेखक कौन हैं-
(अ) रामधारीसिंह 'दिनकर' (ब) विद्यानिवास मिश्र
(स) गणपतिचंद्र गुप्त (द) कुबेरनाथ राय। उत्तर-(ब)

40. लेखक का पुत्र दिल्ली से आई एक लड़की के साथ संगीत कार्यक्रम देखने गया, एक घंटे में लौटने का कहकर जब वह काफी देर तक नहीं आया तब लेखक को किसका वियोग प्रकरण याद हो आया-
(अ) राम का (ब) लक्ष्मण का
(स) सीता का (द) उपरोक्त सभी का। उत्तर-(द)

41. स्मरण शब्द में क्या उपसर्ग जोड़कर 'संस्मरण' शब्द बना है-
(अ) सन् (ब) सद्
(स) सम् (द) सत्। उत्तर-(स)

42. संस्मरण की सर्वाधिक सटीक परिभाषा किसने दी है-
(अ) डॉ. गोविंद त्रिगुणायत ने (ब) डॉ. आशा कुमारी ने
(स) डॉ. भगवानशरण ने (द) महादेवी वर्मा ने। उत्तर-(अ)

43. निम्न में कौन सी महादेवी वर्मा की संस्मरणात्मक कृति नहीं है-
(अ) पथ के साथी (ब) स्मृति की रेखाएँ
(स) शिवालिक की घाटियों में (द) स्मारिका। उत्तर-(स)

44. महादेवी वर्मा जब पाँचवीं कक्षा में पढ़ती थीं तब सुभद्रा जी किस कक्षा में थी-
(अ) सातवीं (ब) छठवीं
(स) पाँचवीं (द) चौथी। उत्तर -(अ)

45. सुभद्रा जी का विवाह जब लक्ष्मण सिंह से हुआ तब वे किस कक्षा में पढ़ती थीं-
(अ) दसवीं (ब) ग्यारहवीं
(स) आठवीं (द) नौवीं। उत्तर-(स)

46. यात्रा-वृत्तांत 'सौंदर्य की नदी नर्मदा' के लेखक कौन हैं-
(अ) भगवतशरण उपाध्याय (ब) अमृतलाल बेगड़
(स) रामवृक्ष बेनीपुरी (द) राहुल सांकृत्यायन। उत्तर-(ब)

47. अमृतलाल बेगड़ के पिताजी कहाँ से आकर जबलपुर, मध्य प्रदेश में रहने लगे-
(अ) गुजरात (ब) महाराष्ट्र
(स) उत्तर प्रदेश (द) बिहार। उत्तर-(अ)

48. अमृतलाल बेगड़ ने किस वर्ष नर्मदा की परिक्रमा आरम्भ की-
(अ) सन् 1957 (ब) सन् 1967
(स) सन् 1977 (द) सन् 1975। उत्तर-(स)

49. 'सौन्दर्य की नदी नर्मदा' शीर्षक यात्रा-वृत्तांत में लेखक ने कितने शीर्षकों के अन्तर्गत अपनी परिक्रमा का उल्लेख किया है-
(अ) 11 (ब) 15
(स) 21 (द) 28। उत्तर-(स)

50. नर्मदा तट का सबसे बड़ा तीर्थ है-
(अ) खलघाट (ब) ओंकारेश्वर
(स) मंडला (द) महेश्वर। उत्तर-(ब)

51. बरमानघाट पर नर्मदा की धारा क्या कहलाती है-
(अ) दूधधारा (ब) कपिलधारा
(स) सतधारा (द) सहस्त्रधारा। उत्तर-(स)

52. नर्मदा किस स्थान पर गर्भस्थ शिशु सी जान पड़ती है-
(अ) ओंकारेश्वर (ब) महेश्वर
(स) मंडला (द) खलघाट। उत्तर-(अ)

53. 'भोलाराम का जीव' व्यंग्य के लेखक कौन हैं-
(अ) हरिशंकर परसाई (ब) रमेशचन्द्र शाह
(स) शिवप्रसाद सिंह (द) अमृतलाल बेगड़। उत्तर-(अ)

54. 'भोलाराम का जीव' वास्तव में क्या है-
(अ) उपन्यास (ब) निबन्ध
(स) कहानी-संग्रह (द) व्यंग्य लेख। उत्तर-(स)

55. भोलाराम का जीव ने कितने दिन पहले देह त्यागी थी-
(अ) दो दिन (ब) तीन दिन
(स) चार दिन (द) पाँच दिन। उत्तर-(द)

56. नारद जी ने बड़े साहब को क्या देकर भोलाराम की पेंशन की फाइल खुलवाई-
(अ) खड़ाऊँ देकर (ब) वीणा देकर
(स) वरदान देकर (द) रुपये देकर। उत्तर-(ब)

57. गायब हुए भोलाराम के जीव को अंततः किसने खोज लिया-
(अ) चित्रगुप्त ने (ब) यमदूत ने
(स) अधिकारी ने (द) नारद ने। उत्तर-(द)

58. भोलाराम वास्तव में किससे मरा था-
(अ) विषाक्त भोजन से (ब) बीमारी से
(स) भूख से (द) अधिक भोजन से। उत्तर-(स)

59. भोलाराम को रिटायर हुए कितने वर्ष हो चुके थे-
(अ) तीन वर्ष (ब) चार वर्ष
(स) पाँच वर्ष (द) सात वर्ष। उत्तर-(स)

60. शिवप्रसाद सिंह को उनके उपन्यास 'नीला चाँद' के लिए सन् 1990 में किस पुरस्कार से सम्मानित किया गया-

(अ) पद्मश्री (ब) मैथिलीशरण गुप्त सम्मान
(स) साहित्य अकादमी (द) व्यास सम्मान। उत्तर-(स)

शिवप्रसाद सिंह द्वारा लिखित जीवनी है-
(अ) महायोगी (ब) उत्तरयोगी श्री अरविंद
(स) हमारे महाराज जी (द) श्री हरिबाबा। उत्तर-(ब)

'उत्तरयोगी श्री अरविंद' नामक जीवनी में कुल कितने अध्याय हैं-
(अ) दस (ब) चौदह
(स) सोलह (द) अ उत्तर-(द)

श्री अरविंद ने बड़ौदा की नौकरी कब आरम्भ
(अ) फरवरी, 1893 (ब) जून, 1893
(स) मार्च, 1897 (द) दिसम्बर, 1897। उत्तर-(अ)

श्री अरविंद और उनके मित्रों ने 'वंदेमातरम्' पत्र का प्रकाशन कब शुरू किया-
(अ) सन् 1904 (ब) सन् 1905
(स) सन् 1906 (द) सन् 1912। उत्तर-(स)

मनुष्य को 'भगन देवता' किसने कहा है-
(अ) फ्रांसिस वारले (ब) इमर्सन
(स) मार्क ट्वेन (द) रस्किन। उत्तर-(ब)

आत्मकथा का लेखक करता है-
(अ) आत्मविवेचन (ब) आत्मविश्लेषण
(स) आत्मप्रकाशन (द) उपरोक्त सभी। उत्तर-(द)

हिन्दी की प्रथम आत्मकथा है-
(अ) मेरा जीवन प्रवाह (ब) अर्द्धकथानक
(स) जीवन-यात्रा (द) मेरी जीवन-कहानी। उत्तर-(ब)

प्रथम महिला आत्मकथा लेखिका होने का गौरव किसे प्राप्त है-
(अ) जानकी देवी बजाज (ब) उषा प्रियंवदा
(स) मन्नू भंडारी (द) महादेवी वर्मा। उत्तर-(अ)

डॉ. हरिवंशराय बच्चन की आत्मकथा कितने खंडों में प्रकाशित हुई थी-
(अ) दो (ब) तीन
(स) चार (द) पाँच। उत्तर-(स)

बच्चन जी की आत्मकथा के पहले भाग का नाम क्या है-
(अ) नीड़ का निर्माण फिर (ब) दशद्वार से सोपान तक
(स) क्या भूलूँ क्या याद करूँ (द) बसेरे से दूर। उत्तर-(स)

श्यामा प्रसंग के अनुसार हरिवंश राय का श्यामा के साथ विवाह किस वर्ष हुआ-
(अ) सन् 1922 (ब) सन् 1926
(स) सन् 1928 (द) सन् 1936। उत्तर-(ब)

विवाह के समय श्यामा की उम्र कितनी थी-
(अ) बारह वर्ष (ब) तेरह वर्ष
(स) चौदह वर्ष (द) पंद्रह वर्ष। उत्तर-(स)

73. अंग्रेजी शब्द 'डायरी' के लिए हिन्दी शब्द है-
(अ) दैनंदिनी (ब) दैनिकी
(स) रोजनामचा (द) उपरोक्त सभी। उत्तर-(द)

74. निम्नलिखित में कौन-सी डायरी विधा की रचना है-
(अ) यायावर की डायरी (ब) ख्वाब है दीवाने का
(स) अजय की डायरी (द) एक साहित्यिक की डायरी। उत्तर-(ब)

75. हिन्दी में डायरी लेखन की शुरूआत कब से मानी जाती है-
(अ) सन् 1910 से (ब) सन् 1920 से
(स) सन् 1930 से (द) सन् 1940 से। उत्तर-(स)

76. सीताराम सेकरिया की 'एक कार्यकर्ता की डायरी' किस वर्ष प्रकाशित हुई-
(अ) सन् 1972 (ब) सन् 1982
(स) सन् 1978 (द) सन् 1988। उत्तर-(अ)

77. श्री रमेशचन्द्र शाह का जन्म कब हुआ था-
(अ) सन् 1935 (ब) सन् 1936
(स) सन् 1937 (द) सन् 1938। उत्तर-(स)

78. श्री रमेशचन्द्र शाह को 'पद्मश्री' से कब अलंकृत किया गया-
(अ) सन् 2004 (ब) सन् 2001
(स) सन् 2000 (द) सन् 2008। उत्तर-(अ)

79. श्री शाह ने अब तक कितनी डायरियाँ लिखी हैं-
(अ) दो (ब) तीन
(स) चार (द) पाँच। उत्तर-(द)

80. श्री रमेशचन्द्र शाह की प्रथम डायरी है-
(अ) कठिन समय में (ब) जंगल जुही
(स) अकेला मेला (द) इस खिड़की से। उत्तर-(स)

81. 'कठिन समय में' डायरी किस वर्ष प्रकाशित हुई-
(अ) सन् 2014 (ब) सन् 2018
(स) सन् 2016 (द) सन् 2020। उत्तर-(ब)

82. 'कठिन समय में' डायरी के 25 अप्रैल, 2010 अंश में लेखक शाह ने किस साहित्यकार का उल्लेख किया है-
(अ) कुँवरनारायण (ब) अनुपम मिश्र
(स) कृष्ण बलदेव वैद (द) खुशवंत सिंह। उत्तर-(ब)

❑